अखिल भारत

सर्वोदय-समाज

दसवाँ वार्षिक सम्मेलन

सर्वोदयनगर, पंढरपुर

[ता० ३०, ३१ मई तथा १ जून १९५८]

•

विवरण

•

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

रा ज घा ट, का शी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बम्बई-राज्य)

●

प्रथम बार १,०००
फरवरी, १९५९
मूल्य . एक रुपया

●

मुद्रक
विश्वनाथ भार्गव,
मनोहर प्रेस,
जतनबर, वाराणसी

अनुक्रम

पहला दिन, ता० ३० मई '५८

दूसरा दिन, ता० ३१ मई '५८

तीसरा दिन, ता० १ जून '५८

पहली बैठक

दूसरी बैठक

परिशिष्ट

○

अखिल भारत

सर्वोदय-समाज-सम्मेलन

सर्वोदयनगर, पंढरपुर

दसवाँ अधिवेशन ता० ३०, ३१ मई तथा १ जून १९५८

पहला दिन

शुक्रवार, ३० मई, १९५८ : तीसरे पहर २॥ बजे

(खुला अधिवेशन)

[दसवें सर्वोदय-सम्मेलन के सिलसिले में श्री विनोबा अपने सहयात्रियों सहित बुधवार तारीख २८ मई, १९५८ को सवेरे करीब छ बजे पंढरपुर (जिला शोलापुर, महाराष्ट्र) पहुँचे। साढ़े सात बजे सवेरे उन्होंने खादी-ग्रामोद्योग-प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। इस समय उन्होंने जो प्रवचन दिया, वह परिशिष्ट मे पाया जायगा।

शाम को छ बजे विनोबा का सार्वजनिक प्रवचन मराठी में हुआ और उनकी नित्य परिपाटी के अनुसार पाँच मिनट की मौन प्रार्थना भी हुई।

उस दिन के अन्य कार्यक्रमों में एक कार्यक्रम महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा के तत्त्वावधान में आयोजित हिन्दी प्रेमी सम्मेलन में और अ० भा० दलितवर्ग-संघ की ओर से आयोजित सभा में विनोबाजी के प्रवचन हुए। इन सारे प्रवचनों में से जो-जो प्राप्त हो सके, परिशिष्ट में दिये गये हैं।

बृहस्पतिवार ता० २९ की शाम को छ बजे विनोबा का एक सार्वजनिक प्रवचन मराठी में हुआ।

ता० २९ को सवेरे पंढरपुर के इतिहास मे एक अपूर्व क्रातिकारी घटना घटी। श्री पुडलीक, रुक्मिणी और पाडुरंग देवस्थानों के प्रबन्धको के लिखित निमंत्रण पर विनोवा ने अपने अन्य धर्माय (ईसाई, वौद्ध और मुस्लिम) साथियों सहित तीनों मंदिरों में देवदर्शन किया।

शुक्रवार ता० ३० मई को सवेरे साढ़े सात बजे अखिल भारत सर्व-सेवा-सघ प्रकाशन द्वारा विभिन्न भाषाओ मे प्रकाशित पुस्तकों की प्रदर्शनी का उद्‌घाटन विनोवा के हाथों से हुआ। उस अवसर पर उनका जो प्रवचन हुआ, वह परिशिष्ट में दिया गया है।]

सम्मेलन के अधिवेशन की विधिवत् कार्रवाई ता० ३० मई को दोपहर मे शुरू हुई। सवसे पहले ढाई बजे से ३ बजे तक सामुदायिक सूत्रयज्ञ हुआ। सवातीन वजे 'अवघाचि ससार सुखाचा करीन' (सारा संसार सुखमय वनाऊँगा) भजन से आरंभ हुआ। श्री वल्लभस्वामी ने प्रास्ताविक भाषण किया।

वल्लभस्वामी :

हम लोग हर साल सम्मेलन के निमित्त इकट्ठे होते हैं। एक तरह से हमारे लिए यह एक-दूसरे के साथ मिलने का सुअवसर है। आज तक का रिवाज यह है कि जहाँ सम्मेलन होता है, उस प्रान्त की ओर से अभ्यागतों का स्वागत किया जाता है। अवकी वार हमने उस प्रथा को छोड दिया है। इस वक्त हम लोग आप सवके लिए एक ही जगह रहने की व्यवस्था नहीं कर सके। पंढरपुर मे जो वडी-वड़ी धर्मशालाएँ हैं, जिनमे हजारों तीर्थयात्री टिकते हैं, उन्हींमे आपके निवास की अलग-अलग व्यवस्था की गयी है। पानी की कुछ कमी है। आपमें से वहुतेरों को स्नान के लिए चन्द्रभागा पर ही जाना होता है। इसलिए आपको कई तरह की अव्यवस्था और असुविधा सहन करनी पडी है। इस सवका भान हमे है। इसके लिए मैं क्षमायाचना करता हूँ।

इस दफा सम्मेलन की कार्य-प्रणाली में भी हमने कुछ हेर-फेर किये हैं। हर साल सम्मेलन के लिए जो प्रमुख नेता या अतिथि आते थे, उनमें से कुछ व्यक्तियों के भाषण सम्मेलन में कराये जाते थे। ऐसे भाषण इस सम्मेलन में नहीं होंगे। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के कार्यकर्ता अपने कार्य की विशेषता और अनुभव की वातें आप

लोगों के सामने थोड़े में रखेंगे। दूसरे कुछ वक्ता इस आरोहण के भिन्न-भिन्न पहलुओं के विषय में अपने अनुभव के परिणाम तथा कठिनाइयाँ अपने भाषणों में आपको बतलायेंगे। इसके अलावा प्रतिवर्ष की तरह हम लोग अलग-अलग विषयों को लेकर चर्चा-मंडलों में बँट जायँगे। वहाँ जो चर्चाएँ होंगी, उनका सारांश कुछ निष्कर्षों के रूप में सम्मेलन के सामने प्रस्तुत किया जायगा। अन्तिम दिन हर साल की तरह सर्व-सेवा संघ की ओर से एक निवेदन आपके सामने पढ़ा जायगा। उसी दिन राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू भी सम्मेलन में उपस्थित रहनेवाले हैं, उनका भाषण होगा। अन्त में बाबा का उपसंहारात्मक भाषण होगा। इस प्रकार सम्मेलन के कार्यक्रम की रूपरेखा होगी।

इस वर्ष हमें हमारे तीन ज्येष्ठ, श्रद्धेय और परम प्रिय सहयात्रियों का वियोग हुआ है। बाबा राघवदास, उत्कल के गोपबन्धु चौधरी और बिहार के लक्ष्मीबाबू अपना-अपना कार्य करते हुए अकस्मात् शरीर छोड़कर चले गये। इस सम्मेलन के आरंभ में आप सबकी ओर से मैं उनका पुण्यस्मरण करता हूँ और उन्हें अपनी प्रेमादरयुक्त श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

आप सबकी ओर से मैं माता रमादेवी चौधरी को सम्मेलन का अध्यक्ष स्थान ग्रहण करने की विनती करता हूँ। माता रमादेवी सिर्फ गोपबाबू की सहधर्मिणी ही नहीं रही हैं, उत्कल के सार्वजनिक जीवन में उनका अपना स्वतन्त्र और अद्वितीय स्थान है। मैं उन्हें यह सूत की गुंडी अर्पण करता हूँ। उनके चिरपरिचित सहयोगी हमारे भाई धोत्रेजी आपको उनका परिचय करा देंगे।

भाई धोत्रे :

इस सम्मेलन की अध्यक्ष* पूज्य रमादेवी का परिचय देते हुए मैं अत्यंत आनंद और दारुण वियोग-दुःख का अनुभव एकसाथ कर रहा हूँ। इन संमिश्र भावनाओं से मेरा हृदय भर आया है। अभी पूरा एक महीना भी नहीं हुआ कि

---

*अध्यक्ष, मंत्री आदि पदवाचक संज्ञाओं का स्त्रीलिंगी पर्याय हमने अनावश्यक माना है। ये पदवाचक शब्द लिंगनिरपेक्ष ही माने जाने चाहिए।

रमादेवी के पति और सहधर्मचारी हमारे परम प्रिय आदरणीय बडे भाई गोपबन्धु चौधरी का देहान्त हुआ। गोपबाबू, रमादेवी तथा उनके समूचे परिवार से ही मेरा अत्यत घनिष्ठ सबध रहा। उत्कल के सभी रचनात्मक कार्यकर्ता उनके परिवार के सदस्य है। मुझे भी उन लोगो ने अपने मे से एक माना है। पुरी के सर्वोदय-सम्मेलन मे कार्यकर्ताओं से मेरा परिचय कराते समय गोपबाबू ने कहा था कि रघुनाथ श्रीधर धोत्रे नाम महाराष्ट्रीय है, लेकिन हम इनको महाराष्ट्रीय नही मानते, ये तो हमारे उडिया हैं। इतना अभिन्न सम्बन्ध उनके साथ मेरा था।

१९३० मे जब मैं दूसरी बार उत्कल गया, तब मेरी इस परिवार के साथ घनिष्ठता बढी। रमादेवी के नेतृत्व मे उस वक्त भले-भले घरों की लडकियाँ कटक शहर की हरिजन-बस्तियों मे जाकर सेवा-परिचर्या का काम करती थीं। बाद मे रमादेवी और गोपबाबू ने रेल्मार्ग से दूर बरी में 'सेवाघर' के नाम से एक आश्रम की स्थापना की। आश्रमों के बारे में एक बहुत पुरानी बात चली आती थी। बारडोली आश्रम की जब स्थापना हुई, उस वक्त वहाँ मै गया था। पूज्य सरदार श्री और मगनलाल भाई गाधी उपस्थित थे। सवाल हुआ, बारडोली आश्रम कैसा होगा? मगनलाल भाई गाधी ने कहा, "काफी रकम खर्च करके पक्के मकानों का एक सुन्दर आश्रम बनाया जा सकता है। क्या उसी तरह का आश्रम यहा बनेगा?" सरदार ने कहा, "पक्के और कीमती मकानो का आश्रम House of Lords है, उसे साबरमती मे रहने दो। बारडोली में House of Commons आश्रम बनेगा।" गोपबन्धु का बरी का सेवाघर सब प्रकार से House of Commons था। डेलाग-सम्मेलन के अन्त में आभार प्रदर्शन का काम पूज्य सरदार को सौंपा गया। उस मौके पर उन्होंने कुछ मार्मिक वाक्य कहे। उन्होंने कहा, "यहाँ रसोई-घर का सारा काम सिर्फ बहनों के हाथ मे रहा। सब जवान लडकियाँ फुरती से सारा काम करती थी। सब तरह की सुविधा और व्यवस्था हो जाती थी। लेकिन काम करनेवाली किसी लडकी के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलता था। इस तरह की मौन और कुशल सेवा में रमादेवी निष्णात हैं। उनका सारा जीवन ही मौनसेवा का रहा है। इसी कौटुम्बिकता के कारण गोपबन्धु उत्कल के 'बापा' बने और रमादेवी सबकी माँ (बऊ) बनीं। बापा और

माँ एक रूप बने और दादा धर्माधिकारी के शब्दों में कहूँ, तो वे एक-दूसरे से बढ़कर बने।

आत्मीयता के कारण मैं रमादेवी के विषय में इससे अधिक कुछ नहीं कहूँगा। उन्होंने बहुत ही कृपापूर्वक अध्यक्ष बनने की हमारी प्रार्थना को स्वीकार किया, इसके लिए हम बहुत कृतज्ञ हैं। माता की अध्यक्षता में उसके आदेश से सारा काम चले यह चीज अब रामायण-महाभारत की कथा ही नहीं रही, आज हमारे सामने चरितार्थ हो रही है। रामायण-महाभारत का स्मरण करके आप सबकी ओर से मैं रमादेवी से प्रार्थना करता हूँ कि आज तक आप उत्कल की माता रहीं, लेकिन आपके हृदय मे जो अपार मातृत्व है और असीम वात्सल्य है, उसका लाभ भारत के सभी भाई-बहनों को दीजिये।

वल्लभस्वामी :

एक प्रार्थना है। हमारे सम्मेलनों मे ताली बजाने का रिवाज नहीं है। यह एक कौटुम्बिक स्नेह-सम्मेलन है। औपचारिक सभा नहीं है। इसलिए कृपया ताली न बजायें।

इसके बाद सर्व-सेवा-संघ के कार्यालय-मंत्री श्री कृष्णराज मेहता ने राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू का मूल हिन्दी सन्देश और श्री जवाहरलालजी का मूल अंग्रेजी सन्देश तथा उसका हिन्दी अनुवाद पढ़कर सुनाया।

संदेश

पंढरपुर मे होनेवाले सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर मै सभी कार्यकर्ताओं का अभिनन्दन करता हूँ। मेरी सदा से यह धारणा रही है कि सर्वोदय-आदर्श को प्राप्त करने के लिए जो प्रयास किया जा रहा है, वह सच्चे अर्थों मे रचनात्मक कार्य है। जिन लोगों का यह विश्वास है कि मानव की उन्नति और सुख-प्राप्ति के लिए मानव-समाज का पुनर्गठन सहिष्णुता, पारस्परिक प्रेम तथा त्याग के आधार पर होना

चाहिए, उन्हें सर्वोदय-आन्दोलन से निश्चय ही प्रेरणा प्राप्त होगी। सम्भव है इस कार्य मे प्रगति धीमी हो, किन्तु जो भी सफलता हम प्राप्त करेंगे, वह अधिक स्थायी होगी। मै आशा करता हूँ कि पंढरपुर-सम्मेलन के फलस्वरूप सर्वोदय-आदर्श और अधिक लोकप्रिय बन सकेगा और इसका व्यापक प्रचार होगा। मै इस सम्मेलन के आयोजको तथा इसमे भाग लेने-वाले कार्यकर्त्ताओ के प्रति अपनी शुभकामनाऍ प्रकट करता हूँ।

२२ अप्रैल १९५८ — राजेन्द्रप्रसाद

MESSAGE

In the ferment that is going on all over India, the excitement of working for the Five Year Plan, of improving our agriculture, of putting up big industries and small of activities of social welfare and reform, of political and economic controversies, of arguments about language or State boundaries, of disruptive tendencies and appeals for unity, of disappointments and disagreements, in short in the troubled but dynamic scene that is India today, the frail figure of Vinobaji stands like a rock of strength modest and gentle, yet with something of the strength of India's long past in him and something of the vision of the future in his eyes. It is not for us, smaller folk, to judge him whether we agree with him or disagree in some matter,

for he is above these minor judgments. He represents as none else does, the spirit and tradition of Gandhiji and of India.

It is well for us and for India that Vinobaji is with us, ever pointing upwards, ever using the language of affection and of appeal to the hearts of men and women. His concept of Sarvodaya may seem a little odd to many of us, and yet basically it is a far better word and concept than the many that we use In fact, I have refrained from using it because I think we are not good enough for it and I do not wish to exploit a noble work and idea

Vinobaji is of all-India and no State or Province can deny Vinobaji to the rest of the country It is however, the peculiar privilege of Maharashtra for having produced this saint among men. On the occasion of the Sarvodaya gathering at Pandharpur in Maharashtra, I send my greeting and homage to him.

New Delhi **Jawaharlal Nehru**
15-4-58.

प्रधान मंत्री का संदेश :

विनोबाजी भारत की आत्मा एवं परंपरा के प्रतिनिधि

जब कि सारे भारत मे चारो ओर उद्वेग उत्पन्न हो रहा है, पचवर्षीय योजना के सिलसिले मे खेती मे सुधार करने की, छोटे-बड़े उद्योग खड़े करने की, समाजसुधार और समाज-कल्याण की प्रवृत्तियो की सरगरमी पैदा हो गयी है, राजनैतिक और आर्थिक विवादो की धूम है, भापा और राज्य-सीमाओ को लेकर विवाद छिड़े है, एकता भग करनेवाली प्रवृत्तियो और एकता का रक्षण करनेवाली अपीलो तथा निराशाओ एवं असहमतियो का जोर-शोर है, जब सारा भारत मानो अपने मे प्रक्षुब्ध है और गतिमान दृश्य मे [बदल गया है, विनोबाजी की क्षीणकाय मूर्त्ति शक्ति की चट्टान की तरह अडिग, नम्र और विनयशील खडी है। उनमे प्राचीन भारत की सामर्थ्य की झलक है और उनकी ऑखो मे भविष्य के दर्शन की झाँकी है। हम तुच्छ व्यक्तियो को यह अधिकार नही है कि हम उनके विपय मे कोई निर्णय करे, भले ही कई बातो मे हमारा उनसे मतैक्य या मतभेद हो, क्योकि वे ऐसे तुच्छ निर्णयो से परे है। गांधीजी और भारत की आत्मा एवं परम्परा का जैसा प्रतिनिधित्व वे करते है, वैसा दूसरा कोई नही करता।

हमारे लिए और भारत के लिए यह वडे हित की बात है कि विनोबाजी हमारे बीच है। वे निरतर हमको उठाने के लिए संकेत करते है, सभी व्यक्तियो—स्त्री-पुरुपो—के हृदय को स्पर्श करनेवाले प्रेम और अनुरोध की भाषा वोलते है।

सर्वोदय की उनकी कल्पना हम लोगो मे से बहुतो को शायद कुछ अटपटी मालूम हो, लेकिन मूलत वह शब्द और कल्पना हमारे कई शब्दो और कल्पनाओ से कही सुन्दर है। वास्तव मे अब तक मैने उस शब्द का प्रयोग करने से अपने आपको इसलिए रोका है कि अपनी समझ मे हम उसके योग्य नहीं है और मै एक उदात्त शब्द तथा कल्पना से अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहता।

विनोबाजी समूचे भारत के हैं, किसी राज्य या प्रात को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह भारत के दूसरे हिस्सो को उनसे वचित रखे। फिर भी महाराष्ट्र का यह विशिष्ट गौरव-युक्त अधिकार है कि उसने मानव-जाति के इस संत को जन्म दिया।

पढरपुर मे होनेवाले सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर मै उन्हें अपना अभिनन्दन और अभिवादन भेजता हूँ।

नयी दिल्ली, —जवाहरलाल नेहरू
१५-४-'५८

उसके बाद सम्मेलन की अध्यक्ष श्री रमादेवी ने अपने प्रारम्भिक भाषण मे अपनी कृतज्ञता प्रकट की। उनके कहने का आशय यह था कि "अपनी अयोग्यता को समझते हुए भी पूज्य विनोबा की और आप सबकी आज्ञा का पालन करने के लिए जहाँ आपने बैठाया, मैं बैठी हूँ। हम सबको आखिर सर्वोदय का ही काम करना है। जिस वक्त जो काम करने को कहा जाय, उसे धर्म समझकर करना चाहिए।"

वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी (बिहार) :

इस आरोहण का भूमिवितरण एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। उस विषय मे कुछ जानकारी आपके सामने रखने के लिए मै उपस्थित हुआ हूँ।

भूदान-आन्दोलन में लगभग ४४ लाख एकड़ जमीन मिली है। उसमे से करीब सात लाख एकड़ बाँटी जा चुकी है। हमारे सामने जो लक्ष्य है, उसके हिसाब से

यह बहुत छोटा आँकड़ा है। पूज्य विनोबाजी ने हमारे सामने एक विचार रखा था कि देश में एक करोड परिवार ऐसे हैं, जो खेती करते हैं, मगर जमीन के मालिक नहीं हैं। उनकी भूमिहीनता मिटाने के लिए कम-से-कम पाँच करोड एकड जमीन चाहिए। उस लक्ष्य के सामने हमारा यह आँकडा कुछ भी नही है। कालडी-सम्मेलन में हमने यह फैसला किया था कि अब हम भूमिदान के बदले ग्रामदान ही माँगेंगे। ग्रामदान से केवल भूमिहीनता ही नहीं मिटती, बल्कि आर्थिक विषमता की जडे कटती हैं। भूमिदान का जो थोडा-सा काम हुआ, उसीका विकास होते-होते भूमिदान ग्रामदान मे परिणत हुआ। भूमिदान की थोड़ी-सी ही जमीन का वितरण हुआ, यह बात मै मानता हूँ। फिर भी ग्रामदान भूमिदान की कोख से ही पैदा हुआ। यह बात सही है। पूज्य विनोबाजी भूमिदान माँग रहे थे, उसीमे से मगरौठ का ग्रामदान पैदा हुआ। फिर तो एक धारा-सी बह निकली, और सैकडों ग्रामदान मिले।

वितरण में केवल इतना ही उद्देश्य नहीं था कि भूमिहीनो को जमीन मिले, बल्कि यह कोशिश भी थी कि हरिजनो को भी जमीन मिले। ठाकर बाप्पा को इसकी चिन्ता थी। बाप्पा ने देखा कि कुछ हरिजन-जातियों की कहीं स्थायी बस्ती ही नहीं हो पाती। एक-दूसरी से सटी हुई बस्तियाँ भी उनकी बहुत कम हैं। इसलिए यह सोचा जाता था कि उनके पैर में अगर जमीन की बेडी पड जाय, तो वे एक जगह रहकर कुछ संस्कृति का विकास भी कर सकते है। पूज्य विनोबाजी ने यह नियम बनाया कि जहाँ तक हो सके, भूमिदान की एक तिहाई जमीन हरिजनों को ही मिले। परन्तु प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि भूमिदान की अधिकतर जमीन हरिजनो को ही मिली। क्योकि भूमिहीनों मे हरिजनो की संख्या ही ज्यादा है।

भूमि-वितरण के कारण रचनात्मक कामों का भी कुछ विकास हुआ है। पहले एक आदमी खादीधारी होता था, तो हम बडा गर्व करते थे। अब भूमिदान-आन्दोलन के परिणामस्वरूप गाँव-के-गाँव खादी का संकल्प करने को तैयार हैं। हम कभी ग्रामों की अपेक्षाएँ पूरी नही कर सके हैं। पहले खद्दर का स्टॉक जमा होता था, तो कठिनाई होती थी। लेकिन अब अगर कोई गाँव सकल्प करना चाहता है, तो उसे खद्दरमय बनाने में कठिनाई होती है। फिर भी हमारा लक्ष्य तो हर गाँव को वस्त्र-स्वावलम्बी बनाना ही है।

भूमिदान-आन्दोलन के कारण ही सामाजिक भेदों की तीव्रता कुछ कम होने लगी है। भूमि का दाता ब्राह्मण आदाता हरिजन के माथे पर तिलक लगाता है, उसे माला पहनाता है और उसकी इज्जत करता है। इस तरह दोनों का अन्तर कुछ कम होता है।

एक आशंका यह की जाती है कि आज जिन लोगों के पास साधन हैं, उनसे जमीन लेकर अगर वह साधनहीन मजदूर को दी जायगी, तो उत्पादन बढ़ने के बजाय घटेगा। परन्तु वास्तविकता यह है कि भूमिहीन को भूमि मिलने से उत्पादन बढ़ता है। आज बेकार और रद्दी जमीन में भी पैदावार हो रही है। हमें इस बात का भान है कि विनोबाजी ने अधिक-से-अधिक समय बिहार को दिया। यह उनकी कृपा है और हम ऋणी हैं। परन्तु यह बात गलत है कि विनोबाजी के चले आने पर बिहार का काम ही बन्द हो गया। बन्द नहीं हुआ है। जमीन बँट रही है। परन्तु असली सवाल केवल जमीन के बँटवारे का नहीं है। लोगों के भाव-परिवर्तन का है। नयी बात पहले विचार में आती है, फिर कृति में उतरती है। यह जमीन अब हमारी नहीं रहनेवाली है, यह विचार बिहार में फैल गया है। जिन भूमिहीनों को भूमि दी गयी उनमें से जिनके पास बैल, हल आदि साधन नहीं थे, उन्हें वे दिलाये गये हैं। उन लोगों को अगर सफलता मिली, तो जमीन बाँटने के काम को भी गति मिलेगी।

वियोगी हरि (दिल्ली) :

मालूम नहीं, मुझे बोलने के लिए क्यों आज्ञा दी गयी है। शायद इसलिए हो कि सर्वोदय में आरोहण अन्त्योदय से शुरू होता है। भूदान और ग्रामदान के काम में मैंने कोई प्रत्यक्ष भाग तो नहीं लिया है। पदयात्राओं में भी शामिल नहीं हुआ हूँ। परन्तु कभी-कभी भूदान और ग्रामदान के शिविरों में गया हूँ और दस-पाँच जगह वितरण के लिए भी गया हूँ। आन्ध्र के मित्रों से मैंने कहा था कि भूदान के विषय में मैं आन्ध्र में आऊँगा। आन्ध्र मुझे वैसे भी बहुत प्रिय है। और भूदान का तो जन्म ही आन्ध्र में हुआ, और हरिजनों की समस्या के कारण हुआ। भूमि-वितरण में नियम यह है कि भूमिदान की कम-से-कम एक तिहाई जमीन हरिजनों को मिले। लेकिन मैं जानता हूँ कि कितने ही स्थानों में अस्सी फीसदी भूमि हरिजनों

को मिली है। उनमें से कई हरिजन परिवार उस भूमि को पाने पर सुखी हैं। इस तरह यह आन्दोलन हरिजनों का उपकार कर रहा है।

हरिजन-सेवक-संघ ने इसमें ज्यादा भाग नहीं लिया, यह उसकी भूल है। नागदा सम्मेलन में हमने तै किया था कि हरिजन-सेवक-संघ भूदान और ग्रामदान में भाग लेगा। यह बात जरूर है कि उसका मुख्य काम अस्पृश्यता निवारण का है। लेकिन अपना मुख्य काम करते हुए वह भूदान और ग्रामदान मे अधिक-से-अधिक जितना समय और शक्ति लगा सके, लगाये।

कुछ लोगों का खयाल है कि जब संविधान में अस्पृश्यता नही रही, तो अस्पृश्यता का सवाल ही नहीं रह जाता है। परंतु कानून बनने के बाद भी अभी ग्रामों मे अस्पृश्यता मौजूद है। शहरो से भी अभी अस्पृश्यता नष्ट नहीं हुई है। दिल्ली मे एक हरिजन अफसर को होटल मे जाने से रोका गया। शहरों में बहुत बहस-मुबाहिसा होता है, फिर भी अस्पृश्यता बनी हुई है। गाँवों में पुरानी प्रथाएँ और रूढ़ियाँ शहरों की अपेक्षा ज्यादा दिन बनी रहती हैं। वहाँ महत्त्व का प्रश्न कुओं का है। हम जब वहाँ जाते हैं, तो गाँववाले हमसे कहते है कि हमारे यहाँ कोई भेदभाव नही है, मगर गाँव से हम जब चले जाते हैं, तो हरिजनों को पानी नहीं भरने दिया जाता। हम भी मानते हैं कि कानून और सत्ता की जबर्दस्ती का सहारा न लिया जाय। लेकिन असल बात तो यह है कि सरकार के अधिकारी ही अस्पृश्यता-निवारण नहीं चाहते हैं। वे उसमें काफी दिलचस्पी नहीं लेते। कारण स्पष्ट ही है। चुनाव मे जीतने की सरकार-पक्ष को फिकर होती है। चुनाव के वक्त तो 'नास्ति वोटान् परो देव' की हालत होती है। इसलिए सत्ताधारी पक्ष के मन मे अस्पृश्यता-निवारण की ज्यादा लगन नही होती। तब सरकारी अधिकारी भी कहते है, धीरे-धीरे हो जायगा। हम जबर्दस्ती से समाज-परिवर्तन नही कराना चाहते, लेकिन हृदय-परिवर्तन के साथ-साथ ही कानून की प्रेरणा का भी प्रयोग किया जायगा, तो वह अनुचित नहीं समझना चाहिए। सवर्णों और हरिजनो के लिए यह आत्मशुद्धि और आत्मोद्धार का आन्दोलन है। इसलिए उसका मुख्य साधन तो प्रेम ही है। प्रेम से ही दोनों का बेडा पार होगा। नहीं तो एक जगह से अस्पृश्यता उठकर दूसरी जगह जा बैठेगी। मै स्वय इस काम मे प्रेम की प्रेरणा से ही आया हूँ। १९२१ मे 'प्रताप' मे मैंने छुआछूत के बारे मे लेख लिखे।

पू० ठक्कर बापा ने कहा, जरा हरिजन-बस्तियों को भी जाकर देखो। उन बस्तियों को देखकर सन्तों की वाणी मेरे चित्त मे गूँजने लगी। संतों की वाणी की प्रेरणा से ही मैं इस आन्दोलन मे पड़ा। केवल राजनीति के मार्ग से यह सवाल हल होनेवाला नहीं है। पंढरपुर तो संतो का अपना क्षेत्र है। यहाँ सन्तों ने प्रभूत प्रसाद बोटा है। उन्होंने प्रसाद लुटाया, हमसे लेते नहीं बना। आप इस भूमि से अभेद का दर्शन करके जायँ, तो सर्वोदय का आरंभ यथार्थ रूप से अन्त्योदय को लेकर होगा।

नारायण देसाई (गुजरात):

मेरा विषय है शहरों का काम और सम्पत्तिदान।

एक लाख से ज्यादा लोकसंख्यावाले शहर मे एक आदमी कन्धे से थैली लटकाकर घूम रहा है। चलते हुए पुकारता जाता है, "जिसे मानवता का पाथेय चाहिए, वह ले ले। मानवता का पाथेय।" यह शख्स कौन है? यह भावनगर का आत्माराम भट्ट है। ये ही कलकत्ते के चारुबाबू हैं। सैकड़ो लोग गाना गाते हुए उनके स्वागत और सम्मान के लिए तैयार हैं। एकाकी पद-यात्रा से लेकर सामूहिक पद-यात्रा तक सारे तरीके उन्होंने आजमाये। उनका क्या अनुभव हुआ? लोगों ने प्रशंसा की, स्वागत सम्मान किया, प्रेम से आतिथ्य किया, लेकिन उनका काम नहीं उठाया।

इसका क्या कारण हो सकता है? आज तक के आन्दोलन शहरों से गाँवों की तरफ गये। इस आन्दोलन की गंगा उलटी है। यह गाँव में शुरू हुआ। इसलिए शुरू मे शहरों में उत्साह नहीं दीख पड़ा। अब शहर के लोग नींद से जागकर अँगड़ाइयाँ लेने लगे हैं। पुराने आन्दोलन आवेश और उत्साह के होते थे। दो-तीन महीनों तक या एक साल तक उत्साह की लहर दौड़ जाती थी, फिर सारा शान्त हो जाता था। इस आन्दोलन मे यह विशेषता है कि हमारा उत्साह लगातार सात वर्ष तक बढ़ता ही रहा है।

कलकत्ता, बम्बई और मद्रास तीन महानगरों मे भूदान, सम्पत्तिदान का कुछ काम हुआ। बम्बई में कुछ विशेष काम हुआ। ३०-४० लाख की आबादी में ३०-४० कार्यकर्ताओं की संख्या नगण्य है। फिर भी इन ३०-४० नवयुवकों ने

जी-जान से काम किया। न उनके सोने के लिए कोई जगह है, न भोजन का ठोक-ठिकाना है। रात को किसी ठेलेवाले के तख्ते पर सो जाते हैं और पौ फटते ही उठ जाते हैं। दिन मे नहाने के लिए मौका नहीं मिलता, इसलिए कल का स्नान आज रात को ही करके सो जाते हैं। इस तरह के ३०-४० नौजवान कार्यकर्ता बम्बई मे काम करते हैं।

शहर में ग्राम परिवार का प्रयोग भी चल रहा है। २०० कुटुम्बों ने अपना एक सयुक्त परिवार वना लिया है। इसमें हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, पारसी, धनवान्, दरिद्री सभी शामिल हैं। इनका एक सकल्प यह है कि इन परिवारों मे से कोई बच्चा विना पढ़ाई के नही रहेगा और कोई परिवार आरोग्य की सुविधा के विना नहीं रहेगा। शिक्षण और आरोग्य सभी की संयुक्त जिम्मेवारी होगी। पहले यह हाल था कि अड़ोस-पड़ोस में रहनेवाले एक-दूसरे को जानते-पहचानते भी नहीं थे। अव कम-से-कम एक चाल और एक पडोस मे रहनेवाले दिन में एक बार मिलेंगे और सबके बच्चों की देखभाल मिल-जुलकर करेंगे।

विचार-प्रचार की दृष्टि से शायद उत्तरप्रदेश का कोई भी कॉलेज ऐसा नहीं होगा, जहाँ सर्वोदय का विचार नही पहुँचा है। अहमदाबाद के बालक विद्यार्थियों में प्रचार हुआ है। उन्होंने सूत्रदान में भाग लिया है। हर क्षेत्र मे किसी-न-किसी साधन को लेकर प्रवेश करने के लिए अवसर है। दक्षिण भारत के मुख्य-मुख्य शहरों मे सम्पत्तिदान का खासा प्रयोग महेश भाई कोठारी और हमारे जापानी मित्र गोपल भाई ने किया है।

जिन लोगो ने आशिक समय-दान दिया है, ऐसे व्यक्ति शहर के काम को बराबर चलाते रहते हैं। दादा धर्माधिकारी ने एक समय एक बहुत मार्के की बात कही। लोग कहते हैं कि "क्रान्ति फुरसत से नहीं होती, मैं कहता हूँ कि फुरसत से ही क्रान्ति होनी चाहिए। फुरसत का समय शौक का समय होता है। हरएक अपनी फुरसत का समय इस क्रान्ति के लिए दे देता है, तो उसे क्रान्ति का शौक होने लगता है। और इस तरह इस फुरसत के समय से ही वातावरण मे क्राति की वृत्ति फैल जाती है।"

उधर बॅगलूर में श्री डोनाल्ड ग्रूम पहुँच गये हैं। वे जन्म से तो अंग्रेज हैं। लेकिन उनकी रग-रग में भारतीयता रम गयी है। इसी प्रकार दक्षिण और पश्चिम

भारत के शहरों में सर्वोदय-विचार पहुंचा है। गुजरात में शायद ही कोई शहर बचा हो। आगे का काम जगह-जगह के सर्वोदय-मंडल करते हैं। अध्ययन-मंडलों में मुक्त विचार होता है। जहाँ जैसे काम की प्रेरणा हो, वहाँ वैसा काम किया जाता है। सूरत के कुछ लोग हर सप्ताह गाँवों में जाकर सफाई वगैरह का काम करते हैं।

प्रत्यक्ष ऑकडे देखने पर सम्पत्तिदान का काम शायद असफल मालूम पडे। हमारे पास आँकडे भी बहुत कम हैं। परन्तु हम सबका अनुभव यह है कि जहाँ-जहाँ निष्ठावान् कार्यकर्ता संपत्ति-दाता के पास पहुँच जाते हैं, वहाँ-वहाँ दान की रकम का उचित विनियोग हो सका है। आगरे में पूरी-की-पूरी रकम का विनियोग हुआ। सम्पत्ति-दाता के पास पहुँचने में कठिनाई तो जरूर होती है, परन्तु वह दूर की जा सकती है। जो दाता मजदूर हैं, उनसे मिलना ही कठिन होता है।

शहर के काम का एक पहलू मजदूरों का संगठन भी है। इस दिशा में बम्बई में कुछ प्रयत्न हुआ है। मजदूरों से कहा गया कि असन्तोष व्यक्त करने का हडताल ही एकमात्र मार्ग नहीं है। फिर यह भी जरूरी नहीं है कि हडताल का आज जो रूप है, वही बना रहे। आज की हड़ताल का सूत्र है, हम काम नहीं करेंगे और समझौता होने पर हडताल के दिनों का भी वेतन माँगेंगे। हमारा सूत्र इससे भिन्न है। हम काम करेंगे और वेतन नहीं लेंगे। सामान्य मजदूरों ने इसे अधिक व्यवहार्य समझा है। नेताओं ने भी इसे सुन लिया है और विचार करने योग्य माना है। इस दिशा में कुछ अधिक प्रयत्न होना जरूरी है। इसलिए उस सम्बन्ध में अगले साल ही कुछ कहा जा सकेगा।

वल्लभस्वामी :

शान्तिसेना और सूताजलि की जानकारी देने का काम मेरे जिम्मे है। अभी किसीने मेरा परिचय पूछा है। मेरा नाम वल्लभस्वामी है। १९१९ में जब एक छोटा-सा बच्चा था, तभी बाबा के पास आया। तब से उनके मार्गदर्शन में काम करता आया हूँ। भगवान की कृपा हो, तो आगे भी करता रहूँगा और यह प्रार्थना है कि यह शरीर उसी काम को करते-करते गिरे।

गांधीजी के देहान्त के बाद गांधी-स्मृति के तौर पर बाबा ने सूताजलि शुरू की। हरएक योजना में कुछ खूबियाँ और कुछ कमियाँ होती ही हैं। गांधी-स्मृति

के लिए कई तरह के सुझाव आये। किसीने कहा, बड़े-बडे मेले लगने चाहिए, किसीने कहा, कुछ विधि और समारोह प्रतिवर्ष होने चाहिए, किसीने कहा, गाधीजी के मन्दिर बनवाये जायँ, उनकी मूर्ति स्थापित की जाय, उसके सामने पैसे और चढोतरी रखी जाय, फूल और तुलसी-दल चढ़ाये जायँ। विनोबा ने कहा, यह कुछ नही। गाधीजी को जो चीज सबसे अधिक पसन्द थी, वही हमारा सारा राष्ट्र उस राष्ट्रपिता की स्मृति मे करे।

१९१६ में ही गाधीजी की दूरदृष्टि ने देख लिया कि अगर देश को एक बनाना है, तो राष्ट्रभाषा के तौर पर उसे एक भाषा का विकास करना होगा। तुरन्त उन्होंने अपने छोटे बेटे देवदास गाधी को हिन्दी-प्रचार के लिए दक्षिण भारत भेजा। उन्हे चरखे की धुन तो बहुत पहले से थी। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि गाधीजी के उपदेश का सार है, सत्याग्रह और खादी। आज के जीवन में नित्यधर्म के रूप मे सत्याग्रह का अर्थ है, सक्रिय श्रमनिष्ठा। इसलिए विनोबा ने कहा कि देश का हर व्यक्ति, क्या छोटा और क्या बडा, अपने हाथ की कती हुई एक गुण्डी हर साल गाधीजी के चरणो मे अर्पण करे। १९४८ के पोनार मेले मे पहली बार गुण्डियाँ अर्पण हुईं। बढ़ते-बढ़ते सारे देश मे इस साल वह सख्या ७ लाख तक पहुँची है। विनोबा कहते हैं कि वोट देने का अधिकार प्राप्त करने के लिए वयो-मर्यादा है। सूताजलि के लिए किसी तरह की मर्यादा नहीं है। अगर मतदाताओ की सख्या १५-१६ करोड है, तो हमारी उससे कम क्यो हो? ज्यादा ही होनी चाहिए। यह कल्पना सुहावनी है। लेकिन वह जितनी आसान लगती है, उतनी आसान साबित नहीं हुई। उसके लिए जितनी श्रद्धा, निष्ठा और उत्कटता चाहिए, उतनी अभी हम पैदा नहीं कर पाये हैं। हम कत्तिनों से यों ही गुण्डियाँ नहीं ले लेते, उन्हे समझाकर ही गुण्डियाँ ली जाती हैं। जो अपनी खुशी से देती हैं वे देती हैं।

सूताजलि स्वेच्छापूर्वक श्रम का पवित्र प्रतीक है। इसलिए उसका विनियोग श्रमनिष्ठ संस्थाओं के लिए ही होना चाहिए। सेवाग्राम-आश्रम के लोगो ने निर्णय किया कि हम अपने आश्रम को श्रमनिष्ठ सस्था बनायेंगे। श्रमनिष्ठ संस्थाओं की सख्या बढ नहीं रही है। क्योंकि इस तरह का काम करनेवाले लोग भूमिदान में लगे हुए हैं। अत पुरी के सम्मेलन में निश्चय हुआ कि सूताजलि का उपयोग

भूमिदान के काम के लिए किया जाय। छठा हिस्सा सर्व-सेवा-संघ को मिले। भूदान-आरोहण के काम के लिए अब संचित निधि से सहायता नहीं ली जाती। पहले गांधी-निधि से सहायता ली जाती थी, अब सूताजलि से छठा हिस्सा लिया जाता है। छठा हिस्सा उस प्रान्त के लिए सुरक्षित रखा जाता है, जहाँ से सूताजलियाँ आयी हैं। कमजोर जिलों को विशेष मदद दी जाती है।

शान्तिसेना के विषय में केरल में विशेष जोर दिया गया। शान्तिसेना की बुनियाद में यह तत्त्व है कि जिस शक्ति से समाज का रक्षण होगा, उसीकी समाज में अन्तिम सत्ता होगी। इसलिए यदि शस्त्र-शक्ति से रक्षण होगा, तो करुणा और मानवता दासी ही बनी रहेगी, रानी कभी नहीं बनेगी। विनोबा की यह योजना है कि देश के हर पाँच हजार व्यक्तियों में एक शान्ति-सैनिक रहे। शान्ति-सैनिक का नित्य-धर्म सेवा होगा। इसलिए वह असल में सेवा-सैनिक रहेगा। उसकी यह कोशिश होगी कि अशान्ति के प्रसंग ही न आयें। इस दृष्टि से वह अशान्ति के कारणों को दूर करता रहेगा। बलिदान की आवश्यकता पड़ने पर वह आत्मोत्सर्ग करेगा। आज्ञा पाते ही किसी भी जगह जाने के लिए उसे तैयार रहना होगा। यह कल्पना बिल्कुल नयी है। शान्तिसेना के सिद्धान्तों का विचार करने पर उसमें प्रतिज्ञापत्र, हस्ताक्षर आदि बातें विचारपूर्वक नहीं आने दी हैं। उससे जो छह प्रकार की अपेक्षाएँ हैं, उन्हें वह स्वीकार करता है, ऐसी लिखित सूचना वह विनोबा को दे दे, इतना पर्याप्त माना गया है। जो सेवानिष्ठ होगा, उसे श्रमनिष्ठ तो होना ही है। इसलिए उसे श्रमनिष्ठा का शिक्षण भी दिया जायगा। हमारे जो कार्यकर्ता हैं, वे शांतिसेना के सिद्धान्तों को अच्छी तरह समझें और सोचें। सिर्फ कहीं भी जाने की या अवसर आने पर बलिदान करने की तैयारी शान्ति-सैनिक की योग्यता नहीं है। उसके सिद्धान्तों का ठीक-ठीक आकलन चाहिए।

राजसभा (केरल) :

बाबा के तूणीर में से जो सर्वोत्तम बल निकला है, वह सम्मतिदान है। सौम्यतम प्रक्रिया का वह प्रतीक है। समाज-परिवर्तन के लिए जो सेवा करना चाहता है, उसे लोगों की मंजूरी चाहिए। श्रमनिष्ठा के लिए सूताजलि है। हमारी एक गुंडी सूत समाज में श्रम का गौरव बढ़ाती है। जहाँ ग्रामदान का काम नहीं

२

है, वही भी सूताजलि, समयदान लोग देते हैं। सरकार हमारी सम्मति से बनती है। इसके लिए हम उसे वोट देते हैं। जितने कोश (वजट) सरकारे पेश करती है, वे नागरिको की सम्मति से ही होते हैं। इसी तरह ग्रामदान के लिए मजूरी चाहिए। ग्राम-सेवा का कार्य और शातिसेना का कार्य जो करना चाहता है, उसे उस क्षेत्र के लोगों का स्पष्ट समर्थन चाहिए। यही सम्मतिदान है।

केरल मे मजदूर भी ग्रामदान और भूमिदान की चर्चा करने लगे हैं। वावा जव हनुमान की पुण्यभूमि पर उतरे, तो सम्मतिदान और सर्वोदय-पात्र का आविर्भाव हुआ। सम्मतिदान और सर्वोदय-पात्र की योजना में वहनों को आगे रहना चाहिए। वावा ने हिम्मत दिलाकर आन्ध्र, केरल, उड़ीसा की वहनों को सर्वोदय-पात्र की योजना के लिए प्रोत्साहित किया। सर्वोदय-पात्र द्रौपदी का अक्षय-पात्र वन जाना चाहिए। वह हर घर में कृष्ण की थाली है। सर्वोदय का सन्देश घर-घर वह पहुँचाता है। हरएक माता के हृदय तक पहुँचने का यह एक अच्छा साधन हाथ आया। क्षुधा से सत्रस्त दुनिया के लिए यह एक स्नेह का अहिंसक साधन मिल गया है। भारत के करीव-करीव सव प्रान्तों में सर्वोदय-पात्र का काम शुरू हो गया है। प्रेम, भक्ति और श्रद्धा से सर्वोदय-पात्र की योजना का स्वीकार सर्वत्र हुआ है। तमिलनाड की कृष्णम्मा अपना अनुभव वतलाती हैं और कर्नाटक की वहनें कहती हैं कि सर्वोदय-पात्र वहाँ वहुत पवित्र माना जाता है। वहनें पात्र पर फूल चढ़ाती हैं, उसकी पूजा करती हैं और वाद मे भोजन करती हैं। छोटे-छोटे वच्चे मुट्ठीभर अनाज उसमें डालते हैं और उसे 'आजोवा (पितामह) पात्र' कहते हैं। इस तरह इसके आस-पास इतिहास लिखा जा रहा है। वच्चों पर इसका अद्भुत परिणाम होता है। जव वे रूठते हैं या हठ करते हैं और किसी तरह नहीं मानते—साम, दाम, दड, भेद के सारे प्रयोग जव वेकार सावित होते हैं, तव माँ कहती है, "ठीक है, तुम नहीं मानोगे तो आज सर्वोदय-पात्र में तुम्हारे हाथ से अनाज नहीं डाला जायगा।" तव वच्चा मान जाता है। इस प्रकार इस पात्र के दाने-दाने पर नये ससार के अक्षर लिखे हैं। मुस्लिम घरों में वच्चों के हाथों से अनाज जमा कराके मस्जिदों मे पहुँचाया जाता है। सारे अनाज का विनियोग निधिमुक्त सैनिकों के लिए भारतमाता के अभिमन्युओं के निर्वाह के लिए होता है। इस प्रवृत्ति को व्यापक वनाना है। आप सारी वहनें हिम्मत से

यह काम कर सकती है। इस अन्न का दाना-दाना क्रान्ति की ध्वनि हर घर में ही नहीं, सारे वातावरण में फैलायेगा।

वल्लभस्वामी :

मेरे पास लगातार चिट्ठियाँ आती हैं कि यह खेल कब तक चलेगा? इसमें थोड़ा समय तो जायगा, लेकिन इस खेल में अनुभव की सजीवता है। यह सिर्फ बच्चों का खेल नहीं है। दादा धर्माधिकारी कहते हैं कि "घर-घर बच्चे मिट्टी खाते हैं, मगर बालकृष्ण ने मिट्टी खायी, तो उसमें से विश्वरूप का दर्शन हुआ। बूढ़ा विनोबा मिट्टी मांगता है, उसमें कार्यकर्ताओं को विश्वरूप का दर्शन होता है। उसकी झाँकी वे हमको दिखाते हैं।" खैर! कल बजे आठ सवेरे से चर्चामंडलों की अलग-अलग बैठकें इसी सभामंडप में अलग-अलग स्थानों पर होंगी। चर्चामंडलों का आयोजन इस प्रकार है —

	विषय	संयोजक	सहायक
१	ग्रामस्वराज्य	करणभाई	अण्णासाहब सहस्रबुद्धे
२	सत्याग्रह	नारायण देसाई	दादा धर्माधिकारी
३	भावी कार्यक्रम	ठाकुरदास बंग	धीरेन्द्रभाई
४	शान्तिसेना	आशादेवी	शंकरराव देव
५	तन्त्रमुक्ति	वल्लभस्वामी	नवबाबू

इसके बाद विनोबा का प्रवचन हुआ।

विनोबा :

पंढरपुर-सम्मेलन स्नेह-सम्मेलन बने

आज मैं उस विठोबा मंदिर के शिखर के सामने बैठकर बोल रहा हूँ, जिसका दर्शन कर ५-६ सौ साल से हरिजन वापस लौटते थे। वे यात्रा के लिए जाते थे, लेकिन उन्हें मन्दिर के अंदर जाकर भगवान का दर्शन नहीं मिलता था, तो भी उनकी श्रद्धा अटूट रही। हिन्दू-धर्म की सबसे श्रेष्ठ उपासना उन लोगों ने की है और समाधान माना है कि हमें मंदिर के शिखर का दर्शन होता है, तो हमारी यात्रा

सफल हो गयी। उन दिनों वे लोग पैदल आते थे और अंदर प्रवेश नहीं मिलता था, तो उसकी शिकायत करने के बजाय वे समझते थे कि शिखर का दर्शन हुआ, तो भगवान् का दर्शन हुआ। भगवान् का दर्शन होता है और हर जगह होता है, जो उसके लिए प्यासा होता है।

मन्दिर-प्रवेश की समस्या

कालपुरुष अपना काम कर रहा है। दस साल पहले एक महापुरुष (साने गुरुजी) ने यहाँ पर अनशन किया था। हरिजनों की वेदना उनके हृदय मे प्रकट हुई और उनके अनशन से मदिर के दरवाजे हरिजनो के लिए खुल गये, लेकिन फिर भी मदिर मे अहिन्दुओं का प्रवेश अभी तक नही हुआ था। हमने नम्रतापूर्वक जगन्नाथ-पुरी मे उसकी कोशिश की थी, लेकिन जहाँ से नानक को वापस लौटना पडा था, वहीं से मुझे भी वापस लौटना पडा। इसलिए कि एक बहुत ही श्रद्धा-भक्तिमती फ्रेंच महिला मेरे साथ थी। मैंने उचित समझा कि जहाँ उस महिला का प्रवेश नहीं हो सकता है, वहाँ मुझे नहीं जाना चाहिए, बावजूद इसके कि मदिर की मूर्ति मे मेरी ठीक वैसी ही गूढ श्रद्धा है, जैसी आम जनता की होती है और जिस श्रद्धा से लालायित होकर अत्यन्त वेदना, यत्रणा और अपमान सहन करके वे यहाँ आते रहे। लेकिन मैंने समझा कि मुझे वहाँ नही जाना चाहिए।

दूसरा प्रयत्न केरल में गुरुवायूर में किया था। वहाँ के लोगो ने इच्छा प्रकट की कि मैं अपना नित्य का रामायण-पाठ मदिर में जाकर करूँ। मंदिरवाले इससे बडे प्रसन्न थे। लेकिन जब वे बुलाने आये, तो मैंने कहा कि 'मेरे साथ कुछ ईसाई और मुसलमान भाई भी हैं। वे मेरे साथ रामायण-पाठ मे बैठते हैं। अगर आप उनके साथ मुझे आने देंगे, तो मैं आऊँगा।' उन्होंने कहा कि आपका उद्देश्य हम समझ सकते हैं, लेकिन हम लाचार हैं। मैंने अत्यन्त नम्रतापूर्वक उनसे कहा कि जमाना बदल रहा है, इसका थोडा-सा खयाल करें। मैं वहाँ नही जा रहा हूँ, इससे मुझे जितना दु ख होना सभव है, मेरी आत्मा कह रही है और इसीलिए मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूँ कि उससे ज्यादा दुःख गुरुवायूर के देवता को होगा कि बाबा मेरे पास आना चाहता था, लेकिन नम्रता और भक्ति से आनेवाले मेरे उस प्यारे बन्दे

को मेरे पास नहीं आने दिया । इस घटना पर केरल के कुल अखबारों में चर्चा हुई । कुछ अखबारों ने मेरा निषेध किया, पर बहुत-से अखबारों ने उनका निषेध किया, जिन्होंने मुझे वहाँ जाने की इजाजत नहीं दी थी । मुझे लग रहा है कि कालपुरुष एक माँग कर रहा है ।

एक भाई ने मुझसे कहा कि "गांधीजी की एक मर्यादा थी । जिन मन्दिरों में हरिजनों को नहीं जाने देते थे, वहाँ उन्हें जाने देना चाहिए, यही उनका आग्रह था, लेकिन आप इससे ज्यादा आग्रह क्यों रखते हैं ?" मैंने कहा, "इसमें मेरी अन्तरात्मा जो प्रेरित करती है, वही करता हूँ । अपने विचारों के लिए मैं अपने को ही परिपूर्ण जिम्मेवार मानता हूँ ।"

मन्दिर में अद्भुत दर्शन

यहाँ पंढरपुर में जब आना हुआ, तब चर्चा चली कि मैं अहिन्दुओं को लेकर मंदिर में घुसनेवाला हूँ । खास तौर से मुसलमानों का नाम लिया जाता था । लेकिन लोग जानते नहीं कि इस तरह घुसना मेरे लिए असम्भव है । आक्रमण करना न मेरे शील में है, न मेरे विचार में है और न मेरे गुरु ने मुझे ऐसा सिखाया है । मुझे कोई जबरदस्ती नहीं करनी है । पंढरपुर के विठोबा के लिए मेरे मन में जो भक्ति है, उसका साक्षी और कोई नहीं हो सकता है, उसका साक्षी साक्षात् भगवान ही हो सकता है ।

पुंडलीक के मन्दिर के चालक मेरे पास आये और उन्होंने कहा कि आप अपने सब साथियों के साथ मन्दिर में आ सकते हैं । उसके बाद रुक्मिणी माता के मन्दिर के ट्रस्टी आये । अन्त में विनोबा के मन्दिर के ट्रस्टी भी आये । मैंने उनसे लिखित आमंत्रण माँगा और विनोद में कहा कि 'रुक्मिणी ने भी स्वयं भगवान् को पत्र लिखा था ।' उसके बाद उन्होंने मुझे पत्र दिया और बड़े ही प्रेम से मुझे वहाँ बुलाया । उन्होंने मुझ पर जो उपकार किया है, उससे बढ़कर उपकार आज तक किसीने नहीं किया है ।

मेरी आँखों से घंटेभर अश्रुधारा बहती रही , क्योंकि मुझे वहाँ कोई पत्थर नहीं दिखा । जब मैं मन्दिर में जाने लगा, तब किनकी संगति में जा रहा था ? (इस समय विनोबाजी रुके, उनकी आँखों से आँसू बहने लगे ।) वे ये—

रामानुज, नम्मालवार, ज्ञानदेव, चैतन्य, कबीर और तुलसीदास। धन्य है वह मन्दिर। बचपन से जिनकी संगति में आज तक रहा, उन सबकी मुझे याद आ रही थी और जिनकी संगति में मैं पला, उन सबका स्मरण मुझे होता था। दर्शन के लिए मैंने जब उस मूर्ति के सामने अपना मस्तक झुकाया, तब मैंने अपनी माँ को वहाँ देखा, अपने पिता को वहाँ देखा और अपने गुरु को वहाँ देखा। मैंने किसको वहाँ नहीं देखा? जितने लोग मुझे पूज्य और प्रिय हैं, वे सब मुझे वहाँ दिखे।

मेरे साथ दो बहनें थीं फातमा और हेमा। एक मुसलमान, दूसरी ईसाई। पुजारियों ने दोनों से कहा कि आप भगवान् को स्पर्श करिये। यहाँ एक रिवाज है, भगवान को आलिंगन देते हैं। दूसरे मन्दिरों में ऐसा रिवाज नहीं है। वहाँ भगवान् को छूते नहीं हैं। "रखुमादेवी वरु। हात विण स्पर्शिले, चक्षूविण देखिले। ब्रह्म गे माये। —बिना आँख के भगवान् को देखा और बिना हाथ से भगवान् को स्पर्श किया।" तो फातमा से और हेमा से कहा गया कि तुम भगवान् को छुओ। दोनों ने भगवान् को स्पर्श किया। दोनों के स्पर्श से मेरा खयाल है कि भगवान् का शरीर रोमांचित हुआ होगा। एक लडकी मुसलमान है, जिसने एक जैन लडके के साथ शादी की है और वह शादी मेरे हाथों से ही हुई है। दूसरी जर्मन लडकी है, जो अपने देश को, माता-पिता को, भाई-बहन को छोडकर हिन्दुस्तान की सेवा मे आयी है। गांधीजी [illegible]ार पढ़कर, यहाँ जो छोटा-सा काम चल रहा है, उसे देखने के लिए वह आयी [illegible] सामसीह का नाम उसने नहीं छोडा है। उसे छोडने की जरूरत भी नहीं है। वहाँ प्रवेश मिला, तो मेरे दिल को अत्यन्त शाति मिली। कालपुरुष अपना काम रहा है, इसका दर्शन मुझे हुआ।

मौलाना आजाद

आज विश्व में शाति और प्रेम की शक्ति बढ़नी चाहिए। मन्दिर-प्रवेश की यह बहुत बडी घटना है। इसने शाति और प्रेम को बढ़ावा दिया है। कालपुरुष बहुत विचित्र है। उसके काम करने के ढग बडे विचित्र हैं। इस साल हमारे पूजनीय नेता मौलाना अबुल कलाम आजाद को वह यहाँ से ले गया। ऐसे पुरुषों के लिए शोक करना मना है। मेरा खयाल है कि वे ऐसे मनुष्यों मे से थे, जिन्हे अरबी भाषा में "नफ़सुल मुतमइन' यानी 'समाधान पाये हुए पुरुष' कहते है। वे

राजनीति में काम करते थे अवश्य, लेकिन उनके चित्त में जो चीज थी, वह अगर किसीको देखनी है, तो उसे कुरान शरीफ के भाष्य में उनकी प्रस्तावना पढ़नी चाहिए, अल्फातिहा पर उन्होंने जो लिखा है, वह बेजोड़ है। उसमें उनका हृदय खुल गया है। उससे मालूम होता है कि वे कितने उदार थे, सर्वधर्म-समभावी थे और सामान्य ससार से ऊपर रहने की कोशिश करते थे। ऐसे पुरुष को काल-पुरुष ले गया।

हमारे अन्य तीन साथी गये!

ऐसे ही दूसरे लोगों को भी वह ले गया। लेकिन उनमें से तीन पुरुषों का मुझसे व्यक्तिगत, पर बहुत ज्यादा संबंध आया है और उन तीनों ने भूदान ग्रामदान के लिए सेवा का क्या आदर्श होना चाहिए यह उपस्थित किया है। इसी साल तीनों चले गये। बाबा राघवदासजी, गोपबाबू और लक्ष्मीबाबू, तीनों घरबार सब छोड़कर निरन्तर यात्रा में थे,

माता पिता, बन्धु सखा छाँड़ि सब कोई।
अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेल बोई॥

वे ऐसे अत्यन्त निर्मल पुरुष थे—बिलकुल औलिया। उनके हृदय को द्वेष या वैर कभी छू नहीं गया। ये यात्रा करते हुए चले गये। बाबा राघवदासजी ने जब भूदान-यात्रा करने का तय किया, तो उन्हें १५० से अधिक संस्थाओं से इस्तीफा देना पड़ा था। उत्तर प्रदेश का बच्चा-बच्चा बाबाजी को जानता है। ४० साल तक निरन्तर घूमकर उन्होंने सेवा की है। आखिर में वे सब छोड़कर भूदान-यात्रा में लगे थे। उन्हें सिर्फ दो-चार दिन बुखार आया और वे चले गये। श्री गोपबाबू भी इसी तरह से काम के लिए कहीं गये हुए थे। वहाँ से शाम को वापस लौटे, भगवान् के पास मानो सोने के समय ही जाना था, उसी तैयारी में चन्द घण्टों में भगवान् के पास पहुँच गये।

उनके चन्द ही दिनों के बाद लक्ष्मीबाबू ठीक उसी तरह से चले गये। उस दिन वे १० मील की यात्रा कर चुके थे, दिन भर का काम पूरा कर चुके थे, शाम की प्रार्थना भी हो चुकी थी, फिर सोने के पहले पूर्वतैयारी में थे कि चन्द घण्टों में चले गये। ये लोग भी गांधीजी की तरह दिन भर का काम पूरा कर चुके थे। गांधीजी

रोजाना जितना कातते थे, उतना कात चुके थे और प्रार्थना के लिए निकले थे। उस दिन प्रार्थना के लिए उनके मन मे कितना भक्तिभाव भरा हुआ था, उसकी कल्पना हम कर सकते हैं, क्योंकि उस दिन किसीसे वातचीत करने मे उन्हे प्रार्थना के लिए १० मिनट देरी हुई थी। प्रार्थना में वे एक मिनट की भी देरी नहीं करते थे। इसलिए उस दिन उनके मन मे उतावली थी कि आज देरी हो रही है। यों परमेश्वर की भावना से भरे हुए और चित्त मे कुछ अपराध की भी भावना लिये हुए वे प्रार्थना के लिए पहुँचे और भगवान् ने उन्हे ऊपर से ही उठा लिया। इससे अधिक धन्य मृत्यु क्या हो सकती है।

दूसरों के पापों का भार-वहन

एक भाई ने मुझसे तत्त्वज्ञान का एक सवाल पूछा था कि "गीता में कहा है कि जो भक्त होते है, उनके मन मे किसीके लिए उद्वेग नहीं होता है। इतना ही नही, वल्कि दूसरों के मन में भी उसके लिए भय या उद्वेग नहीं होता है। गाधीजी अगर पूर्ण भक्त थे, तो उन पर इस तरह द्वेष का अस्त्र कैसे लागू हुआ?" मैंने जवाब दिया कि गाधीजी व्यक्ति नहीं थे और वे यदि व्यक्ति थे, तो इतने निर्भय और निर्मल थे

हमारा वडा भाग्य है कि हमने अपनी आँखों से उन्हे देखा और उनके चरणों में बैठकर कुछ काम किया। परन्तु वे व्यक्ति नहीं थे, सारे समाज के पापों का बोझ सिर पर ढोनेवाले पुरुष थे। ईसाई समाज ईसामसीह के बारे मे आज तक कहता है कि उसने दुनिया के पापों का प्रायश्चित्त किया। ईसा तो ईसा ही थे। आज वे हमारे लिए देवता-स्वरूप हैं। उनके साथ दूसरे किसी पुरुष की तुलना अपने मन मे भी नहीं करता हूँ, लेकिन इतना कहने में कोई दोष नहीं है कि जिस तरह दुनिया के पाप की जिम्मेदारी ईसामसीह महसूस करते थे, वैसे ही महात्मा गाधी सबके पापों की जिम्मेदारी महसूस करते थे। हमें लगता है कि उन्होंने हम सब लोगों के पाप अपने सिर पर ढोये, इसीलिए उनका जो अन्त हुआ, वह अन्त धन्य है। ये तीनों पुरुष भी गाधीजी की तरह दिन भर का काम पूरा करके भगवान् के पास गये। तीनों कहते थे कि इसी प्रकार की मृत्यु आनी चाहिए। इसलिए भगवान् ने उन्हे उठा लिया। इसमें उसकी असीम करुणा, असीम कृपा है। यही सोचकर मेरी कमर नहीं टूटी। मैंने सोचा कि इसमें भगवान् की

करुणा है कि वह भक्तों को ठीक उसी ढग मे अपने-आप बुला लेता है, जैसा कि वे चाहते है। यह सोचकर मैंने शक्ति महसूस की। आज सुबह रमादेवी मिलने आयी थीं। उनसे बात करते हुए मैंने यही विचार रखे थे और मुझे कहने मे खुशी होती है कि रमादेवी और उनके साथी, उडीसा के भाई-बहन इस मृत्यु के बाद काम करने के लिए और अधिक सन्नद्ध हो गये हैं। वे घर घर सर्वोदय-पात्र पहुँचायेंगे—ऐसा उन्होंने संकल्प किया है। उसे वे गोपबाबू का स्मारक समझते हैं। मै मानता हूँ कि उनका इससे बेहतर स्मारक हो नही सकता।

भंसाली भाई का तप

हर कोई विश्वशाति चाहता है। सारे विश्व को इस वक्त उसकी बहुत बडी तृष्णा है। लेकिन हममे से एक महापुरुष उसके लिए कोशिश कर रहा है। भसाली भाई के उपवास का आज साठवाँ दिन है। उन्होंने ६६ उपवास करने की बात सोची है। विश्वशान्ति के लिए और आणविक अस्त्रों के प्रयोग बन्द हो, ऐसी भगवत प्रार्थना के लिए वे उपवास कर रहे हैं। मैंने उन्हे पत्र लिखा कि "आप तप कर रहे हैं, लेकिन उसे आप तप नहीं मानते हैं, बल्कि भगवान् की प्रार्थना मानते है, यही आपके काम का बल है। उससे आपका यह तप बडा बलवान् हो जाता है और आशा है कि भगवान् इसमें आपको परिपूर्ण शान्ति देगा।" उनकी तरफ से अभी आये हुए एक भाई ने कहा कि "भसाली भाई कहते थे कि आज तक मैंने बहुत-से प्रसगों में बहुत उपवास किये हैं, लेकिन इन उपवासो मे जितनी शान्ति और आनन्द मुझे हासिल हुआ है, उतना इसके पहले कभी भी नहीं अनुभव हुआ था। मुझे मालूम ही नहीं हो रहा है कि मैं खाता नहीं हूँ। उपवास चल ही रहा है और ६६ दिन परमेश्वर की कृपा से निभ जायेंगे।"—यह बहुत बडी चीज है और इससे हम सबका बल बढना चाहिए।

कोई अगर यह पूछे कि इन उपवासों का क्या परिणाम होगा, क्या जिस आशा से उपवास किये जाते है, वह आशा साकार होगी, तो इसका मै जवाब देता हूँ। यह सवाल हमारे लिए शोभादायक नहीं है। कौनसी ऐसी चीज है, जो भगवान् की प्रार्थना मे सफल नहीं हुई है? मै भसाली भाई को जहाँ तक जानता हूँ, वे ऐसे चन्द पुरुषों मे से है, जिन्हे भगवान् ने भेजा है। वे बिल्कुल निर्मल, बालकवत् है।

इसलिए उनकी यह प्रार्थना किस तरह काम करेगी, हम नहीं समझ सकते हैं, परन्तु वह अवश्य काम करेगी, यह हम समझ सकते हैं। मैं आप सबकी तरफ से उनकी प्रार्थना मे शामिल हूँ और सर्वोदय-समाज की तरफ से सारी दुनिया के लिए मैं कहना चाहता हूँ कि हम कमजोर हैं, हममें कोई ताकत नहीं है, परन्तु भगवान् ने ये आणविक अस्त्र मनुष्य के नाश के लिए नहीं, वल्कि कल्याण के लिए ही भेजे हैं। इसलिए भसाली भाई जैसा मनुष्य विश्वशाति के लिए इतना तप करने के लिए तैयार है।

गांधीजी की कल्पना

इस साल प्यारेलालजी ने ऐसा काम किया है कि उसके लिए हमें उनका वहुत ऋणी होना चाहिए। गाधीजी के अन्तिम दर्शन ('लास्ट फेज') किताव उन्होंने दो खण्डों में प्रकाशित की है। वे दोनों खण्ड एक-से-एक वढकर है। दूसरा खड मैं अभी वारीकी से देख रहा हूँ। प्यारेलालजी ने जो चीज उपस्थित की, वह उनके सिवाय दूसरा कोई नहीं कर सकता था। मैं चाहता हूँ कि वह सारा लिखने में उनका जो अनुभव हुआ है, उसका कुछ साराश वे इस सम्मेलन मे सुनायें। गांधीजी के मन मे ट्रस्टीशिप का सिद्धात किस तरह का था, वे आगे क्या करना चाहते थे, इस वारे मे प्यारेलालजी जितना जानते हैं, उतना और कोई नहीं जानता है।

स्नेह-सम्मेलन

आज मेरा दिल भरा हुआ है। सुवह मेरे कुछ मित्र मुझसे मिलने आये थे। वे कह रहे थे कि सम्मेलन मे देश के सामने कई समस्याएँ हैं, उनके वारे में कुछ सोचना होगा। मैंने कहा कि मैंने अपने मन में यह सोचा है कि यह सम्मेलन स्नेह-सम्मेलन वने। अगर यह सचमुच मे स्नेह-सम्मेलन हो सके, तो हमारा काम वन गया। दुनिया मे वहुत-से सम्मेलन होते हैं, कुछ स्पर्धा-सम्मेलन, कुछ मत्सर-सम्मेलन, कुछ अविश्वास-सम्मेलन, कुछ सम्मेलन शान्ति के नाम से होते हैं, लेकिन अशान्ति के कारण वनते हैं। यों तरह-तरह के सम्मेलन होते हैं, लेकिन हमारा यह सम्मेलन सचमुच स्नेह-सम्मेलन सावित हो जाय, तो हम सब खुशी मे नाचेंगे। इस दुनिया में जिस चीज की कमी है, जिसकी वहुत जरूरत है, वह चीज है स्नेह।

प्रेम के दो प्रकार

स्नेह का मतलब आसक्ति नहीं है। स्नेह मेरी व्याख्या के अनुसार है–प्रतिरोधी प्रेम, अनुरोधी प्रेम नहीं। अनुरोधी प्रेम में सामनेवाला जब मुझ पर प्रेम करता है, तब मैं भी उस पर प्रेम करूँगा। यह जो प्रतिक्रिया-रूप प्रेम पैदा होता है, उसमें आत्मा की कोई शक्ति प्रकट नहीं होती है। उसमें प्रेम ही प्रेम को खींच लेता है। ऐसा प्रेम जानवरों में भी होता है। गाय और कुत्ता भी पहचान लेते हैं कि सामनेवाला प्रेम करता है और इसलिए वे प्रेम का जवाब प्रेम से देते हैं। यह तो प्रेम का स्वभाव ही है। पर प्रतिरोधी प्रेम में अगर कोई हमारा वैर करता है, हमसे द्वेष करता है, तो उस पर भी प्रेम करना होता है। यह जो प्रेम है, वह 'स्नेह' कहलाता है। जो घर्षण में डाला जाय और सारी दुनिया में ठंडक पैदा करे, ऐसा पराक्रमी प्रेम। द्वेष करनेवाले पर भी जिसका आक्रमण होता है, वह 'प्रतिरोधी प्रेम' कहलाता है। पूछा जा सकता है कि 'क्या सामान्य जीवों के लिए यह सम्भव है?' मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि यह पूर्णतः सम्भव है। यह इस जमाने के लिए अत्यंत आवश्यक है। कार्ल मार्क्स ने हमें एक बहुत बड़ी चीज सिखायी है कि दुनिया में कुछ गुण और क्रियाएँ ऐतिहासिक आवश्यकता से पैदा होती हैं।

प्रतिरोधी प्रेम : जमाने की माँग

प्रतिरोधी प्रेम इस जमाने की माँग है। इसके अलावा वह हमारे संतों की सिखावन है और भारत की हड्डी में वह चीज पड़ी है। इसलिए वह यहाँ क्यों नहीं पैदा होगी? द्वेष करनेवाले पर हम प्रेम क्यों न करें? वह हमारे हर दोष की पूरी छानबीन करके दुनिया के सामने रखता है। उससे अधिक उपकार न माँ कर सकती है, न बाप, न भाई। उससे हमें जो सीखने को मिलता है, उतना गुरु से भी नहीं मिलता है। वह हमें बहुत बड़ा शिक्षण देता है और अंतर्मुख बनने की बात सिखाता है। भगवान् इस तरह से एक अत्यंत उपकारकर्ता के रूप में प्रकट होंगे। फिर भी अगर हम उन्हें नहीं पहचानेंगे, तो किस रूप में पहचानेंगे? हम पर प्यार करनेवाले के रूप में वे प्रकट होंगे, तो हम उन्हें माँ, भाई या मित्र समझेंगे। लेकिन यदि वे अत्यंत उपकारकर्ता के रूप में प्रकट होकर हमारे दोषों का विश्लेषण करते

हैं, चाहे उनमे से कुछ गलत भी हों, तो भी वे हमे अंतर्मुख होने के लिए प्रेरित करते हैं। गीता मे "अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्" आदि जो भक्त के लक्षण आये हैं, उनमें से 'अद्वेष्टा' शब्द पर रामानुज ने जो भाष्य लिखा है, वह अप्रतिम है। उन्होंने कहा है, "ईश्वर प्रेरितानि भूतानि यद्दसति"—जब कोई हमारा द्वेष करता है, तो ईश्वरप्रेरित होकर करता है। भक्त किसीका द्वेष नही करता है, क्योंकि द्वेप करनेवाले में परमेश्वर की प्रेरणा का आविर्भाव होता है और उसका हम पर बहुत उपकार होता है। मुझे इसका बहुत अनुभव है।

टीका से प्रसन्नता

मुझ पर अगर किसीने ज्यादा-से-ज्यादा उपकार किया है, तो वह है, जिसने मेरी निंदा की, मेरे दोष प्रकट किये। इसलिए मेरा अपना नियम बन गया है कि कोई मेरी व्यक्तिगत निंदा करेगा, तो उसको मेरी ओर से कोई जवाब नहीं दिया जायगा, क्योंकि मुझे उसमे उपकार का अनुभव आता है। इन सात सालों मे मेरी स्तुति चली, पर इधर आने पर कुछ थोडी निंदा होने लगी, तो मुझे खुशी हुई। येल्वाल की परिषद् ने तो हमारे काम पर मुहर लगायी। बडे-बडे नेताओं ने, जिनकी मै इज्जत करता हूँ, जिनके लिए मेरे मन मे बहुत आदर है, इस काम की इज्जत की और स्तुति की। मुझे ईसामसीह का वाक्य याद आया, "तुझे धिक्कार है, जब सब तेरी प्रशंसा करते हैं।" इसलिए मुझे अच्छा लगने लगा कि कुछ टीका, कुछ निंदा चली है। अगर हमारा थोडा-सा दोष देखकर किसीने उसे हमारे सामने रखा, तो हमे मानना चाहिए कि उसने वैज्ञानिक का काम किया। वैज्ञानिक खुर्दबीन लेकर बताता है कि आपके पेट के अंदर जहरीले जन्तु पड़े हैं। वे बिल्कुल छोटे-छोटे होते हैं, लेकिन खुर्दबीन से बडे बनाकर वह हमे दिखाता है। इस खुर्दबीन का हम पर बडा उपकार है। उसी तरह कोई हमारे छोटे से दोषों को बडा करके दिखाता है, तो उसका हम पर बहुत उपकार होता है। इसलिए जब यहाँ पर मुझ पर थोडी-सी टीका होने लगी, तो यहाँ मुझे इतनी खुशी हुई, जितनी इन सात सालों मे कभी नहीं हुई।

भारत की शक्ति आत्मशक्ति

आत्मशक्ति अपने देश की चीज है, यह शुद्ध स्वदेशी चीज है। इस देश में

भगवान् ने वेद, उपनिषद्, गीता आदि ग्रंथ पैदा किये, इस देश मे रामकृष्ण परमहंस ने सब धर्मों के समन्वय की साधना की, इस देश मे श्री अरविंद ने 'अतिमनस' की भूमिका का विचार दिया और इस देश मे गाधीजी हुए, जिन्होंने हमारे उद्धार के लिए अपना बलिदान किया। यही इस देश की शक्ति है। अगर हम इस शक्ति को नहीं पहचानेंगे, तो हमारे पास दूसरी कौनसी शक्ति है? आज हम ३०० करोड रुपया हर साल सेना पर खर्च करते हैं, उसीमे हमारे प्राण कंठ मे आये है। इस गरीब देश के लिए यही बडा भारी खर्च मालूम हो रहा है, लेकिन उतना रोजाना खर्च करनेवाला देश पडा हुआ है। अमेरिका और रूस में सेना पर जो खर्च किया जाता है, उसके आकडे ज्योतिषशास्त्र के ऑकडो की तरह है। उनके सामने हम क्या है? हम ३०० करोड खर्च करके रूस और अमेरिका के खिलाफ लड सकेंगे, ऐसी आशा किसीने नहीं की है। यह तो आपसी डर के कारण खर्च हो रहा है। पाकिस्तान हिन्दुस्तान से डरता है, हिन्दुस्तान पाकिस्तान से। हम ३०० करोड का डर खरीद रहे है, तो पाकिस्तान १०० करोड का डर खरीद रहा है। इसमे हम अपने आपको कुठित कर रहे है। हमारे देश मे एक बडा भारी 'सोर्स' (साधन) है, जिसे 'टैप' (उपयोग) करना होगा।

देश में एक शक्ति है, उसे बढाना होगा, अन्यथा भारत के पास दूसरी कौनसी शक्ति है? यहाँ पर जिन्होंने अहिंसा के दर्शन किये, वे 'महावीर' कहलाये। हम यह समझे हुए है कि वीर पुरुष वे होते हैं, जो निर्भय होते हैं, लेकिन महावीर वे होते हैं, जो न सिर्फ निर्भय होते हैं, बल्कि सामनेवाले को भी निर्भय बनाते है। ऐसे स्वयम् निर्भय होकर दूसरों को निर्भय बनानेवाले 'महावीर' इस देश मे पैदा हुए। कितने ही लोग कहते है कि गुजरात के लोग 'शामल' (ढीले-ढाले) होते है, लेकिन 'श्यामल' तो भगवान् का रंग है। लोग कहते हैं कि गुजराती बस व्यापार-व्यवहार ही जानते हैं। लेकिन जरा सोचिये तो कि आपके पास जो दौलत है, वह कौनसी है। उसका भान हमें अभी तक नहीं हुआ है। गुजरात मे कुल किसान मासाहारी नही है। कुल दुनिया में हिन्दुस्तान ही ऐसा देश है, जहाँ जमातों की जमातों ने मास-परित्याग किया है और हिन्दुस्तान में गुजरात ही ऐसा प्रात है, जहाँ पर किसान ने मासाहार-परित्याग किया है। उसमें ज्ञान की कितनी ताकत है, उसे हम नहीं पहचानते हैं।

यह ऐसी चीज नहीं है, जो जबर्दस्ती लादी जा सकती है। यह इस देश की विशेषता है।

आखिर गाधी आया कहाँ से ? मक्खन दूध से ही निकलता है। जिस समाज मे अहिंसा की तपस्या हुई, वही से गाधी आया। ऐसी तपस्या इस देश मे जगह-जगह हुई है। यहाँ सर्वोदय-समाज मे बैठकर हम कुछ ताकत महसूस न करें, तो और कहाँ करेंगे ? अमेरिका के पास हमसे बारह गुना अधिक जमीन है और वह भी अच्छी जमीन। हमारे पास मुश्किल से भी प्रति आदमी पौन एकड जमीन है। अगर हिन्दुस्तान को अमेरिका जितना सम्पन्न और बारह गुना अधिक क्षेत्र मिल जाय, तो शायद हिन्दुस्तान स्थूल दृष्टि से अमेरिका की बराबरी कर सकेगा। इसलिए हमें समझना चाहिए कि हिंसा-शक्ति से हम किसी देश की बराबरी नही करते हैं। परमेश्वर की भारत पर यह बडी कृपा है कि उसने हमारे लिए कोई विकल्प नही रखा है, सिवा इसके कि या तो अहिंसा की शक्ति बढाओ या हिसा के पीछे पडकर नाममात्र की स्वतंत्रता रखो और छाती मे धडकन बनाये रखो। इसके अलावा और कोई चीज यहाँ नहीं बन सकती है।

इस हालत मे हमे यहाँ बैठकर सोचना होगा कि हम करने क्या जा रहे हैं। हमने कहा था कि हम पक्षमुक्त समाज बनानेवाले हैं। लेकिन हममें से बहुत-से आज भी पक्षों मे पडे हैं, तो क्या हम सब पक्षों से सामान वैरभाव रखनेवाले हैं या हम सब पक्षों से ऊँचे हैं, ऐसा अहकार रखनेवाले हैं ? सब पक्षों से मुक्त हम इसलिए होना चाहते हैं, क्योंकि हम नम्रता से सबकी सेवा करना चाहते हैं। सेवा करनेवाले दूसरे भी होते हैं। सेवा का एक जरिया सत्ता है। अगर हम उस जरिये को निषिद्ध मानते हैं, तो फिर हमने स्वराज्य लिया ही क्यों ? इसलिए यह भी चलना चाहिए और ठीक से चलना चाहिए। ठीक से न चले, तो उस पर टीका भी होनी चाहिए। सत्ता के जरिये कुछ सेवा जरूर होती है, लेकिन सत्ता के जरिये कुछ सेवा नही होती है। कुछ ऐसी बुनियादी सेवा होती है, जो सत्ता के जरिये नही की जा सकती है। ऐसी जो बची सेवा 'रेसीड्युरी सर्विस' (शेष सेवा) है, जो सरकारी यंत्र से नहीं हो सकती है, वह हमें करनी चाहिए। इसलिए अपना यह समाज सबकी सेवा करनेवाला होगा।

यह अपने देश की शक्ति, जिसे हम जन-शक्ति या लोक-शक्ति कहते है, जिस शक्ति को पंढरपुर में परिपुष्ट किया है, उसे हम विकसित करें और उसे विकसित कैसे कर सकते है, इसके कार्यक्रम के बारे में सोचें। हमें सोचना होगा कि हम किस तरह से अपने देश मे पड़ी हुई सुप्त शक्ति को प्रकट कर सकते है और कोई 'गतिशील कार्यक्रम' ले सकते हैं। मुझ अकेले को यह नहीं सूझेगा, सबको इस पर सोचना होगा। आज शस्त्रशक्ति जिस तरह विकसित हुई, उसके पीछे दस हजार साल की तपस्या है। उस पर कितनी ताकत लगी है, कितने प्रयोग हुए हैं, कितना पैसा खर्च हुआ है? उसी तरह हमें अहिंसा के प्रयोग करने होंगे, ताकत लगानी होगी, तब हिन्दुस्तान की शक्ति विकसित होगी और तब उसमे से कुछ बन पायगा।

अहिंसा-शक्ति का विकास हो

आज शस्त्र-शक्ति विकसित होते-होते इस हद तक पहुँची है कि उससे कुछ बनता नहीं। इसलिए अहिंसा की शक्ति को विकसित करने के प्रयोगों पर समय देना होगा और त्याग करना होगा। इसमें नम्रता सबसे ज्यादा आवश्यक है। भगवान् ने गीता में ज्ञान के लक्षणों में प्रथम लक्षण कहा है "अमानित्वम्।" नम्रता के बिना हृदय खुला नहीं रहता है। इसलिए हमें नम्रता से ज्ञान पाना चाहिए। बाकी अपने कुल काम हम सरकार पर सौंप सकते हैं। वे काम सरकार से होने चाहिए और ठीक ढंग से होने चाहिए। हम भी वे काम करें, लेकिन हमारा मुख्य काम सत्याग्रह-शक्ति को विकसित करना है, जो हमें बापू ने सिखाया था। 'सत्याग्रह' शब्द के उच्चारण मे आनन्द होना चाहिए, लेकिन आज उस शब्द के उच्चारण से भय पैदा होता है। यहाँ तक हमने अपने आचरण से उसे नीचे गिरा दिया है। अब हमें उस शक्ति को विकसित करना है। इसीलिए मैंने इस वक्त प्यारेलालजी को सम्मेलन मे आने का निमंत्रण दिया। मैं ढेबरभाई से भी कहता हूँ कि आप इसमें मदद देने आइये। कुछ हमें सूझता है, कुछ ढेबरभाई को सूझेगा, कुछ और किसीको सूझेगा। यहाँ पर जो साहित्यिक बैठे हैं, उनसे भी मदद मागूँगा। हम तो सबके सामने सिर झुका कर बोल रहे है। जहाँ हमने भगवान् के सामने सिर झुकाया, वहाँ सबके सामने नम्र होकर प्रार्थना कर रहे हैं। जो काम भगवान् भारत से चाहता है, उसके लिए हमें अत्यंत नम्र बनना पड़ेगा।

गांधी प्रथम शांति-सैनिक

शाति-सेना के बारे में मै सोचता था। मैं एक महाभ्रम में था कि बापू की आखिरी इच्छा थी शाति-सेना की स्थापना, जो पूरी नही हो सकी थी, शाति-सेना नहीं बन सकती थी, लेकिन एक दिन मेरा भ्रम दूर हो गया। १० साल तक जो बात मेरे दिमाग में नहीं बैठी थी, वह एक दिन में बैठ गयी। इस साल गाधीजी के स्मृति दिवस पर मैंने कहा कि शाति-सेना बन चुकी। उसका प्रथम सेनापति बन चुका, उसका प्रथम सैनिक बन चुका। वह अपना काम करके चला गया। अब हमे उसके पीछे जाना है। गाधीजी शान्तिसेना के प्रथम सेनापति थे और प्रथम सैनिक भी थे। सेनापति के नाते उन्होंने आदेश दिये और सैनिक के नाते उसका पालन करके वे चले गये। इसलिए इस भ्रम मे नही रहना चाहिए कि शाति-सेना नहीं बन सकी। हमें समझना चाहिए कि शाति-सेना की स्थापना हो चुकी, एक बड़ा शाति-सैनिक बन चुका। अपना काम कर चुका और हमारा मार्गदर्शन कर चुका। यह सब देखने को प्यारेलालजी की किताब देख सकते हैं।

मैं जानता हूँ कि मेरे भाषण से आपको कुछ मार्गदर्शन नही मिला होगा। एक ही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे मार्ग ढूँढना है, मै उसकी तलाश मे हूँ। शान्ति-सेना के काम मे मुझे आप-सबकी मदद चाहिए।

दूसरा दिन

शनिवार, ३१ मई १९५८ : तीसरे पहर २॥ बजे

(खुला अधिवेशन)

ता० ३१ मई को सवेरे ८ बजे से सम्मेलन-मंडप के अलग-अलग भागों में पूर्व योजना के अनुसार भिन्न-भिन्न विषयों पर संवादात्मक चर्चा-मंडलों के अधिवेशन हुए। इन चर्चा-मंडलों का ब्यौरा ता० १ जून को सवेरे सम्मेलन के अधिवेशन में सुनाया गया। वह यथाक्रम दिया जायगा।

सम्मेलन का खुला अधिवेशन शनिवार ता० ३१ मई को दोपहर के ढाई बजे शुरू हुआ। ढाई से तीन तक सूत्रयज्ञ और तीन से भाषण शुरू हुए। आज के कार्यक्रम का मुख्य अंग विशिष्ट कार्यकर्ताओं के भाषणों का था। पहला भाषण उत्तर प्रदेश के श्री अक्षयकुमार करण का ग्राम-निर्माण-कार्य के विषय में हुआ।

करण भाई (उत्तर प्रदेश)

ग्राम-निर्माण के सम्बन्ध में सबसे पहली जरूरत यह है कि खेती के साथ ग्रामोद्योगों को जोड़ा जाय। कृषि को केन्द्र में रखकर उसके आसपास ग्रामोद्योगों का आयोजन करना ग्रामनिर्माण की कार्य-पद्धति में हमारी मुख्य नीति होगी। अण्णा-साहब ने कोरापुट (उड़ीसा) में मार्गदर्शन किया है। लेकिन कोरापुट का क्षेत्र आदि-वासियों का है। इसलिए वहाँ का उदाहरण सब जगह के लिए उपयुक्त माना नहीं जाता। दूसरे प्रकार का क्षेत्र तमिलनाड का तिरुमंगलम् तालुका है। तिरुमंगलम् में काफी ग्रामदान मिले हैं। उन गाँवों में पढ़े-लिखे और अपढ़ सभी प्रकार के लोग रहते हैं। वहाँ का काम दूसरे ढंग से हो रहा है। गाँववालों ने अपनी कोशिश से मिलकर ग्राम-समितियाँ बनायी हैं। अपनी जिम्मेवारी पर सारा काम करते हैं।

मुख्य सवाल यह है कि गाँव का आर्थिक ढाँचा कैसा हो। ग्राम-निर्माण में जो दूसरी दिक्कतें पैदा होती हैं, उनका विचार भी इसी दृष्टि से करना होगा। मसलन् कर्ज का सवाल है। महाजन पैसा देना बंद कर देता है। लेकिन थोड़ी हिम्मत और सहानुभूति के साथ यदि हम महाजनों से सम्पर्क बढ़ायें, तो उनमें इतनी समझदारी है कि वे हमसे सहयोग कर सकेंगे। सरकार आर्थिक मदद कर भी दे,

तो भी गाँव को अपने आर्थिक स्रोतों से लाभ उठाना ही पडेगा। सरकार की मदद से सारी समस्यायें हल नहीं हो सकतीं। आर्थिक उन्नति के गाँव के अपने स्वतंत्र जरिये खड़े नहीं हो सकते। महाजनों से और सरकार से सहायता अवश्य ली जाय। कोशिश करने पर एक गाँव मे कुछ महाजनों ने अपना कर्जा छोड भी दिया। परंतु इतने से गाँववालो मे स्वालंबन की प्रेरणा पैदा नहीं होगी। उसके लिए यह जरूरी है कि गाँव अपने नये-नये साधन खडे करे।

सोलह वर्ष से ऊपर की उम्रवाले सब व्यक्ति गाँव सभा के सदस्य रहें। गाँव के सारे कामों की जिम्मेवारी वे अपने ऊपर लें। अलग-अलग कामों के लिए तात्कालिक समितियाँ बनाकर काम करें। काम समाप्त होने पर ये समितियाँ भी अपने-आप समाप्त हो जायँ। गाँव के कोई अलग-अलग कमरे नहीं होंगे। सारा गाँव एक मकान के समान होगा। इस तरह व्यवस्था का बहुत-सा काम बट जायगा। पचायत और सहकारी-समितियाँ एक ही हों या अलग-अलग हों ? अगर अलग-अलग हों, तो उनके सम्बन्ध क्या हों ? इन प्रश्नो का निर्णय प्रयोग और अनुभव के आधार पर करना होगा। निर्णय का मुख्य आधार बहुमत नहीं, बल्कि सर्वसम्मति होगी। तभी ग्रामस्वराज्य चरितार्थ होगा।

सवाल यह होता है कि यदि हमें कम्युनिटी डेवलपमेंट के साथ सहयोग करना है, तो जब तक दोनों के उद्देश्यों मे अन्तर है, तब तक वह सहयोग कैसे हो । ? हकीकत यह है कि गढ़वाल-सम्मेलन के बाद कम्युनिटी डेवलपमेंट के उद्देश्यों में जो परिवर्तन हुआ है, उसका रुख हमारी तरफ को है। उनकी तरफ से हमारे साथ उनका सहयोग बढ़ रहा है। उनके इस रुख में उन्हे हमारी मदद मिल सकती है। एक हद तक हमारा और उनका उद्देश्य मिलता-जुल्ता है। इस-लिए ग्रामदान का फायदा कम्युनिटी डेवलपमेंट को भी मिल सकता है।

जमीन की पैदावार और कृषिसुधार के लिए हमे कृपिविज्ञान के विशेषज्ञ चाहिए। पशुओं की भी समस्या है। गाँवों की माँग है कि हमे ऐसे जानवर चाहिए, जो गाँवों को सम्पन्न बनाने में मदद दें। साराश यह कि ग्राम-स्वराज्य की कल्पना को साकार बनाने में ग्रामदान नींव डालने का काम करेगा। उस पर गाँव के पोषण, शिक्षण और रक्षण की योजना का निर्माण गाँव आत्मविश्वासपूर्वक अपनी

शक्ति से करेगा। ग्राम-स्वराज्य का यह कार्यक्रम नवयुवकों की प्रेरणा और पुरुषार्थ के लिए चुनौती है। मैं उन सबका आवाहन करता हूँ कि वे इस काम में आयें।

मीरा व्यास (गुजरात) :

रामनवमी के दिन पूज्य बाबा ने मुझे गुजरात भेजा। उस समय उन्होंने कहा, "क्रान्ति के अनेक पहलू होते हैं। भूदान-क्रान्ति के भी अनेक पहलू हैं। लेकिन स्त्री-शक्ति को जगाने में पूरी कोशिश करना इस क्रान्ति का एक मुख्य पहलू है।" स्त्री-शक्ति को जगाने से पहले मुझे अपनी शक्ति जगाना आवश्यक था। मैं गुजरात गयी। वहाँ की परिस्थिति देखी। सभी जिलों में २-३ कार्यकर्ता थे। पंचमहाल एक ऐसा जिला था, जहाँ बहुत कम काम हो रहा था। मैंने कोई प्रत्यक्ष काम नहीं किया था। फिर भी यह तो मैंने समझ ही लिया था कि स्त्री-शक्ति जगाने से मतलब अपनी शक्ति जगाना है। इसलिए मैं जो कमजोरी महसूस कर रही थी, उसको दूर करने की कोशिश मैंने की। उषा बहन की मदद से मैं काफी काम कर सकी। पंचमहाल जिले के सभी बड़े शहरों में पदयात्राएँ की। उस जिले के देहातों में हम जमीन के बँटवारे के द्वारा पहुंचे। २५ दिनों में दो तालुकों में कोई सात सौ एकड़ जमीन बाँटी। सभी गाँवों में घूमी। सारे प्रदेश का खयाल आया। कहाँ कितना गहरा पानी है मालूम हुआ। ११ तालुकों में से ७ तालुकों में हमने पदयात्रा की। हमको बहुत सहयोग मिला। उसके बाद पंचमहाल में एक सम्मेलन किया, जिसमें सभी पार्टियों के नेता शामिल हुए। उन नेताओं ने कहा, ग्रामदान का काम हमारा ही काम है। पंचमहाल पूज्य ठक्कर बाप्पा की कर्मभूमि है। ४० प्रतिशत आदिवासी वहाँ रहते हैं। बहुत गरीबी है। जितनी गरीबी उतना ही अज्ञान है। वे लोग कुछ भी नहीं जानते। यहाँ तक कि विनोबा स्त्री है या पुरुष यह भी न जाननेवाले पुरुष वहाँ हैं। उनके अज्ञान के कारण एक गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिए साथी भी नहीं मिलते थे। पूज्य रविशंकर महाराज तक वहाँ नहीं पहुँचे थे। बच्चों को भी वहाँ एक ही दफा खाना मिलता है। हद दर्जे की गरीबी है। फिर भी वे हमारा स्वागत करने में नहीं चूकते। दिल उनका अच्छा है। आदिवासी एक-दूसरे के आसपास नहीं रहते। दूर-दूर बिखरी हुई बस्तियाँ हैं। फिर भी रात की सभाओं में काफी बहनें आती

थीं। उन देहातो मे वड़े-वडे जमींदार नहीं हैं। भूमिहीन भी ज्यादा नहीं हैं। इसलिए वहाँ ग्रामदान के लिए ज्यादा मौका है। वहाँ के लागो का विश्वास जिन्होंने सपादन किया है ऐसा कार्यकर्ता यदि वहाँ पहुँच जायँ, तो काफी ग्रामदान हो सकते हैं। लोग पढ़े-लिखे तो हैं नहीं, तो भी वारह-तेरह सौ रुपयों का साहित्य देहातों में विका। मैंने ये सव अनुभव वहनों का उत्साह वढ़ाने के लिए सुनाये हैं। वावा वहनों से अधिक अपेक्षा रखते हैं। न जाने कितनी जिन्दगियों के वाद हम वह ताकत प्राप्त कर सकेंगे। विना खोजे हम ताकत नहीं पा सकती हैं। वहनों से नम्र विनती है कि वे इस काम मे आ जायँ। इस काम में वे ताकत पायेंगी। हम धरती को मुक्त करें, तो हमारी मुक्ति भी निकट आयेगी। धरती माता मुक्त होगा, तो मातृराज्य की स्थापना भी सुलभ होगी।

सत्यम् (दिल्ली) :

दिल्ली, गुडगाँव, अलवर आदि इलाकों मे मेवों मे जो काम हुआ है, उसका कुछ हाल सुनाने की आज्ञा मुझे दी गयी है। ये मेवा लोग मुसलमान हैं। उनका रोजगार खेती है। १९-१२-१९४७ को वापू मेवों के वीच गये थे। मेवा लोगों में एक तरह की घवड़ाहट और परेशानी थी। वे अपनी जमीनें छोडकर पाकिस्तान को नहीं जाना चाहते थे। वापू ने उन्हे आश्वासन दिया कि जो लोग पाकिस्तान नहीं जाना चाहते, उन्हे यहाँ रहने का हक है। लेकिन वापू की मृत्यु के वाद मेवों को फिर सताया जाने लगा। नौवत यहाँ तक आयी कि मेवा लोग दिन को हिन्दू वन जाते थे और रात को मुसलमान हो जाते थे। दरवाजा वन्द करके चुपके से नमाज पढ़ते थे। ऐसी हालत मे वावा मेवात मे घूमने लगे। वातावरण वनाने लगे। डिप्टी कमिश्नर से मिलकर सारी वातें समझानी पड़ीं। उसके वाद मेवों को वसाने का काम सरकार ने उठाया। वीवी अम्तुस्सलाम ने भी अपनी ताकत इस काम मे लगायी। आठ साल लग गये। मेवों का लुटा हुआ माल उन्हें लौटाया गया। यह सव देखकर कुछ लोग कहने लगे, आखिर ये मेवा लोग तो मुसलमान ही हैं, इनको वसाकर दिल्ली के पास यह वारूदखाना तैयार किया जा रहा है। मगर अव इस तरह सन्देह नहीं रहा है। वावा ने कुछ वातावरण ही इस तरह का पैदा किया। मेवात का वच्चा-वच्चा वावा को पहचानता है। वह इलाका विनोवा का तकिया या विनोवा का मठ कहलाता है।

इधर बाबा की आज्ञा से मैं दिल्ली में भूदान, संपत्तिदान आदि का काम करने लगा हूँ। दिल्ली में मुहल्ले-मुहल्ले में श्री रामभाई के नेतृत्व में इसी अप्रैल महीने में १४ दिन तक प्रेमयात्रा चलती रही। लोगों में काफी उत्साह जाग्रत हुआ हर रोज अलग-अलग तबके के लोगों के लिए अलग-अलग विषयों पर विचार-गोष्ठियाँ भी हुईं। सभी पक्षों के लोगों ने सहयोग दिया। परिस्थिति अनुकूल है। लोगों में उत्सुकता है। हमारी जितनी योग्यता होगी, उतना काम होगा।

[इनके बाद केरल के वयोवृद्ध तपस्वी कार्यकर्ता श्री केळप्पन का भाषण मल्याळम् में हुआ और राजम्मा ने उसका वाक्यशः हिन्दी में भाषान्तर किया।]

केलप्पन (केरल) :

बाबा का आग्रह है कि मैं मल्याळम् में ही बोलूँ। वे एक क्रान्तदर्शी व्यक्ति हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि मल्याळम्, तमिळ, तेलुगु, कन्नड आदि भाषाओं में सर्वोदय-सम्मेलन में व्याख्यान होने चाहिए। इसका कारण स्पष्ट ही है। एक-दूसरे के लिए सद्भाव इसमें से पैदा होता है। फिर भी मुझे संकोच इसलिए है कि आप सब लोग दूर-दूर से बाबा के और दूसरे बड़े-बड़े लोगों के व्याख्यान सुनने आये हैं। आप जिस भाषा को समझ सकते हैं उसीमें व्याख्यान हों, तो आपको अधिक आनन्द आयेगा और समय बचेगा। परन्तु दक्षिण की भाषा में व्याख्यान होना बाबा ने यहाँ के कार्यक्रम के लिए आवश्यक समझा।

पंढरपुर एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। यहाँ की भूमि पर अनेक सन्तों के आध्यात्मिक संस्कार हुए हैं। सभी सन्तों का आध्यात्मिक ध्येय रहा है। मनुष्य की एकता में विश्वास सारी आध्यात्मिकता का मूल सिद्धान्त है। इसलिए सारी भाषाओं से बड़ी हृदय और स्नेह की भाषा है। सर्वोदय-समाज में हम सबकी यही भाषा होनी चाहिए। इसीमें भाषा-समस्या का समाधान है। हम सब एक ही कुटुम्ब के हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भाषा स्नेह की भाषा में ही व्यक्त होती है। इसलिए हम सबकी वाणियाँ अलग-अलग होते हुए भी हमारी भाषा में अद्वैतभाव है। हम अपने आदर्श के कारण एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट हैं। आज की समाज-रचना ने इस अद्वैत को छोड़कर द्वैत को अपनाया है, यही दुःख की जड़ है। जो तत्त्वतः एक हैं उन्हें दो मानने से भी कठिनाइयाँ पैदा होती हैं।

ग्रामदान का कार्यक्रम वास्तव मे इसी स्नेह-भावना को बढाने का कार्यक्रम है। ग्राम-स्वराज्य की नींव स्नेह है। सारा गाँव अगर एक कुटुम्ब हो जाता है, तो भेद मिट जाते हैं। ग्राम-स्वराज्य में आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक भेदों के लिए जगह नहीं है। गाँव की पचायत जो काम करती है, उसमे सबका सहयोग होगा। सहकारी सघ भी आपस के सहयोग से ही बनेंगे। इसका यह अर्थ नहीं कि सारे देश के राज्य से गाँव का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। डाक, तार, यातायात जैसी बातो में देश के केन्द्रीय शासन से भी सम्बन्ध रहेगा। परन्तु गाँव की रचना का आधार गाँववालों का पुरुषार्थ और बन्धुत्व होगा। इस तरह का गाँव आदर्श दुनिया का छोटा-सा नमूना होगा। वह छोटा होगा, लेकिन सकीर्ण नही होगा। क्योंकि उसकी रचना सर्वोदय-भावना पर होगी। ग्राम-स्वराज्य छोटे क्षेत्र मे विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रयोग है। इसलिए हमारी भावना राष्ट्रव्यापी तो होगी ही। सारे भारत के लिए गाँव के लोगो मे असीम प्रेम होगा। लेकिन वह प्रेम भारत तक सीमित नहीं रहेगा। इसलिए जब सर्वोदय-सम्मेलन होंगे, तो वहाँ केवल भारतीय भाषाओं मे ही व्याख्यान नहीं होंगे, बल्कि दुनिया की अन्य भाषाओं मे भी व्याख्यान हो सकेंगे। इतना व्यापक दर्शन ग्रामदान और ग्राम-स्वराज्य की कल्पना मे हैं।

केरल में लोकसख्या बहुत घनी है। ऐसा मालूम होता था कि वहाँ ग्रामदान नहीं मिलेंगे। लेकिन जब बाबा आतप और वर्षा में केरल की घनी आबादी मे मने लगे, तो लोगों का मन परिवर्तन हुआ। श्रीकृष्ण के आने से जिस प्रकार गोप-गोपी प्रेमनिर्भर होते थे, वैसा ही कुछ हुआ है। ५०० से ज्यादा ग्रामदान अब तक मिले हैं। बाबा की यात्रा के बाद लोग ग्रामदान के लिए तैयार हो जाते हैं। एक ही ताल्लुके में २०० से ज्यादा गाँव मिलने की आशा हुई। ग्रामदानी गाँवों की भूमि का पुनर्वितरण गाँववालो की सर्वसम्मति से हो, यह नियम रखा गया है। फिर भी पुनर्वितरण के लिए किसी कार्यकर्ता को उपस्थित रहना पड़ता है। एक समय आयेगा, जब ग्रामदानी गाँवो के लोग स्वय पुनर्वितरण कर लेंगे। तब तक हमे सगठन और शिक्षण का काम करना होगा। मजदूर भी श्रमदान में योग देते हैं। पारिवारिकता की भावना बढ़ रही है। जिन लोगों के लडकियो की शादी नहीं होती उनकी मदद दूसरे लोग करते हैं। लोग जब इस बात को समझ जाते हैं, तो धीरे-धीरे उसे करने लगते हैं। पारिवारिकता में

आकर्षण है। इसलिए हमारा प्रधान-कार्य ग्रामदान का विचार उन्हें अच्छी तरह समझाना है। हमारे अपने मन में अगर परिपूर्ण विश्वास हो, तो दूसरे लोगों के मन में हम विश्वास पैदा कर सकते हैं। केवल एक ताल्लुके मे ही नही, एक पूरे जिले में हम ग्रामदान का वातावरण बनाने की कोशिश कर रहे हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि अगले सम्मेलन में हम आपसे कह सकें कि हमारी आशाएँ पूरी हो गयी हैं।

राधाकृष्ण बजाज (वाराणसी) :

थोडे में सर्व-सेवा-संघ के प्रकाशनों की जानकारी मैं आपको देना चाहता हूँ। प्रकाशन का काम भूमिदान के बाद शुरू हुआ। प्रारम्भ मे श्री शकररावजी देव की भूमिदान पर एक छोटी-सी पुस्तक निकली। उसके बाद एक के बाद एक पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएं भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओ मे निकलने लगी हैं। 'गीता-प्रवचन' का अनुवाद १६ भाषाओं में निकला है। उसकी कोई ७,७५००० प्रतियाँ छपी हैं और करीब ६,५०,००० खपी हैं। साहित्यिकों से सम्पर्क करने के प्रयत्न हमने किये। मगर उनका सहयोग प्राप्त करने मे कम सफलता मिली है। एक मन्शा यह भी है कि सारी भाषाओं का सन्तसाहित्य भाषान्तरित होकर छपे। [भिन्न-भिन्न भाषाओं मे जो किताबें छपीं और जो पत्र-पत्रिकाएँ छप रही हैं, उनका ब्यौरा भी दिया गया।]

बाद में विनोबाजी का प्रवचन हुआ।

श्री विनोबा :

महिलाएँ शांति-सेना का काम सँभालें

भूदान-यज्ञ-आरोहण-कार्य मे स्त्रियो ने जो हिस्सा लिया है, वह मुझे तो अद्भुत ही मालूम होता है। अपना सब कुछ छोड़कर, अध्ययन, नौकरी, घरबार आदि सब छोडकर बहनें इस काम मे लगी हैं। वे थोडी हैं, परन्तु उन्होंने बहुत काम किया है। उडीसा, केरल, तमिलनाड, गुजरात और दूसरे प्रान्तों मे भी बहनों ने अच्छा काम किया है। इस वक्त हिन्दुस्तान मे जिस ढग से सार्वजनिक चिंतन चलता है, वह ढग बदले बिना हिन्दुस्तान को अपने स्वरूप का दर्शन नहीं होगा। राजनीति को जीवन मे एक स्थान जरूर है और अच्छा स्थान है। लेकिन फिर भी जिस तरह आज राजनीति को सर्वस्व समझकर हिन्दुस्तान के अखबार और शिक्षित

लोग सोचा करते हैं, उससे हिन्दुस्तान का उत्थान नहीं होगा, बल्कि इन दिनों लोकशाही का अर्थ ही अन्योन्य मत्सर हुआ है। इसलिए यद्यपि राजनीति का अपना महत्त्व है, तो भी उससे भी अधिक महत्त्ववाली बातें हैं, जिनका अनुभव इस देश को होना चाहिए।

समाचार-पत्रों से विरक्ति

इन दिनों मैंने अखबार पढ़ना छोड दिया है। उनका पूरा बहिष्कार तो नहीं किया है, दैनिक पढ़ना छोड दिया है। अभी साप्ताहिक पढ़ता हूँ, लेकिन थोडे दिनों में छूट जायगा। रामकृष्ण परमहंस अखबार को छूते नही थे। वे कहते थे कि उससे मानो बिच्छू काटता है। उसमें ससार की कुल बुराई भरी हुई रहती है। मैं भी विचारों में रामकृष्ण का एक शिष्य हूँ और उनके विचारो के पीछे चलने की कोशिश बचपन से ही करता आया हूँ। उसके लिए ही मैंने बगाली सीखी है, यद्यपि उनका साहित्य मैंने दूसरी भाषाओं में भी पढ़ा था। यह होने पर भी गाधीजी के कारण मेरी कुछ लाचारी थी कि अखबार मुझसे चिपके रहे। इसलिए मैं कुछ-न-कुछ पढ़ता रहा था। लेकिन अब मेरी आत्मा अपने मूल स्वरूप का भान मुझे करा रही है और आशा है कि चन्द दिनों में मुझमें जो कुछ थोडी-सी विकृति बैठी हुई थी, उससे मैं मुक्त हो जाऊँगा। मैं कहना यह चाहता हूँ कि आज भारत कहाँ रहता है, इसका कोई भान भी अखबारवालों को नहीं है। वे मुझे माफ करेंगे, परन्तु हिन्दुस्तान की असलियत को वे पहचानते नहीं हैं और फालतू चीजें जिन्हे दूसरे दिन भी कोई पढ़ने को राजी नहीं है, वे सारी अखबार में भर देते हैं, जिससे बुद्धि को दिग्भ्रम होता है। साहित्य की अत्यत हानि होती है, गलत भाषा का प्रचार होता है, राग-द्वेष बढ़ते हैं, देश मे फूट होती है और देश की ताकत क्षीण होती है। मैं जानता हूँ कि अखबारों की भी एक शक्ति हो सकती है, अगर वहाँ पर सत्य का खयाल रहे, सयम रहे और व्यर्थ की निदा न हो, लेकिन देश मे जो ऐसी घटनाएँ होती हैं कि जिनका परिणाम दूर तक पहुँचनेवाला है, उनका कोई महत्त्व इन अखबारवालो को महसूस नहीं होता है। ३५०० ग्रामदान हुए हैं। यह बात तो छोड ही दीजिये, अगर १०-५ गाँव की जमीन मारपीट कर लूट ली होती, अगर लोगों ने अपने कब्जे में कर ली होती, तो हिन्दुस्तान के तमाम अखबारों में बड़े

टाइप मे वह खबर आती और दुनिया मे भी पहुँचती कि इतने गाँवों मे जमींदारों का सफाया किया, जमीन को हथिया लिया। लेकिन इन ग्रामदानी गाँवो का यही कसूर है कि उन्होंने प्रेम से काम किया है। सिर्फ इस कसूर के वास्ते उनका मूल्य ध्यान मे नहीं आता।

स्त्रियाँ बगावत करें

भूदान का इतिहास देखा जाता, तो पता चलता कि किस तरह कोरापुट के जगलों में स्त्रियों ने अकेली घूमकर अलख जगाया। उसका सारा इतिहास हिंदुस्तान जानता और उसकी गाथा गाँव-गाँव और घर-घर पढ़ी जाती, परतु इस सबका कोई पता ही इस देश को नहीं है। इस आरोहण-कार्य मे स्त्रियों ने जो कार्य किया, उनका अपना स्वतत्र इतिहास रहेगा। कल मैंने मीराबाई के एक वचन का प्रयोग किया था, 'मातु छाडि, पिता छांडि, छाडि सब कोई, अँसुवन जल सींच-सींच प्रेम-बेल बोई'। ठीक इसी तरह से कई बहनों ने अपना सर्वस्व छोडकर इसमें काम किया है। इसलिए आज सुबह बहनों के आध्यात्मिक अधिकारों के बारे मे मैंने जो कहा, वे शब्द बहनो को अपने हृदय मे अकित करने चाहिए और पुरुषों की इस दुनिया मे बगावत करके खड़ा होना चाहिए। इसके बिना आज जो गलत मूल्य कायम हुए हैं, वे नहीं बदलेंगे।

पुरुषों पर अंकुश रखें

एक जमाना था, जब यह माना गया था कि स्त्रियों का क्षेत्र घर है। आज भी वह घर उनके हाथ मे रहेगा ही, परंतु इन २५ सालों के अन्दर पुरुषों ने दुनिया का इस तरह बन्दोबस्त किया है कि आज दुनिया बिलकुल हैरान, बेजार हो गयी है। इस इन्तजाम में दो विश्वयुद्ध हो चुके और तीसरा कब होगा, कह नही सकते हैं। स्त्री-पुरुष समानता के नाम पर ये लोग स्त्रियों के हाथ में भी बन्दूक देना चाहते हैं और स्त्रियो की पल्टनें खडी करना चाहते हैं, बजाय इसके कि स्त्रियों के हाथ मे वह अकुश आये, जिससे वे पुरुषों को ऐसे कामों से परावृत्त कर सकें और अपने मातृत्व की शक्ति जीवन मे ला सकें। यह करने के बजाय रिक्रूट (भरती) मे उनको भी स्थान दिया जाता है और उनकी मदद की अपेक्षा की जाती है। दुनिया मे यह सब निर्भयता के खयाल से चलता है और स्त्रियाँ भी

समझती हैं कि शायद हमारे हाथ मे वन्दूक आ जाय, तो हम निर्भय वनेंगी। लेकिन निर्भयता का वन्दूक के साथ कोई सम्वन्ध नहीं है। रावण सीता को ले गया, लेकिन कोई हिम्मत नहीं थी कि वह सीता के साथ वात भी कर मके। एक दफा उसने कुछ प्रश्न पूछे, तो सीता ने उसके सामने एक तिनका खडा कर दिया, यह वताने के लिए कि तेरी कीमत तिनके के जैसी है और लका में राक्षसों के बीच रहते हुए उसके हृदय-परिवर्तन की क्रिया जारी थी। वह राक्षसियो का हृदय-परिवर्तन कर रही थीं, जिससे रावण की कुछ भी नहीं चली। वाल्मीकि ने यह आदर्श प्रस्तुत किया है। वंदूक के वल से अगर निर्भयता आती, तो आज अमेरिका और रूस के लोग निर्भय वन जाते। उनके पास कितने शस्त्रास्त्र हैं, लेकिन फिर भी उनके हृदय में धड़कन है। मेरा खयाल है कि उनका तापमान भी साधारण नहीं रहता होगा। दोनों एक-दूसरे से डरते हैं। यह सारा पुरुषो की व्यवस्था में हुआ है। इसलिए अव स्त्रियों को सामाजिक क्षेत्र मे आना होगा और पुरुषों पर अकुश रखने का काम करना होगा। भारत की स्त्रियों से मेरी यही अपेक्षा है।

मातृशक्ति करुणा-राज्य स्थापित करे

अभी यहाँ पर एक लडकी ने सुनाया कि किस तरह वह जगल-जंगल घूमती थी। ये छोटी-छोटी लडकियाँ अहिंसा की वहादुरी दिखा रही हैं। किसीकी हिम्मत नही कि उनके विचारों का अनादर करे। मैं चाहता हूँ कि भारत की स्त्रियाँ अपनी आत्मशक्ति का भान रखकर सामने आ जायें। इसके आगे स्त्रियो के हाथ में समाज का अंकुश जानेवाला है, इसके लिए स्त्रियों को तैयार होना पडेगा। मुझे यह सुनकर वडी खुशी हुई कि उडीसा का शातिसेना का कार्य रमादेवी ने उठा लिया है। इसी तरह से स्त्रियाँ शाति-सेना का कार्य उठा लेंगी, तो दुनिया वदल जायगी और आज देश और दुनिया के सामने जो मसले उपस्थित हैं, उनसे मुक्ति होगी। पुरुषों से यह सव होनेवाला नहीं है। अव उनका दिमाग ठिकाने पर नहीं है। वह काम भी नहीं कर पाता है। उन्हे कुछ सूझता ही नही है और अगर सूझता है, तो यही कि सेना वढ़ाओ। इस तरह इस विज्ञान-युग में, जव कि पुरुषों की बुद्धि स्तभित हो गयी, अगर स्त्रियाँ काम में आती हैं और अपने दैवी गुणों के साथ, सयमशीलता के साथ, अपनी मातृ-शक्ति के साथ सामने आती हैं, तो करुणा का राज्य स्थापित कर सकती हैं।

एक अमेरिकन भाई ने एक दफा मुझसे पूछा था कि आप कैसा राज्य चाहते हैं, तो मैंने उन्हें जवाब दिया कि मुझे 'किंगडम ऑफ काइन्डनेस' (दया का राज्य) चाहिए। आज ऐसी हालत है कि यद्यपि दया है, फिर भी वह दासी है। वह क्रूरता की मदद करती है, क्रूरता साम्राज्ञी है। वह जख्म करने का काम करती है और फिर मरहम-पट्टी लगाने के लिए रेडक्रॉसवाले जाते हैं। वे लड़ाई को रोकते नहीं, बल्कि लड़ाई का स्वाद बढ़ाते हैं। उसकी योग्यता बढ़ाते हैं। इस तरह हिंसा में रुचि लानेवाली यह जो अहिंसा है, उसने महाभारत के काल से लेकर आज तक दुनिया को आकर्षित किया है।

ग्राम-स्वराज्य से मुक्ति

महाभारत में भी कहा गया है कि धर्मरक्षा के लिए हिंसा अनिवार्य है। यह दलील महाभारत काल से लेकर आज तक चली आयी है। उसका कारण यही है कि लोग कहते हैं कि हम लाचार हैं। भारत के राजनीतिज्ञ कहते हैं कि हम लाचार हैं। आज हिन्दुस्तान का संयोजन (प्लानिंग) क्या हिन्दुस्तान करता है ? हिन्दुस्तान का संयोजन तो पाकिस्तान कर रहा है। यहाँ पर संयोजन का आडम्बर मात्र है। पाकिस्तान क्या कर रहा है, सेना पर कितना खर्च कर रहा है, यह सब देखकर हमारा संयोजन होता है। इस तरह संयोजन का ढोंग चल रहा है। जिनका दिमाग ही आजाद नहीं है, वे क्या संयोजन करेंगे ? इसलिए अब हमें तय करना है कि देहातों का संयोजन दिल्ली नहीं करेगी, बल्कि देहातों का संयोजन देहाती करेंगे। इस तरह हम ग्राम-स्वराज्य उपस्थित करेंगे, तो सारा देश मुक्त होगा। इसके सिवा दुनिया को मुक्त करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

कुछ लोग भय दिखाते हैं कि सेना नहीं रखेंगे, तो देश पर हमला होगा। उधर पाकिस्तानवाले भी अपनी जनता को भयभीत करते हैं कि भारत हम पर हमला करेगा। यद्यपि वे जानते हैं कि भारत इस तरह हमला नहीं करेगा और भारत भी जानता है कि पाकिस्तान हमला नहीं करेगा, परन्तु जनता को इस तरह सुव्यवस्थित शिक्षण दिया जाता है और लोगों को सिखाया जाता है। अमेरिका के स्कूलों में बच्चे-बच्चे को यह सिखाया जाता है कि उद्जन (हाइड्रोजन) बम का जो यह प्रयोग चल रहा है, वह तो रक्षणकारिणी देवी है। इसलिए उसकी उपासना करनी

चाहिए। वह तो भयहारिणी कालिका है और दुनियाभर मे कुल शिक्षण राज्य के हाथ में होने से सब स्कूलों मे वही सिखाया जाता है जो सरकार चाहती है। इग्लैंड और अमेरिका में शिक्षण के कुछ स्वतत्र प्रयोग चलते हैं। इसलिए कुछ तो दिमाग ठिकाने पर रहता होगा, लेकिन फिर भी हर देश में शिक्षण सरकार के हाथ में है, जो सबसे खतरनाक चीज है! उसमे दुनिया को बचाने का काम स्त्रियों को करना होगा।

महिला से अवला

इस सम्मेलन मे भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियो की संख्या बहुत कम दिखाई दे रही है। ऐसा भेद क्यो दिखाई देना चाहिए? भगवान् ने पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियों को कम पैदा नही किया है, लेकिन आज सारी योजना पुरुषों के हाथ मे है, इसलिए स्त्रियों को जरा-सा स्थान दिया जाता है। कहते है कि हर कमेटी मे एकाध स्त्री होनी चाहिए। जिस तरह अल्पसख्यक का प्रतिनिधि होना चाहिए, वैसे स्त्रियों का भी प्रतिनिधि होना चाहिए, परन्तु अभी भी स्त्रियाँ उठ खडी नहीं हो रही हैं, क्योंकि उन्हे वही तालीम दी जा रही है, जिस तालीम ने पुरुषो के दिमाग बिगाडे हैं। स्त्रियों के शिक्षण में आध्यात्मिक ज्ञान होना चाहिए। लेकिन आज वह नही होता है। इस हालत मे दुनिया का कौन बचायेगा? लोकमान्य तिलक ने कहा है कि हिन्दुस्तान में धर्म की रक्षा अगर किसीने की है, तो स्त्रियों ने की है। भारत में स्त्रियों को इतनी प्रतिष्ठा दी गयी है कि शास्त्रो मे कहा है 'सहस्र तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते।' हजार पिताओं से बढ़कर एक माता का गौरव है और श्रुति ने 'मातृदेवो भव' पहले कहा और फिर उसके बाद 'पितृदेवो भव', 'आचार्य देवो भव।' इस तरह हमारी सभ्यता में महिलाओं के लिए इतनी प्रतिष्ठा है। महिला जैसा शब्द भी क्या किसी भाषा में है, जिसमें स्त्रियों की महिमा बतायी गयी हो? 'महिला' शब्द ही महानतासूचक है। लेकिन बीच में एक जमाना आया, जब कि स्त्रियों को 'अबला' कहा गया। महिला गयी और अबला आयी! वही सस्कृत भाषा, लेकिन लोगो के हाथ मे इतनी गिरी कि स्त्रियों को आदरपूर्वक भीरु कहने लगे और उनके हाथ मे, नाक में, कान में, गले में गहनों के नाम से बेडियाँ डाली गयीं।

हम कहते हैं कि शाति-सैनिक को पक्षमुक्त होना चाहिए, लेकिन आज हमारे

बहुत-से पुरुष राजनेतिक पक्षों में बँटे हुए हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि आप अपनी स्त्रियों को पक्षमुक्त कर दें, फिर आप चाहे पक्षग्रस्त रहें स्त्रियों को शांतिसेना में आना चाहिए। फिर इन सब पुरुषों को इजाजत है कि राजनैतिक पक्षों में बट जायँ। जब रमादेवी ने उड़ीसा की शांति-सेना का निमंत्रण कबूल किया, तब मुझे बहुत आनद हुआ और लगा कि अब उड़ीसा का काम बनेगा। वैसे ही हर प्रान्त में स्त्रियाँ शांति-सेना का काम उठाने के लिए सामने आयें।

गाधीजी ने यह सारी शक्ति खोल दी है। आज तक स्त्रियों के बारे में ज्यादा-से-ज्यादा यही कहा गया कि वे सुरक्षित रहें, लेकिन मैं कहता हूँ कि वे सुरक्षित ही नहीं, बल्कि स्वरक्षित होनी चाहिए। अपनी रक्षा स्वय करने की शक्ति उनमे होनी चाहिए। वह अब तक नहीं थी, लेकिन अब अहिंसारूपी शस्त्र सामने आया है, तो वह शस्त्र जितना पुरुष इस्तेमाल कर सकते हैं, उससे ज्यादा स्त्रियाँ इस्तेमाल कर सकती हैं। स्त्रियों को अब अपनी जजीर-बेड़ियाँ तोडकर बाहर आना चाहिए।

शराब की दुकानों पर धरना

२५ साल पहले की बात है। चर्चा चल रही थी कि शराब की दूकान पर धरना देने का क्या इन्तजाम किया जाय! किसीने कुछ सुझाया, तो किसीने कुछ। गाधीजी ने सुझाया कि यह काम स्त्रियों का होना चाहिए। लोग सुनते ही रह गये कि गाधीजी क्या बोल गये! जहाँ बिलकुल अनीतिमान लोग जाते हैं और सब प्रकार का बुरा बर्ताव चलता है, ऐसे लोगों के बीच स्त्रियाँ क्या करेंगी? लेकिन गाधीजी ने कहा कि वहाँ पर स्त्रियाँ ही काम करेगी। जो सबसे गिरे हुए लोग हैं, उनके खिलाफ हमारे पास जो ऊँची-से-ऊँची नैतिक शक्ति है, वही भेजी जानी चाहिए। उसके अनुसार स्त्रियाँ वहाँ गयीं और उन्होंने काम किया, जो सारे भारत ने देख लिया। एक दफा अण्णासाहब कर्वे वर्धा आये थे। वे बोले कि गाधीजी ने जादू कर दिया। स्त्रियों की उन्नति के वास्ते हम २५-२५ साल तक मेहनत करके जो काम नहीं कर सके और जिसकी कल्पना नहीं कर सके, वह चीज गाधीजी ने कर दी। यह गाधीजी ने क्या किया, यह तो अहिंसा ने किया है। जब तक बचाव का शस्त्र हिंसा रहेगा, तब तक दुनिया में आप कितने भी तत्त्व लायें, स्त्रियों का स्थान दोयम दर्जे का ही रहेगा। कितनी भी कोशिश करें, तो उन्हे अव्वल स्थान नहीं

मिल सकता है। इसलिए अगर स्त्रियों को अव्वल स्थान देना हो, तो यह जरूरी है कि रक्षण का साधन अहिंसा होना चाहिए, जिससे मातृ-भक्ति को स्थान मिलेगा। इसी लिए बुद्ध भगवान् और महावीर के जमाने में स्त्रियों का उद्धार हुआ और गाधीजी की बदौलत स्त्रियों का उत्थान हुआ। इसका कारण यही है कि इन लोगो ने रक्षण-शक्ति अहिंसा मानी, हिंसा नहीं। हिंसा तो भक्षण-शक्ति है।

मेरी आशा और अपेक्षा है कि हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ शान्ति-सेना का कार्य उठा ले और उसके वास्ते घर-घर सर्वोदय-पात्र खडा करें, जिसमें अपने बच्चे की मुट्ठी से अनाज डाला करें, तो बहुत बडा काम होगा। मुझे खुशी है कि गोपबाबू के जाने के बाद उडीसा के कार्यकर्ताओं ने तय किया कि वहाँ पर घर-घर में सर्वोदय-पात्र स्थापित हो और यही गोपबाबू का स्मारक माना जाय। अब यह चीज सारे भारत में चलनी चाहिए। हमारे पूजनीय राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू ने अपने घर मे सर्वोदय-पात्र रखा है। अगर हिंदुस्तान में संवेदना होती, तो घर-घर यह खबर पहुँचती और घर-घर में सर्वोदय-पात्र स्थापित होता। लेकिन आज हिन्दुस्तान संवेदना-शून्य बन गया है। राष्ट्रपति कोई व्यक्ति नही है, वह तो सारे भारत का श्रद्धा-सर्वस्व है। जब उनके घर मे यह चीज होती है, तब उसका मतलब है कि सबको आदेश मिल गया। लेकिन हिन्दुस्तान की हालत ऐसी है कि अज्ञान का कोई पार नहीं है।

१९५१ में मैं वर्धा से दिल्ली जाते हुए विन्ध्य प्रदेश के एक गाँव में ठहरा था। वहाँ पर गाधीजी का नाम लिया, तो लोगों ने मुझसे पूछा कि इन दिनों गाधीजी कहाँ रहते हैं! तब मुझे लोगों से कहना पडा कि उन्हें परलोकवासी हुए करीब चार साल हुए हैं। लेकिन विन्ध्य प्रदेश के उस देहात के लोगो को मालूम भी नहीं था कि गाधीजी परलोकवासी हुए हैं। इस तरह देश मे इधर तो इतना प्रगाढ अधकार है और उधर अखबार मे फालतू खबरे आती हैं कि अमुक मन्त्री दाल की फैक्टरी खोलने गया और उसने गाधीजी का नाम लिया। उसने वहाँ पर जो कहा, वह सब बडे टाइप में छापा जाता है, लेकिन देहातों को जिस ज्ञान की जरूरत है, वह ज्ञान है ही नहीं।

[प्रवचन के बाद विनोबा सम्मेलन-मंडप से चले गये और सम्मेलन की कार्यवाही जारी रही।]

अमलप्रभा दास (असम) :

शुरू में यह कह देना चाहती हूँ कि मैं हिन्दी अच्छी तरह नहीं जानती हूँ। मेरी टूटी-फूटी हिन्दी के लिए आप माफ करेंगे ऐसी आशा है। जब भूमिदान-आन्दोलन शुरू हुआ, उसी वक्त असम में भी उसका सन्देश पहुँचा। लेकिन हमारी शक्ति और संख्या कम थी, कोई बड़े नेता हमारे साथ नहीं थे। असम के मुट्ठीभर कार्यकर्ताओं ने श्रद्धा से काम शुरू कर दिया। जब भूमिदान, सम्पत्तिदान और ग्रामदान मिलने लगे, तो हमको आश्चर्य होने लगा। हमारा आत्मविश्वास बढ़ गया। १९५६ के अन्त तक दूसरे प्रान्तों की तुलना में असम बहुत पिछड़ा हुआ था। लेकिन उसके बाद सामूहिक पदयात्राएँ शुरू कीं। उन पदयात्राओं का अच्छा असर हुआ। उत्तर लखीमपुर जिले में विशेष कार्य हुआ है। एक निष्ठावान् कार्यकर्ता वहाँ घूमने लगे, उससे अच्छा वातावरण बना। हमको कुछ ग्रामीण कार्यकर्ता मिले। विमलाबहन ने उन कार्यकर्ताओं का दो महीने तक एक प्रशिक्षण शिविर चलाया। सारे जिले में उत्साह और विश्वास का वातावरण पैदा हुआ। सरकार और दूसरे सभी राजनैतिक पक्षों ने सहयोग दिया। उस सहयोग से लाभ उठाने की हमारी पात्रता जितनी बढ़ेगी, उतनी हमारी प्रगति होगी। उत्तर लखीमपुर में इस शिविर के बाद ग्राम-स्वराज्य के लिए बहुत अनुकूल क्षेत्र बना है। पूरे असम में अब तक १०७ ग्रामदान मिले हैं।

हरिवल्लभ परीख (गुजरात) :

मित्रों ने आग्रह किया कि लोकशक्ति का कुछ दर्शन आप लोगों को कराऊँ। इसलिए हाजिर हो गया हूँ। शुरू से यह कोशिश रही कि हमारा आन्दोलन लोक-आधारित हो और उसमें से लोकशक्ति प्रकट हो। शुरू-शुरू में आन्दोलन कार्यकर्ताओं पर आधार रखता था। पदयात्राएँ भी कार्यकर्ता-आधारित हुईं। यों कहिये कि उस वक्त पेड़ में आम तो लगे थे, लेकिन वे कच्चे थे। बाद में वे पक गये। बाबासाहब ने गणसेवकत्व और सघन-पदयात्राओं की तजवीज पेश की। तन्त्रमुक्ति और निधिमुक्ति ने कार्यकर्ताओं का रुख लोकशक्ति की तरफ मोड़ा। हमारा कदम आगे बढ़ने लगा। व्यक्तिगत आन्दोलन ने सामूहिक स्वरूप धारण किया। हम सब कार्यकर्ता छोटे पड़ते हैं। ग्रामदान के बाद पुनर्निर्माण नहीं कर पाते। लेकिन हम

गोववालों के वीच उनके जैसे होकर रहें, तो काम हो सकता है। हमें यह अनुभव हुआ। गॉव की पूरी तैयारी गॉववाले ही कर लेते हैं। एक-दूसरे को वे समझा देते थे कि ग्रामदान से क्या-क्या फायदे हैं। ग्रामदान से पहले सवको अपनी-अपनी कपास की रखवाली करनी पडती थी। रामजी को शामजी का डर रहता था। ग्रामदान के वाद सव चैन से सोते हैं। खेतो की मेंडो के झगडे नहीं होते। महाजन और वकील का मुँह नहीं देखना पडता। इस अनुभव से हमारा हौसला वढ़ा। हमने ग्रामसकल्पों का कार्यक्रम शुरु किया। प्रथम संकल्प यह हुआ कि हम अपने में से वेकारी को खत्म करे। करीव सौ गाँवों का सकल्प आज पूरा हो गया है। ग्रामदानी गॉवों के लोग ही इस आन्दोलन का नेतृत्व कैसे करें, यह सोचना होगा। तभी आन्दोलन व्यापक वनेगा।

गॉववाले झगडो का फैसला अपने गॉव मे ही कर लें, इसकी एक मिसाल देता हूँ। गॉव मे मारपीट हुई। एक भाई को वल्लम लगा। गॉववालों ने उसे मारनेवाले को यह सजा दी कि वह उस भाई की खेती एक साल तक जोत दे और उसीके यहॉ भोजन करे। यह चीज पुलिसवालों को खटकी। उन्होंने अपना आतक जमाने के लिए गोववालों को डराया-धमकाया। असल मे ऐसे मामलो में उनका सहयोग मिलना चाहिए।

गुजरात के एक तत्त्वचिन्तक सहकारी खेती के खिलाफ विचार रखते हैं। उन्होंने कहा, सहकारी खेती में किसान अपना स्वातन्त्र्य खो देता है। मैं यदि किसान होता, तो किसीका हुक्म न मानता। अपनी मर्जी से काम करता। उन्हें देहातवालों ने जवाव दिया, "हम लाचारी से किसीका हुक्म थोडे ही मानते हैं? आपके वडे भाई या पिताजी आपको काम के लिए वुलायेंगे, तो आप जायेंगे या नहीं? हम एक-दूसरे के वुलाने से जाते हैं और काम करते हैं। अपने काम और अपने सहकारी की इज्जत करते हैं।" इस तरह लोगों के सोचने के ढग में भी परिवर्तन हो रहा है। सोचने के पुराने तरीके वदल रहे हैं। नया सन्दर्भ वन रहा है।

भागीरथीवहन (कर्नाटक):

शुरु में एक विनती है। मुझे हिन्दी वोलने की आदत नहीं है, आप मेरी गलतियों की तरफ ध्यान न देकर आशय की तरफ ध्यान दें। कर्नाटक में अभी

बहुत कम काम हुआ है। ग्रामदान भी बहुत थोड़े हुए हैं। इसलिए बाबा ने आदेश दिया कि बहनें भजन-कीर्तन के द्वारा लोगों को सन्देश सुनाकर नैतिकता का वातावरण उत्पन्न करें। कारवार जिले का मुटगाडे तालुका एक जंगली भाग है। वहाँ ६० गाँव ग्रामदान के लिए चुने गये हैं। गाँव छोटे-छोटे हैं। सफलता तब मिलेगी, जब गाँववाले समझेंगे कि ये लोग हमारी भलाई के लिए यहाँ आते हैं। हमें उन लोगों के साथ घुलमिल जाना चाहिए। इसलिए हम उनके साथ कूटना, पीसना, बच्चों को खेलाना आदि सारे काम करती हैं। भजन गाती हैं, घूमती हैं, इससे गाँवों मे प्रेम का वातावरण उत्पन्न हुआ है। अब तक कोई २५ गाँव मिले हैं। इस बात का ध्यान रहे कि वातावरण बिगड़ने न पाये। शहर के जीवन का असर गाँववालों पर बुरा होता है। इसलिए शहरों मे भी प्रचार की आवश्यकता है। मुडगाडे मे सर्वोदय-पात्र का उपक्रम भी हुआ है। अब तक कोई २०० सर्वोदय-पात्र रखे गये हैं।

मोतीलाल केजड़ीवाल (बिहार) :

पटरपुर मे आकर बाबा के व्याख्यान सुने, बहनों-भाइयों के अनुभव-संस्मरण सुने, इससे कुछ आत्मविश्वास बढ़ा। दिल में एक उमंग उठी कि चाहे ईश्वरीय इच्छा से हो, चाहे बाबा की प्रेरणा से हो, चाहे अपनी कर्तव्यभावना के तकाजे से हो, हम एक महान कार्यक्षेत्र में बहुत पवित्र भावना से उतरे हैं। मैं आपको केवल मधुर संस्मरण नहीं सुनाऊँगा। कार्यक्रम के विषय में कुछ कहूँगा। इस कार्य की कठिनता को देखकर बहुतों को शक होता है, क्या यह काम होनेवाला है? जब दूसरों को सन्देह होता है, तब तो हमारी निष्ठा और निश्चय बढ़ना चाहिए। हम यहाँ से ऐसी कामना लेकर जायँ कि हम इस काम को जल्दी-से-जल्दी पूरा करेंगे और उसके लिए एक निश्चित कार्यक्रम भी बनायेंगे। हमारे सामने एक निश्चित कार्यक्रम होना चाहिए। बाबा ने कहा, यदि कोई पूरा जिला या सबडिविजन ग्राम-स्वराज्य के लिए तैयार हो, तो मै दोबारा बिहार आ जाऊँगा। बिहार के १७ जिलों के कार्यकर्ता निश्चय करें कि अमुक थाने मे हम सघन रूप से युद्ध की भूमिका पर ग्राम-स्वराज्य का काम करेंगे। मै जिस संथाल परगना जिले मे रहता हूँ, वहाँ के कई थानों मे ग्राम-स्वराज्य का वातावरण तैयार हो सकता है। आप उसे या दूसरे किसी जिले या थाने को चुन सकते हैं। सर्वोदय-पात्र आदि कार्यक्रमों

के आधार पर क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए। कार्यकर्ता को यह विश्वास होना चाहिए कि दुनिया में कोई भी काम असंभव नहीं है। तभी वह निश्चय से काम कर सकेगा। हजरत मुहम्मद पैगम्बर कहते थे कि मेरी दाहिनी तरफ सूर्य और बायीं तरफ चन्द्र आकर खडे हो जायें और मुझसे कहे कि रुक जाओ, तो भी मैं नहीं रुकूँगा। इसी तरह से हम निश्चयपूर्वक अपना काम करते रहे। तत्र के अभाव मे जो शिथिलता आती है, वह कार्यकर्ता के आत्मविश्वास और कर्तव्यनिष्ठा से ही दूर हो सकती है।

प्रभाकरजी (आन्ध्र)

आन्ध्र के विषय में कुछ विशेष बातें हैं। एक तो यह कि गाधीजी को रचनात्मक कार्य की मूल कल्पना वेजवाडा में ही सूझी और विनोबा के मन में भूदान का विचार तेलगाना में ही पैदा हुआ। आन्ध्र मे चार प्रकार के प्रदेश हैं। एक विजयवाडा का पहाड़ी इलाका, जिसमे गिरिजन रहते हैं। दूसरा रायल सीमा, जिसमे हरिजन रहते हैं। तीसरा तेलंगाना, जहाँ परिजन रहते हैं और चौथा कृष्णा जिला जिसमे श्रीजन रहते हैं। इन चारों इलाकों में ग्रामदान का काम करना है। ग्रामदान एक विशिष्ट भावनात्मक कार्यक्रम है। एक आख्यायिका से मैं इसे स्पष्ट कहूँगा।

पंढरपुर में, मान लीजिये, एक शाति नाम की एक लड़की रहती थी। उसे नित्य यह आकाक्षा बनी रहती थी कि मुझे स्वर्ग और नरक देखना है। इस प्रबल इच्छा के कारण शान्ता को ऐसा स्वप्न हुआ कि मैं मरी हूँ और मुझे मृत्यु के दूत नरक में ले गये हैं। वहाँ शान्ता ने दुबले-पतले, वीर्यहीन, रक्तहीन नरककाल देखे। उनके बाँये हाथ पीठ से बँधे हुए थे और दाहिने हाथ में एक तीन फुट लबी करछुई थी। सामने पकवानों से भरे हुए थाल रखे थे। लेकिन करछुई लम्बी होने से अन्न मुँह तक नहीं पहुँचता था। वह पीठ की तरफ निकल जाता था। उसके बाद मृत्युदूत शाता को स्वर्ग में ले गये। वहाँ उसने सारे लोग हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न देखे। उनके हाथ में भी वे ही लम्बी करछुइयाँ थीं। परंतु उन्होंने एक युक्ति निकाली थी। वे उस लम्बी करछुई से एक-दूसरे के मुँह में निवाला डालते थे। इस तरह सबने एक-दूसरे को खिलाया और सबका पेट भर गया। पड़ोसी को खिलाकर खाना यही ग्रामदान का सन्देश है। ● ● ●

तीसरा दिन

रविवार, १ जून १९५८ : सुबह ८ बजे

(खुला अधिवेशन)

जगन्नाथन् (तमिलनाड)

आप जानते हैं कि दक्षिण में हिन्दी के बहुत-से पंडित हैं। फिर भी हिन्दी के लिए बहुत विरोध है। इसलिए हिन्दी बोलने के अवसर कम मिलते हैं। मैं हिन्दी अच्छी तरह नहीं बोल सकता।

इस आरोहण में एक के बाद एक सीढ़ियाँ आयीं। पहले भूदान आया, उसके बाद ग्रामदान और अब फिरकादान की बात हो रही है। ग्रामराज्य हमारा लक्ष्य है। ग्रामदान उसकी बुनियाद डालता है। अलग-अलग बिखरे हुए गाँव मिलने से काम नहीं चलेगा। बडे पैमाने पर एक क्षेत्र में सटे हुए ग्रामदान होने चाहिए। बाबा को लगा कि तमिलनाड मे यह हो सकता है। वहाँ तिरुमंगलम् तालुके मे रचनात्मक काम होता आया है। इसलिए तिरुमगलम् तालुके में काम शुरू हुआ। एक अच्छा वातावरण बन गया। लेकिन इतने मे चुनाव की गडबडी शुरू हुई और उसके बाद रामनाथपुरम् के बलवे हुए। इस कारण काम आगे नहीं बढ़ सका। रामनाथपुरम् के दंगों के समय शाति-स्थापना का काम करने के लिए हम लोग अपना काम छोडकर वहाँ चले गये। झूठी और अत्युक्तिपूर्ण खबरें अखबारों मे छपी थीं, इसलिए लोगों मे आतक और प्रक्षोभ का वातावरण था। हमने लोगों के सामने सच्ची परिस्थिति रखी। वातावरण कुछ शान्त हुआ। अब तक कुल ८० गाँव मिले हैं। अभी ४० गाँव बाकी हैं। हमारा यह सौभाग्य नहीं हुआ कि हम यहाँ फिरकादान की घोषणा कर सकते। फिर भी वहाँ का वातावरण काफी अनुकूल हो गया है। ग्रामदानी गाँवों के लोग स्वयं सामूहिक-पदयात्रा के लिए निकले और दूसरे गाँवों के लोगो को समझाते रहे कि हमने ग्रामदान क्यों किया ? मैं समझता हूँ, हमें किसी-न-किसी क्षेत्र में ग्राम-स्वराज्य का नमूना पेश करना

होगा। रामनाड जिले की घटना से जो लोग भाग गये थे, वे एक महीने बाद वापस आये। उन्हें बसाने का काम करना पडा। यह काम राजनैतिक पार्टियों ने अपना नहीं समझा। ग्रामदान का काम इसलिए कुछ पिछड गया। लेकिन हमारी आशा और प्रार्थना है कि आप सबकी प्रेरणा और आशीर्वाद से हमारा फिरकादान का लक्ष्य पूरा हो।

चारुचन्द्र भंडारी (बगाल)

मैं शान्ति सेना के संभवित रूप के बारे में कुछ कहूँगा। मैंने हिन्दी मे बोलने की हिम्मत की है। मेरी टूटी-फूटी हिन्दी आप सहन कर ले। इस वक्त हम भूदान-आन्दोलन के चौथे सोपान पर है। भूदान, ग्रामदान, ग्राम-स्वराज्य और शाति-सेना। शाति-सेना चौथी सीढ़ी है। ग्राम-स्वराज्य के रक्षण के लिए शाति-सेना की जरूरत है। ग्राम-स्वराज्य को अशान्ति से बचाना शान्ति-सेना का प्रथम कर्तव्य है और शान्ति-सेना का अन्तिम कर्तव्य होगा, सारे देश को अशान्ति से बचाना। जिस दिन यह बात सिद्ध होगी, उस दिन पुलिस और फौज की जरूरत देश को नही रहेगी। यही शासन-मुक्त समाज की व्याख्या है। जो हमारा अन्तिम आदर्श है। आज जनता में राज्यशक्ति के प्रति तीव्र आग्रह और उत्कट आकर्षण है। उस आग्रह को हमें शिथिल करना है। उस आकर्षण को मन्द करना है। तभी हम शासन-मुक्त समाज की ओर प्रगति कर सकेंगे।

दूसरे पक्ष भी शासन-मुक्त समाज में विश्वास करते हैं। लेकिन वे उसकी ओर राज्यशक्ति के द्वारा बढना चाहते है। इसलिए वे राज्यशक्ति में लोगों की श्रद्धा बढ़ाते हैं। राज्याभिमुख बनती हुई जनता को लोकाभिमुख कैसे बनाया जाय, यह हमारा मुख्य प्रश्न है। इस दिशा मे शान्ति-सेना बहुत कुछ काम कर सकती है। बल्कि यही उसकी सफलता की कसौटी होगी।

यदि लोगों में यह विश्वास पैदा किया जा सके कि हमारी आर्थिक व्यवस्था अच्छी होगी और उस व्यवस्था से लोगों के जीवन का भौतिक स्तर ऊँचा उठेगा, तो देश में पाँच लाख ग्रामदान भी हो सकते है। आर्थिक व्यवस्था के विषय मे इस प्रकार का विश्वास पैदा करना अपेक्षाकृत सरल है। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का विचार फैल रहा है। परंतु आज की परिस्थिति मे राज्यव्यवस्था राष्ट्रव्यापी

नहीं रहेगी, यह विश्वास पैदा करना कठिन है। क्योंकि देश के सामने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो की समस्या है।

इसलिए राष्ट्ररक्षण की समस्या को अभी हम छोड़ दें। आन्तरिक समस्याओं के लिए और देश के भीतर शातिरक्षण करने के लिए पुलिस तथा फौज की जरूरत नहीं है, इस तरह की श्रद्धा लोगो मे पहले पैदा करे, यह शान्तिसेना का मुख्य कार्य है। यदि हमने लोगों में यह विश्वास पैदा कर दिया कि पुलिस और फौज के बिना हमारे गॉवों का रक्षण हो सकता है, तो विश्वशान्ति का रास्ता खुल जायगा।

एक बात और। चिकित्साशास्त्र में चिकित्सा के दो पहलू होते हैं। एक प्रतिषेधक (प्रतिबन्धक) और दूसरा प्रतिकारक। बीमारी के कारणों को मिटाकर बीमारी होने ही न देना प्रतिषेधक पहलू है। बीमारी होने पर उसका इलाज करना प्रतिकारक पहलू है। अशान्ति के मूल कारण समाज मे से दूर करना शान्तिसेना का प्रतिषेधक कार्य है। इसलिए शान्तिसैनिक सामाजिक और आर्थिक विषमता के कारणों का निराकरण करने मे निरन्तर सचेष्ट रहेगा। यह उसका नित्यधर्म होगा। अशान्ति पैदा होने पर उसका उपाय करना शान्तिसेना का प्रतिकारक पहलू है। यह उसका नैमित्तिक धर्म होगा। उदाहरणार्थ, रोज प्रार्थना करना हमारा नित्य-धर्म है। परन्तु यदि प्रार्थना के समय कहीं आग लग जाय, तो मन में प्रार्थना करते हुए आग बुझाने दौड़ना हमारा नैमित्तिक धर्म है। उसी प्रकार शान्तिसैनिक भूदान और ग्रामदान के नित्य-धर्म का पालन करता रहेगा और अशान्ति का नैमित्तिक प्रसग उपस्थित होने पर स्वय अपना बलिदान करेगा।

चौंडे महाराज (महाराष्ट्र):

[महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध गोभक्त श्री चौंडे महाराज ने मराठी मे भाषण दिया और उनके सहयोगी श्री अनन्तदास ने हिन्दी मे उसका साराश बतलाया।]

भगवान् गोपालकृष्ण का अवतार गोमाता के रक्षण के लिए हुआ। इसीलिए उसका नाम गोपाल हुआ। गोपालकृष्ण नित्य अपने मस्तक पर गोधूलि आदरपूर्वक धारण करते हैं। गोपालकृष्ण का और श्री पाडुरंग का दैवत गोमाता है। गोभक्त हिन्दू आज गोमाता को भूल गया है। जो गाय को भूल जाते हैं, उनसे गोपालकृष्ण

कोई नाता नहीं रखता। गाय को बचाने के लिए क्षात्रवंशीय श्रीकृष्ण गोपाल बन गया। इस घटना का रहस्य जो भूल जाते हैं, वे भारतीय संस्कृति के मर्म को नहीं पकड़ सकते। भारत जिस दिन गाय की सुध लेगा और उसके सार-सँभाल में तत्पर हो जायगा, उस दिन उसका भाग्योदय होगा। केवल गोभक्ति के नारे लगाने से और उसे गोग्रास खिलाने से गाय का पालन नहीं होगा। समाज में उसकी उपयोगिता बढ़ानी होगी। इस विषय में गांधीजी मेरे गुरु हैं। उन्होंने कहा कि शुद्ध गोदुग्धालय और शुद्ध चर्मालय जब तक नहीं होंगे, तब तक गाय की पूजा होगी, लेकिन उसका प्रतिपालन नही होगा। महात्माजी के इस कथन से मै बहुत प्रभावित हुआ। मैं भी मानता हूं कि गोरक्षण का यही सच्चा रास्ता है। महात्माजी के साथियों में कई भाई-बहन गोव्रती हैं। गोहत्या-प्रतिबन्धक कानून तो बनना ही चाहिए, परंतु जब तक हम गोव्रती नहीं बनेंगे, तबतक गाय की हत्या बन्द होने पर भी उसका रक्षण और पालन नहीं होगा। इसलिए आप सब लोगों से प्रार्थना है कि देश की समृद्धि के लिए आप सब गोव्रतधारी बनें। और इस प्रकार भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करें।

हेमावहन (जर्मनी) :

पू० बाबाजी, पू० माताजी, माननीय सज्जनो, बहनो और भाइयो,

इस महान् सभा मे भारतभर के इतने सर्वोदय-कार्यकर्ताओं को और सर्वोदय-प्रेमियों को देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है। इतने हजारो मे आपकी उपस्थिति साबित करती है कि सर्वोदय-आन्दोलन ने इस देश मे अच्छी तरह नींव डाली है और जन-शक्ति की जागृति मे उसे बड़ी सफलता मिल चुकी है। गांधीजी और विनोबाजी के सर्वोदय-आवाहन को सुनकर इस आन्दोलन मे भाग लेने के लिए और दरिद्रनारायण की सेवा करने के लिए उद्यत होनेवालों मे मै भी एक हूँ।

जर्मनी मे मेरे निवासस्थान स्टुटगार्टनगर मे पंद्रह महीनो के पहले मैंने इस प्रबल पुकार के बारे में सुना और उसी समय मेरे आत्मा ने इस पुकार को स्वीकार कर लिया। कई हजार मील की दूरी पर मैंने बड़ी उत्सुकता से भारत की दरिद्रता को दूर करने के लिए विनोबाजी के इस अनूठे मार्गदर्शन के बारे में सुना। मुझे तुरन्त ही यह महसूस हुआ कि यह भू-दान, ग्रामदान-आन्दोलन भारत के हृदय की गहराई से

उसकी प्राचीन संस्कृति और धार्मिक परम्परा के गर्भ मे पैदा हुआ है। उसी दिन, उसी समय जब मैंने विनोबाजी और सर्वोदय के बारे मे सुना, भारत आकर इस महान् आन्दोलन में सेवा करने का निश्चय किया।

मै अव भारत मे लगभग सात महीने रही हूँ। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं कि इस समय में सर्वोदय मेरे जीवन का आधार हो गया है। सागर मे एक जल-बिंदु की तरह मैं अव इस सर्वोदय सागर मे समा गयी हूँ।

इसमे कोई शक नहीं है कि सर्वोदय भारत की दरिद्रता और सामाजिक विषमता को दूर करने का एक महान् अहिंसात्मक आयुध है। केवल इसी वास्ते मैने इस विचार को नहीं अपनाया है। मेरे दर्शन मे इसका महत्त्व और भी है। मनुष्य के हृदय के प्रेम और करुणा को जाग्रत करने की शक्ति मुझे सर्वोदय में दिखाई देती है। मेरा यह निश्चय है कि भारत में ही नहीं, संसारभर में मानव-जीवन के बुनियादी मूल्यों का उद्धार करने की अद्भुत शक्ति सर्वोदय में है।

मैं पिछले वर्ष तक पश्चिम के देशो मे, खासकर जर्मनी, फ्रान्स और अमेरिका मे रही थी। वहाँ के समाज के तुच्छ, भौतिक मूल्यों के कारण मेरे हृदय मे गहरा असंतोष पैदा हुआ और जीवन के ऊँचे और मौलिक मूल्यों की तलाश मे ही मैं अब भारत मे आयी हूँ। मैंने सदा मेरे जीवन में यह महसूस किया कि खाना-पीना और इंद्रिय-सुख का अनुभव करना ही जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। अब सर्वोदय-विचार में मानव-जीवन के लक्ष्य के बारे में मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे मिल गया है। मनुष्य के हृदय, बुद्धि और आत्मा की उन्नति और सिद्धि सच्चे विश्व-प्रेम और निष्काम सेवा से ही हो सकती है।

आज मैं आपको अन्त मे यही कहना चाहती हूँ कि भारत के लिए मेरे मन में बड़ा प्रेम है और आप सब भारतवासी मेरे बहुत निकट हैं। पू० विनोबाजी ने परसों कहा कि मैं मेरे घर माता-पिता और भाई-बहनों को छोडकर यहाँ आयी हूँ। मैं आपको कहना चाहती हूँ कि भारत अब मेरा घर बन गया है और आपके बीच सेवा करने में मुझे बड़ी खुशी होती है। भारत से मुझे इतना प्रेम इसीलिए है कि इस प्राचीन देश से भौतिक संपत्ति मे नहीं, परन्तु आत्मिक संपत्ति में ऊँचे इस देश से आज की दुनिया को सर्वोदय का महान् संदेश मिला है। मुझे पूरी आशा है कि सर्वोदय समाज का इस देश में सदा के लिए संस्थापन होगा और इस देश मे

संसार के सभी देशों को प्रेम और अहिंसा के अमर दीप से प्रकाशित यह नया मार्गदर्शन मिलेगा। इसमें मुझे तनिक भी सदेह नही है कि सर्वोदय से ही अविश्वास, स्वार्थ, कृपणता, भय और आत्मिक मूल्यों मे अश्रद्धा से भरी हुई आज की दु खी दुनिया का उद्धार होगा। सबको प्रणाम!

पुजारी राय (उत्तर प्रदेश)

पूज्य बाबा राघवदास के देहावसान के बाद उनका अखंड पदयात्रा का व्रत चलाने का भार मुझे सौंपा गया। मैं और मेरे साथी सब बहुत तुच्छ व्यक्ति हैं। जिनका कहीं कोई प्रभाव नहीं, और न कोई सामाजिक प्रतिष्ठा ही है, ऐसे साधारण कार्यकर्ताओं की हमारी टोली है। हमने यह निश्चय किया कि हमारी पदयात्राएँ भी कौटुम्बिक यात्राएँ हों। सभी मगलकार्यों मे जब हमारी धर्मपत्नियाँ शामिल होती हैं, तो इस पवित्र यज्ञ मे भी वे क्यो न शामिल हों? जो तीर्थयात्रा सपत्नीक होती है, वही सफल समझी जाती है। इसलिए हमने अपनी पदयात्रा में कार्यकर्ताओं की पत्नियों और बालकों को भी शरीक कर लिया। ग्रामो की महिलाएँ जब इस सपरिवार पदयात्रा को देखती हैं, तो उनकी सहानुभूति उमडती है। वे भी हमारी पदयात्राओं मे बीच-बीच मे शामिल हो जाती हैं। हम अपना भार किसी एक ही यजमान पर नही डालते, गाँव के एकेक घर से अन्न माँगकर प्रसाद खाते हैं। इस क्रम में हमें बहुत सफलता मिली। पारिवारिक पदयात्रा के प्रयोग मे यह दिक्कत जरूर रही है कि कभी-कभी महिलाएँ और बच्चे बीमार हो जाते हैं, तब एक ही गाँव में मुकाम करते हैं और आसपास के गाँवो मे घूम लेते हैं। जितनी हमारी आत्मशुद्धि होगी, उतने ही हम गाँववालों के विश्वासपात्र बनेगे। सच तो यह है कि हम इस नाटक के पात्र हैं। विनोबा सूत्रधार हैं। हमारे सच्चे सूत्रधार तो गाधीजी ही हैं, जिनका काम उन्हींकी प्रेरणा से विनोबा आगे बढ़ा रहे हैं। हम सबको अपना-अपना शक्ति सर्वस्व और भक्तिभाव इसमें लगा देना चाहिए।

ध्वजाप्रसाद साहु (बिहार)

भूमिदान के सिलसिले मे बिहार का नाम देश में बहुत लिया जाता है। थोडा बहुत काम हुआ भी है। लेकिन काम से नाम ज्यादा हुआ है। बाबा जब बिहार

छोड़कर चले, तो वहाँ का काम १६ आदमियों के एक सर्वोदय-मंडल पर सौंपा गया। आज २७ अलग-अलग संस्थाएँ काम कर रही हैं, उन सबका एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध सर्वोदय-मंडल के द्वारा होता है। ये संस्थाएँ सर्वोदय-मंडल से मार्ग-दर्शन और प्रेरणा पाती हैं। रचनात्मक संस्थाओं के करीब ६ हजार कार्यकर्ता है। इनमें से ८ हजार खादी के काम में लगे हैं। लगभग ३०० गाँवों में भी खादी का काम होता है। २७ गाँवों में ८० प्रतिशत लोग खादीधारी हैं। इस प्रकार बिहार में रचनात्मक कार्य की परंपरा है। और बाबा के काम के लिए बहुत कुछ अनुकूल वातावरण है। सारा कार्य हम लोग एक मुख्य व्यक्ति के इर्दगिर्द रहकर किया करते थे। हमारी सारी प्रवृत्तियों का वह व्यक्ति एक तरह से केन्द्र था। बिहार का वह प्रमुख आदमी, लक्ष्मीबाबू चला गया। उसके बाद अब बिहार क्या करेगा, यह जानने की इच्छा बाबा को होगी। बिहारवालों को उन्हें यह आश्वासन देना चाहिए कि लक्ष्मीबाबू जो काम छोड़ गये हैं, उसे हम और अधिक तेजी से आगे बढ़ायेंगे। उनकी तरह हम भी बारी-बारी से टोलियाँ बनाकर बैलगाडी में खादी, ग्रामोद्योगी सामान और सर्वोदय-साहित्य रखकर पदयात्रा करते रहेंगे। जहाँ पर लक्ष्मीबाबू की पदयात्रा खतम हुई, वहीं से उसका सिलसिला आगे बढ़ाया जाय। दरभंगा जिले को हमें ग्रामदान के लिए तैयार करना है। बाबा कहते हैं कि अगर दरभंगा जिले में ग्रामदान की तैयारी होगी, तो मैं एक साल बाद वहाँ आ सकता हूँ। ग्रामदान की तैयारी का आरंभ हम ग्राम-संकल्प से करें। ग्राम-ग्राम में ग्राम-संकल्प करायें। लक्ष्मीबाबू की अरथी को जब मैंने अपने कंधे पर उठाया, तब मन ही मन कहा, 'आज तुम्हारे शरीर को उठा रहा हूँ, तुम्हारे काम को भी उठा लूँगा।' इससे अधिक क्या कहूँ ?

प्यारेलालजी (दिल्ली):

[मैं यहाँ निहायत मजबूरी से आपके सामने हाजिर हुआ हूँ। क्योंकि विनोबाजी का यह आदेश था। वर्ना मैं ऐसी सभाओं के सामने खड़ा होकर या बैठकर बोलने से कोसों दूर भागता हूँ। ऐसा मेरा स्वभाव है। ऐसी मेरी आदत है। मैं बहुत अनुग्रह मानता हूँ कि मुझे बैठे-बैठे ही बोलने की इजाजत दे दी है, जिससे कि मैं ज्यादा बेचैनी अनुभव न करूँ। मुझे यह आदेश हुआ है कि बापूजी के जीवन की

अन्तिम कला (Last phase) की थोड़ी-सी झाकी, आपको देकर उनके ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की ओर, आज कल जो हम यहाँ काम कर रहे हैं उसका ट्रस्टीशिप के साथ क्या सम्बन्ध है और इसमे जो चीजें निकलती हैं, उसकी मै थोडी-सी रूपरेखा आप लोगों के सामने रख दूँ।]

आप सबको यह तो पता ही होगा कि जब बापूजी नोवाखाली में गये थे १९४६ की अक्टोबर मे, तो अपने साथियों को वे वही छोड गये थे और खुद विहार गये, विहार से दिल्ली आये और जैसे आये, तो फिर वहाँ से कही जा ही नहीं सके। किन्तु १९४६ के दिसम्बर मे उनकी यह आज्ञा हुई कि मै वहाँ से फिर दिल्ली में आऊँ, क्योंकि वहुत-सी चीजे ऐसी थीं, जिनके लिए मेरा आना उनको जरूरी लगा। उस वक्त जो मैंने उनका दर्शन किया, जो मुझे उनको झाकी हुई, उससे तो मुझे भवभूति की वह चीज याद आ जाती थी, जहाँ उसने कहा है कि राम ने जो कुछ वोया, वह मानो दु ख सहन करने के लिए और वेदना का अनुभव करने के लिए ही बोया हो।

मतलव यह कि जिसका नाम राम था याने जो सारे जगत् को आनन्द देने-वाला था, उसने आनन्द की जो सामग्री पैदा की, वह अपने दु ख सहने से ही की। सुख-दु ख सहन किया और औरो को आनन्द दिया। उसी तरह उस वक्त वापूजी की जो हालत थी, वह आदमी देख करके सहन न कर सके ऐसी हालत थी। क्योंकि वहुत-सी आशाएँ जिनका जन्मभर सेवन किया था, जिसके लिए कोशिश की थी, वे ऐसी लगने लग गयी थी कि निष्फल हो रही है। याने हिन्दुस्तान का बँटवारा हो चुका था—उनकी इच्छा से नही, उनकी अनिच्छा से। उसका हमे साक्षी वनना पडा। तो भी उन्होंने आशा नहीं छोडी और कह दिया कि भले ही देश के टुकडे हो गये हो, मगर दिल के टुकडे न हो। इसी तरह से जो बहुत-सी चीजें उनके आसपास होती थीं, वे उनसे सही नही जाती थीं। लोग पागल की तरह भाई-भाई का गला काटने लगे और जिस देश मे वीस साल तक अहिंसा की तालीम दी गयी थी, वहाँ की जनता जंगली जानवरों की तरह व्यवहार करने लगी। उस पर से वापू इस परिणाम पर आये कि हमने जिम चीज को अहिंसा समझा था, वह अमल मे अहिमा नही थी, वह एक किस्म का डरपोकपन हो था। याने कि वह एक

प्रकार का नि शस्त्र प्रतिकार हमने उस हालत में स्वीकार किया था, जब कि हमारे पास शस्त्र नहीं थे। क्योंकि अगर हमने इस चीज को महसूस किया होता कि अहिंसा मजबूरी की चीज नहीं है, बल्कि वह एक महान् और प्रचंड शक्ति है, तो हम यह भी अनुभव करते कि प्रचंड शक्ति का अर्थ यह है कि वह सब किस्म की बाधाओं को और रुकावटों को दूर कर सकती है। जब हमारा आपस-आपस में झगड़ा हुआ, तो हम उस प्रचंड शक्ति को छोड करके फिर हिंसा का सहारा नहीं लेते। मगर चूंकि इस शक्ति का हमको पूरा-पूरा अनुभव नहीं हुआ था, इसलिए हमारी अहिंसा नपुंसक की अहिंसा ही रही।

तो गाधीजी के सामने यह सवाल पैदा हुआ कि इस कमजोर अहिंसा को बलवान् अहिंसा में कैसे परिवर्तित किया जाय। इसका वे उपाय सोचते थे। उसी तरह से उनके जो पुराने साथी थे, वे उनकी नीति के रखवाले हुआ करते थे। लेकिन जब राजतत्र मे गये, तो राजनीति को बनानेवाले और उसको चलाने-वाले बन गये। तब तो सवाल यह हुआ कि इन रखवालो की रखवाली कौन करेगा? बापूजी अपने साथियों की मजबूरी को भी देखते थे, क्योंकि राजतत्र तो एक मशीन है। उसका अपना एक स्वभाव होता है, उसकी अपनी प्रकृति होती है। उसकी अपनी मर्यादा होती है। इसलिए बापू ने सोचा कि राज्य इस मसले को हल नहीं कर सकता। अहिंसा की सच्ची शक्ति तो सत्ता हाथ में लिए बिना अहिंसा के मार्ग पर चलने से ही प्राप्त हो सकती है। सत्ताधारी अहिंसा को अच्छी चीज तो मानते थे, मगर अपने काम की चीज नहीं मानते थे। तब सवाल यह हुआ कि किस तरह सत्ताधारियों का बोझ हल्का किया जा सके और अहिंसा का रास्ता सुगम बनाया जा सके।

इसके दो ही उपाय थे। एक तो जनता की छिपी हुई अहिंसक शक्ति को सगठित किया जाय और दूसरे राज्यसत्ता को सारे देश का यथार्थ प्रतिनिधि बनाया जाय, जिससे उसे हिंसा का उपयोग करने का मौका कम-से-कम आये। इस सिल-सिले में यह भी सवाल हुआ कि राज्यसत्ता को नौकरशाही के शिकंजे से कैसे छुड़ाया जाय? तब गाधीजी इस नतीजे पर पहुँचे कि कांग्रेस को नया रूप दिया जाय ताकि वह अपना सामाजिक-क्रान्ति का कार्य करती रहेगी और राज्यसत्ता को भी प्रभावित करती रहेगी, इससे लोगों में एक नैतिक शक्ति पैदा होगी।

नवजीवन ने जब रचनात्मक कार्यक्रम के विषय में गाधीजी की किताब दुवारा प्रकाशित की, तो उससे पहले उस पुस्तक के लिए उन्होंने गाधीजी से प्रस्तावना मागी। तब गाधीजी ने कहा "मैंने जब वह पुस्तिका लिखी थी, उस वक्त मैंने रचनात्मक कार्यक्रम का प्रतिपादन स्वराज्य-प्राप्ति के साधन के रूप में किया था। मैंने कहा था कि यही हमारा जो रचनात्मक कार्यक्रम है, वह स्वतत्रता-प्राप्ति का साधन बन सकता है। मगर अब जमाना बदल गया है, परिस्थिति बदल गयी है। अब मुझे यही दिखाना है कि वही रचनात्मक कार्यक्रम सामाजिक-क्राति का साधन हो सकता है। याने आजादी हासिल करके जो हम उसमें से चीज बनाना चाहते थे, उसकी प्राप्ति के लिए और आजादी के टिकाने के लिए हम उन्हा साधनो का उपयोग किस तरह कर सकते हैं, यह मुझे दिखाना है। इसके लिए मुझे एक नयी प्रस्तावना लिखनी पडेगी। मगर इन चीजों को गाधीजी उठा सकें, आगे बढ़ा सकें, इससे पहले ईश्वर ने उन्हे अपने पास बुला लिया।

उनके जाने के वक्त एक युग खत्म हो गया था, दूसरे युग ने अभी जन्म नहीं लिया था, इनके बीच में एक ऐसा समय आ गया था जब कि चारों तरफ परेशानी थी, चारों तरफ लोगों के दिलो में घबराहट थी और कोई रास्ता नहीं दिखाई देता था। दिङ्मूढ़ हो करके सब लोग चक्कर में पडे हुए थे। और बहुत घोर निराशा, खास तौर पर नवयुवकों के अन्दर फैली हुई थी। क्योंकि जो आशाएँ आजादी से लोगों ने रखी थीं, वे आशाएँ सफल होती हुई नहीं दिखाई देती थी। इस चीज का जिक्र बापूजी ने अपने निर्वाण के चार दिन पहले ही एक अपने लिखित भाषण में किया था और कहा था कि जब आजादी हमारे पास नही आयी थी, जब हम उसे दूर से देखते थे, तब वह सुहावनी दिखाई देती थी। अब जब कि वह हमारे सामने आकर खडी हुई है, जब हमने उसे अपनी ऑखों से देखा है, हाथों से टटोलकर देखा है, तब हमें उससे निराशा होती है। कम-से-कम मुझे तो होती है, चाहे आपको हो या न हो। अपनी निराशा के उन्होने दो कारण दिए थे कि क्या आज ऐसा समय आ गया है कि जब छोटे-से-छोटा आदमी, देहात का आदमी, बिना पढ़ा-लिखा आदमी भी यह महसूस करे कि मैं खुद अपने भाग्य का विधाता बन सकता हूँ। क्या मुझे ऐसा लगता है कि मैं अपनी कोशिश से अपने भविष्य का

निर्माण कर सकता हूँ ? कहाँ है वह खादी ? कहाँ है वह अहिसा ? और कहाँ है वह सब रचनात्मक कार्यक्रम ? जिसमे यह परिणाम हम हासिल कर सके ? ये सब चीजे उनके दिल मे भरी हुई थीं। तो इस तरह बहुत दफा इतिहास ने आँका है कि हम जो ध्येय लेकर निकलते हैं, वह ध्येय जब हमे प्राप्त होता है, तो उसका कुछ और ही स्वरूप हमें दिखाई देता है। उस स्वरूप को, जिसकी कि हमने पहले कल्पना की थी, देखने की हमारी आशा सफल नही होती। हम मायूस हो जाते हैं। जिस हेतु के लिए हमने प्रयत्न शुरू किया था, उसे किसी दूसरे नाम से, अन्य लोग दूसरे तरीके से हासिल करना चाहते हैं। आखिर हम उस जगह पर पहुँचते हैं, जिस जगह से हमने चलना शुरू किया था और सही रास्ता अलग रह जाता है। दूसरे तरीकों से चाहे कुछ भी किसी किस्म की चीज बनी हो, लेकिन गाधीजी के जाने के बाद हिन्दुस्तान उजाड़ हो गया। याने जो हेतु वे सिद्ध करना चाहते थे, वह हेतु सिद्ध करने का रास्ता हमने छोड दिया। पूज्य विनोबाजी ने अब वही रास्ता हमारे देश के सामने रख दिया है और इसमें से फिर आशा की किरणें फैलने लगी।

उस इतिहास मे इस वक्त जाने की जरूरत नहीं है कि किस तरह से विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ शुरू किया। मगर मै आपको इतना ही कहूँगा कि इस आन्दोलन की भूमिका और उसका मूल आधार बापू का वही सिद्धात है, जिसे वे ट्रस्टीशिप का सिद्धात कहते थे।

हिंदुस्तान में भारी-से-भारी एक बुनियादी मसला था। जमीन के बँटवारे का। याने जो गरीब प्रजा है, जिनके पास कोई परिश्रम के द्वारा अपने पालन-पोषण का साधन नहीं है, उनके पास ऐसा साधन पहुँचाना, जिससे कि वे अपनी मेहनत से अपने प्राणों को टिका सकें और जिन्दगी का निर्वाह कर सके। ऐसा हमारे पास रास्ता नही था और जब तक कि ऐसा मूल सुधार नही होता, बाकी सब सुधार फिजूल हो जाते हैं ऐसा सब महसूस करते थे। लेकिन जमीन के इन्तजाम के सुधार का कोई रास्ता सूझता नहीं था। उसके लिए तीन रास्ते हो सकते थे। एक तो यह है कि जब्त करके सबकी जमीन जबर्दस्ती से ले लें। लेकिन इस तरह की जबर्दस्ती मे दोधारी तलवार होती है। अगर एक तरफ से नही चलती है, तो दूसरी तरफ से चला सकते है।

उससे हमारा काम नहीं होता था। दूसरा तरीका यह था कि हम कानून के जरिये कर सकते थे। लेकिन कानून तभी सफल होता है, जब कि वह सारी प्रजा को मान्य हो, उसकी जरूरत सारी प्रजा महसूस करती हो। फिर वह कानून प्रजामत के ऊपर आखिरी मुहर लगा दे न कि उसके पीछे बगैर बेकग्राउण्ड के, बगैर पूर्वपीठिका के कुछ कर सके। और एक रास्ता यह भी हो सकता था कि सारी जमीनों को खरीद लिया जाय। लेकिन उसके लिए जितना धन चाहिए, वह हमारे पास नहीं था।

ये तीनों रास्ते गाधीजी के विचार के माफिक नहीं हैं। आखिर में एक ही रास्ता बच जाता है, टस्टीशिप के सिद्धान्त का। ट्रस्टीशिप का आधार यह है कि प्रकृति मे जितनी चीजें पैदा हुई हैं, वे सब किसी खास आदमी की मिल्कियत नहीं हैं। किसी खास आदमी की धन-दौलत नहीं हैं। इतना ही नहीं, खरे आदमियों की मिलकर भी वह मिल्कियत नहीं है। वह ईश्वर की है, इसवास्ते केवल ईश्वर के काम के लिए ही हमें उनका उपयोग करने का, भोग करने का अधिकार है। जैसे कि ईशोपनिषद् में कहा है कि "ईशावास्यम् इद सर्वम् यत्किंचित् जगत्या जगत्", तो उसको हम ईश्वर को समर्पण करके फिर ईश्वर की इच्छा से, सेवा के लिए उपयोग करें, तब तो वह वाजवी उपयोग है। अगर उसका कोई दूसरा उपयोग करते हैं, तो वह एक तरह की चोरी है। और न केवल धनसपत्ति, बल्कि आदमी के पास जो कुछ बुद्धि है या ज्ञान है, वह भी एक सामाजिक प्रणाली का ही परिणाम है, इसलिए उसका उपयोग भी हम अपने स्वार्थ के लिए नहीं, किन्तु जनता की सेवा के लिए ही करे। उस सेवा के लिए अपने आपको योग्य रखने के लिए जितना आवश्यक हो, उतने का ही हमको अधिकार है। बाकी पर अधिकार नहीं है। अगर हम ऐसा करें, तो सारे समाज का दारिद्र्य दूर हो सकता है और हमारी भी उन्नति हो सकती है। यह ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का मूल है। तो इस सिद्धान्त के अमल के लिए हमने भूदान मागना शुरू किया। और लोगों से कहा कि देखो भाई, यह भगवान् की बनायी हुई चीज है, इसलिए आप यह समझिये कि सभी भूमि गोपाल की है। इसलिए ईश्वर की प्रजा के ही लिए इसका इस्तेमाल किया जाय।

ट्रस्टीशिप के सिद्धात की बारीकियों में तो नहीं उतरूँगा, बल्कि तीन चीजें

कहूँगा। इसके अन्दर क्या चीज आती है, क्या चीज नहीं आती है। ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के अन्दर दो चीजें आ जाती हैं—उसमें से एक चीज यह है कि जब सारे-के-सारे लोग इसके लिए तैयार हो जायँ, तब सारे देश की समाज-रचना में पूर्ण अहिंसा दाखिल हो जाती है। यानी पूर्ण रूप से अहिंसक प्रजातन्त्र कायम हो जाता है।

जहाँ तक शासन है, इसके अन्दर हिंसा का कुछ अंग रह ही जाता है। जहाँ पर बहुत बड़े बहुमत से जिसे "ओवर ह्वेल्मिंग मेजारिटी" कहते हैं, कानून बनता है। उसके लिए यह दावा किया जाता है कि जनता उसके साथ है, तो उस कानून का जनता अपने-आप अमल क्यों नहीं करती? दण्ड के भरोसे क्यों उसका अमल कराया जाता है? ज्यादातर लोग जिस कानून को चाहते हैं और मानते हैं उसका अमल भी सत्ता के भरोसे कराना जरूरी हो जाता है। उसमें दण्ड का हिस्सा न हो, तो भी कुछ-न-कुछ दबाव आ ही जाता है। फिर भी इस आन्दोलन में कानून के लिए कोई स्थान ही न हो, यह चीज नहीं है। ज्यादा लोकमत तैयार हो जाय और जमीन का बन्दोबस्त लोग अपने-आप कर लें तो भी वैधानिक स्वत्वों का, कानूनी हकों का सवाल रह जाता है। एक आदमी गुजर गया, तो उसकी जमीन का वारिस कौन होगा, उसका फैसला करने का अधिकार जनता को भले ही हो, लेकिन उसके लिए कुछ नियम होंगे, कानून होंगे। इस तरह जनमत बन जाय, तो कानून का अमल अधिक हो जाता है और उसमें दण्ड का हिस्सा बहुत ही कम रह जाता है।

दूसरी चीज यह पूछी जाती है कि यह 'ट्रस्टीशिप' की तजवीज मालकियत को खत्म करने के लिए है या जारी रखने के लिए? बात यह है कि 'ट्रस्टीशिप' में मालकियत की भावना ही नहीं आती। 'ट्रस्टी' अपने को ट्रस्टी मानता है, मालिक नहीं मानता। जो चीज उसे आज तक के चालू कानून से मिली है, उसका वह अपने को मालिक समझकर उसे बिगाड़ता नहीं, बरबाद नहीं करता। आज के कानून से हर आदमी को अपनी जायदाद का इस्तेमाल करने का हक है। सिर्फ शर्त इतनी ही है कि वह इस तरह से इस्तेमाल करे, जिससे उसके पड़ोसी का नुकसान न हो। इसलिए 'ट्रस्टीशिप' में आज के कानून की दी हुई मालकियत

तो आ जाती है। मगर यह चीज ट्रस्टी के लिए गौण है। मालकियत का स्थान उसके लिए द्वितीय है, गौण है। वह तो यह मानता है कि यह चीज मुझे विरासत मे मिली है, इसका मैं वारिस इसलिए हूँ कि इसमें जो स्वार्थी अश है, उसे निकाल दूँ, इसका उपभोग अपने लिए नहीं औरों के लिए करूँ। जब वह यह मानता है, तो मालकियत का आधार बिलकुल ढह जाता है। इसी तरह जब सब लोग मिलकर जमीन के और सम्पत्ति के 'ट्रस्टी' बन जाते हैं, तो किसी की मालकियत नहीं रह जाती। तब भौतिक सम्पत्ति का, प्राकृतिक साधनों का, बुद्धि और ज्ञान का उपयोग हम अपने लिए नहीं करते। ये चीजें ईश्वर की हैं, यह समझकर उनका उपयोग समाज की सेवा के लिए करते हैं। जब लोकमत इस तरह तैयार हो जाता है, तब आईन में भी वह चीज आ ही जाती है। तो, विनोबाजी ने अपने भूदान और ग्रामदान मे 'ट्रस्टीशिप' का रास्ता खोल दिया है। ग्रामदान में और ट्रस्टीशिप मे कोई विरोध नहीं है। बल्कि ट्रस्टीशिप का ही यह मूल है, परिणाम है।

तीसरी चीज ट्रस्टीशिप में आती है कि सबलोग मिलकर जो कमायें और हासिल करें, उसके भी वे अपने को मालिक न मानें। एक तरह से यह सामुदायिक ट्रस्टीशिप हो जाती है। ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की यह आखिरी सीढ़ी है। वह भूदान से शुरू हुई, ग्रामदान उसका अन्तिम रूप है। हमको यह समझना चाहिए कि ग्रामदान ने हमारे लिए वह चीज हासिल करने के रास्ते खुले कर दिये हैं, जो बापूजी ने हमारे सामने रखे थे। एक मालदार इनसान के पास आज जो बहुत-सी चीजें देखने मे आती है, वे सारी चीजें अकेले मे और अकेले के भरोसे हासिल नहीं की जा सकती हैं। दूसरों के साथ मिलकर ये सब चीजें हम हासिल करते हैं। मगर, चीजों को पैदा करने के बाद जब हम अकेले उनको इस्तेमाल करना चाहते हैं, तब आपस मे राग-द्वेष प्रकट होते हैं। फिर चीजें पैदा करने में काम करनेवाले को दिलचस्पी नहीं होती। काम सब करें और काम के फल का उपभोग थोड़े से इनसान करें, तो काम करनेवाले का दिल काम में नहीं लगता। फिर उत्पत्ति को बढ़ाने मे उसे कोई रुचि नहीं होती। इसलिए अगर हम जमीन की पैदावार को बढ़ाना चाहते हैं, तो जो लोग जमीन पर मेहनत करते हैं उनका उस पैदावार में बराबरी का हिस्सा होना चाहिए। जमीन का अपने को कोई मालिक नहीं समझेगा। सभी मेहनत मे शामिल होंगे और सबकी मेहनत के फल के अपने को ट्रस्टी समझेंगे।

लेकिन जमीन की उत्पत्ति को बढ़ाने का अनाज की उपज बढ़ाना सिर्फ एक पहलू है। आप सब लोग यह जानते हैं कि अकेली जमीन की काश्त से किसी समाज का गुजारा नही होता है। जगत् में कहीं भी इस तरह किसी जनता का गुजारा नही हुआ है। समाज की गुजर-बसर अगर हमको करनी है, तो उसके लिए ग्रामोद्योग भी चाहिए। ग्रामोद्योग चलाने के लिए खेती मे कच्चे माल की पैदावार करनी होगी। इस तरह खेती और उद्योग का एक-दूसरे के साथ नजदीक का रिश्ता होना चाहिए। धरती की उत्पादन-शक्ति को बढ़ाने के इस तरह ये दो पहलू हैं। सबसे पहले तो धरती के उत्पादन से लोगों का पोषण करना होगा। उत्पादन ऐसा करना होगा, जिससे कि लोगों की प्राणशक्ति बढ़े। ऐसा न हो कि प्राणशक्ति को खर्च करके हम उत्पादन बढ़ावे और प्राणशक्ति क्षीण होती जाय। प्राणशक्ति कम होगी, तो उत्पादन-शक्ति भी नहीं रहेगी।

और एक पहलू है, इस सामुदायिक ट्रस्टीशिप का। हम आजकल के बाजार-भावों के फन्दे से, सस्ते और महँगे के जाल से बचना चाहते हैं। हम यह चाहते हैं कि लोगों को अपनी आर्थिक व्यवस्था पर पूरा-का-पूरा काबू हासिल हो। उसके लिए यह निहायत जरूरी हो जाता है कि जहाँ हमारी बहुत-सी चीजे पैदा होती हैं, वहाँ आपस मे जिन्सो का बदला हो। यह न हो कि पहले चीजो को रुपये में बदले और रुपयों को फिर चीजों में बदलें। क्योकि रुपये का कोई ठिकाना ही नहीं है। उसकी तो हालत ग्वाले के माप जैसी है। कभी वह बढ़ता है, कभी वह घटता है। इसलिए जहाँ तक हो सके, चीजों को पैसे मे बदलने की कोशिश न की जाय। दूसरी तरह की कमाई करनेवालों से उनकी कमाई का एक हिस्सा जिस तरह हम समाज के लिए माँगते है, उसी तरह से खेती की उपज का भी एक हिस्सा गाँव के लोगों के लिए लिया जाय। इस तरह गाँव की कर-व्यवस्था (Tax system) मे भी बड़ा परिवर्तन होगा। हमको यह नही भूलना चाहिए कि सिर्फ मिल्कियत को मिटा देना हमारा अंतिम ध्येय नहीं है। वह तो एक जरिया है। हमारा ध्येय है, मनुष्यो के जीवन को ऊँचा उठाना। यह धनशक्ति को बढ़ाने से नही होगा, प्राणशक्ति को बढ़ाने से होगा। हमे धनशक्ति का उत्पादन नही करना है, प्राणशक्ति का उत्पादन करना है। जीवन का उच्च स्तर 'कैपिटल फरमेशन' (धन से धन पैदा करने) से नही सिद्ध होगा। प्राणशक्ति जितनी बढ़ेगी उतना जीवन ऊपर उठेगा।

आजकल सब जगह यह शिकायत हो रही है कि शहरों की बस्ती बहुत जल्दी से बढ़ रही है। और इसी तरह वह बेतहाशा बढ़ती जायगी, तो शहर के लोगों के लिए अधिक खाद्य-पदार्थों की जरूरत पड़ेगी। ये सारे खाद्य-पदार्थ आयेंगे गाँवों से। इन खाद्य-पदार्थों के दाम शहर कैसे देगा? इसका एक ही उपाय है उन लोगों की राय मे कि शहरों की सेवाएँ, आर्थिक सेवाएँ, जिन्हे वे 'सोशल सर्विसेस' कहते हैं देहातों को खरीदनी होंगी। अगर यह चीज हम करने लगें, तो फिर देहातो के लिए जो 'सेल्फ सफिशियन्सी' की बात कही जाती है, वह देहातों की आत्म-निर्भरता हवा हो जायगी। देहात से शहरों की तरफ लोक-सख्या का जो बहाव बढ़ता जा रहा है वह और भी तेजी से बढेगा। हमको इस चीज का बहुत गौर से विचार करना होगा। शहर की तरफ इस दौड को कैसे अटकाया जा सकता है? मैं समझता हूँ, इसका एकमात्र यह उपाय है कि देहातों के अन्दर जितने सहायक धन्धे (आक्सीलियरी इडस्ट्रीज) हम पैदा कर सकते हैं उतने पैदा करे। देहात में ऐसी हालत पैदा करें कि वहाँ के लोगों को अपने जीवन की सामान्य जरूरतों के लिए देहात छोड़कर शहर में न जाना पडे। इस सामान्य आवश्यकताओं मे 'एलिमेंटरी' जरूरतें (प्राथमिक आवश्यकताएँ) और 'कल्चरल रिक्वैरमेंट्स' (सास्कृतिक आवश्यकताएँ) शामिल हैं।

जब हम अपनी जेब मे, खीसे में पैसा डालें, तो पहले यह देख लेना होता है कि हमारी जेब में छेद तो नहीं है। फटी हुई जेब में कोई पैसा नही डालता। हमारे देहातों की दरिद्रता का एक कारण यह है कि देहातो की जेबे फटी हुई हैं। उनमे से पैसा निकल जाता है। यह पैसा तीन तरह से निकलता है। एक तो सरकारी लगान की शक्ल में। दूसरे बाहर से जो माल आता है, उसके दाम के रूप में। और तीसरे शहर से जो सेवाएँ आती हैं, उनकी कीमत के रूप मे। इन तीनों चीजों का प्रमाण अगर हम कम-से-कम कर सकें, इनसे अपने बचाव का प्रबन्ध भली प्रकार से कर सकें, तो सरकार की भी भारी-से-भारी मदद हम कर सकेंगे। इस तरह की व्यवस्था से हमारे देश में एक अहिंसक बल पैदा हो सकेगा। सरकार को दूसरे देशों से अपना सरक्षण करने के लिए अगर फौज रखनी भी पडे, तो भी 'इंटरनल सेक्यूरिटी' (आन्तरिक सुरक्षा) के लिए वह जो रुपया खर्च करती है, वह कम-से-कम देहातों में उसे नहीं करना पडेगा। देहात के लोग

अपने झगडे आपस मे निपटा ले, तो अदालतों का खर्च भी बहुत कम हो सकता है। इस तरह दड और सुरक्षा पर जो खर्च होता है, उसमें बहुत बडी बचत हम कर सकते। और जैसा कि मैंने कहा, देहात अगर काचन मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, तो सरकार को बाहर के 'एक्सचेंज' के लिए (मुद्रा विनिमय) जो बहुत-सा रुपया चाहिए, उसके लिए भी हम बहुत बचा सकते हैं। ग्राम-सकल्प का जो आन्दोलन चल रहा है, उसे सरकार की तरफ से पूरा-पूरा सहयोग मिलना चाहिए। अगर वह सहयोग मिला, तो हमारा रास्ता बहुत सीधा, सरल हो सकता है। राज्यतन्त्र की बहुत-सी मुश्किलें हल हो सकती हैं। हमारे देश को जीवन-शक्ति और समृद्धि फिर से बढ़ सकती है। और वह तस्वीर जो कि बापूजी ने हमारे सामने खडी कर दी थी, हमारे जीवन की सचाई हो सकती है।

वल्लभस्वामी :

जैसा कि आप लोग जानते हैं, कल सवेरे ८ से ११-३० बजे तक इसी सम्मेलन-मडप मे भिन्न-भिन्न विषयों पर सम्वादात्मक चर्चा-मडलों की बैठकें हुई। उनका वृत्तान्त उन चर्चा-मडलों के सयोजक आपको सुनायेंगे और हरएक चर्चा-मडल के विषय मे दूसरे एक व्यक्ति का भाषण होगा। सबसे पहले श्री नारायण देसाई 'सत्याग्रह विषय के चर्चा-मडल की रिपोर्ट सुनायेंगे और दादा धर्माधिकारी उस विषय में भाषण देंगे।

नारायण देसाई (गुजरात) :

कल विभिन्न चर्चा-मडल करीब साढे तीन घटे तक बैठे थे। उनमे से 'सत्याग्रह' चर्चा-मडल मे सबसे अधिक सख्या थी। समय भी कुछ अधिक लग गया। व्याख्याताओं की संख्या भी सबसे अधिक रहा। इसीलिए उसकी रिपोर्ट सबसे छोटी है। उस चर्चा-मडल की कार्य-पद्धति अपने मे सत्याग्रही प्रक्रिया का प्रयोग साबित हुई। अध्यक्ष श्री दादा धर्माधिकारी ने शुरु मे ही कह दिया कि किसी भी वक्ता पर समय की कोई पाबन्दी नही होगी, विचार के लिए कौन से प्रश्न लिये जायें, इस सम्बन्ध मे अपने-अपने सुझाव पेश करने के लिए सभी उपस्थित व्यक्तियों को निमन्त्रित किया गया। इस प्रकार पहले प्रश्न निर्धारित किये गये और बाद में भाषण हुए। कुल १७ प्रश्न निश्चित किये गये। उन पर

कोई पचास वक्ता बोले। अध्यक्ष ने पहले ही कह दिया था कि समय की किसी पर कोई पावन्दी नही होगी। हर वक्ता भापण करते समय दूसरों का खयाल रखेगा। उसके वाद अगर समय वचेगा, तो मैं कुछ कहूँगा। नहीं तो भिन्न-भिन्न वक्ताओं के भापण ही पर्याप्त समझे जायँगे। भाषा के बारे मे भी अनाग्रह ही रहा। अध्यक्ष ने कहा कि जिसकी बुद्धि में आग्रह न हो, वही सत्याग्रही वन सकता है। अधिकतर भापण हिन्दी मे हुए, लेकिन जो लोग हिन्दी या अंग्रेजी मे भापण नहीं कर सकते थे, वे अपनी-अपनी मातृ-भाषा मे बोले। फिर भी मजा यह है कि इतने सारे वक्ता दो घंटे के भीतर बोले, सबने अपने-आप पर काबू रखा, कोई अप्रस्तुत वात नहीं कही गयी। सारे भापण विचारयुक्त और जिम्मेवारी के साथ किये गये। सवने मिलकर अध्यक्ष के लिए समय वचा लिया। हर विपय पर निर्णय होना तो असभव ही था, परन्तु विचारों की स्पष्टता अवश्य हो जाती थी और वक्ता का अपना समाधान तो होता ही था। उदाहरणार्थ, मनमोहन चौधरी ने अपने भापण में सत्याग्रह के परिणाम के दो पहलू वतलाये। एक तो वह जो दूसरे पर होता है और दूसरा वह जो अपने ऊपर होता है। अपने ऊपर जो परिणाम होता है वह हमको ऊपर उठाता है, इसलिए उसका महत्त्व अधिक है। नमूने के तौर पर मैंने यह एक उदाहरण दिया। इसी प्रकार मौलिक विचार करने की वृत्ति दूसरे कुछ वक्ताओं ने भी वतलायी।

दादा धर्माधिकारी :

सत्याग्रह के बारे में कल जो हम लोगो की परिचर्चात्मक विचारगोष्ठी हुई, उसका थोडा-सा हाल नारायण ने अभी आप लोगो को सुनाया। सबसे पहली वात जो उस विचारगोष्ठी के बारे में कही गयी और जो मेरे मन में है, वह यह है कि सत्याग्रह मे दिमागो का मेल [illegible]म बैठे, टकराव नही। मेरा दिमाग आपके दिमाग की शान और ताकत वढाने मे भी आता है और आपका दिमाग मेरे दिमाग की वक्त और कूवत बढाता है। इस[illegible] जहाँ बौद्धिक सहयोग होता है, दिमागो का आपस मे मिलाप होता है और टक्कर नहीं होती, वहाँ सत्याग्रह के लिए मुआफिक हवा पैदा होती है। इसके लिए जरूरत इस वात की है कि हमारी विचारगोष्ठियों मे दलीलो का दगल न हो। जो लोग चर्चा मे हिस्सा लेते हैं, वे

एक-दूसरे के दिमागों की इज्जत करें। हमारे पास जो विचार है, उसे अदब के साथ सबके सामने रखें, फिर उसके खिलाफ जो कुछ कहा जाय उसे बड़ी इज्जत के साथ सुनें, समझे और उसकी कद्र करे। जहाँ दूसरों की बात की कद्र होती है, वहाँ दिमागों की आजादी पनपती है।

रोमन कैथलिक पंथ के ईसाइयों मे एक बड़े मार्के का रिवाज है। वह इनकी एक धार्मिक रस्म है। पोप की तरफ से जब कभी किसी शख्स को संत का खिताब देना होता है, तो उसके लिए एक खास विधि और समारोह किया जाता है। रोमन कैथलिक चर्च का एक खास अधिकारी होता है, जिसे 'एडवकेटस्‌डया बोली' (डे विल्स एडवोकेट) या सैतान का वकील कहते है। उसको यह काम सौंपा जाता है कि जिस शख्स को संत की पदवी बख्शी जानेवाली हो, उसके खिलाफ कोई एतराज पेश करने हो तो वह करे। अब तो महज रस्म रह गयी है, लेकिन उसके पीछे एक बहुत बड़ा उसूल छिपा हुआ है। भगवान् का बन्दा किसीको करार देना हो, तो उसे खिताब देने से पहले सैतान की उज्रदारियाँ जरूर सुन लेनी चाहिए। उसकी भी बात की सुनवाई और कद्र होनी चाहिए। लोकतत्र का एक बहुत अहम् उसूल इस विधि में छिपा हुआ है। सत्याग्रह का भरोसा समझाने और समझने की तरकीब पर होता है। उसमे इश्तेहारबाजी नही होती है। दलीलों की आतिशबाजियाँ नही होतीं। विचार-फरोशी नहीं होती। खुशामदखोरी नहीं होती। अपनी बात समझाने की लगन होती है, दूसरे की बात समझने की तैयारी होती है। दूसरे की बात समझ मे आ जाय, तो तसल्ली और खुशी होती है। इसे हमने दिमागों के मेल का वायुमडल कहा। ऐसी आबोहवा देश मे जब तक पैदा नहीं होगी, सत्याग्रह के विकास के लिए मौका नही होगा। आज सत्याग्रही का सबसे बड़ा फर्ज यह है कि वह इस तरह की हवा पैदा करे।

सत्याग्रह जिन्दगी का एक तरीका है और समाज को बदलने की एक तरकीब भी है। इसलिए वह अपने में एक दर्शन बन गया है। आप लोग जो इस सम्मेलन में इकट्ठे हुए हैं, उन सबसे मेरी दरख्वास्त यह है कि आप यह हरगिज न भूलें कि हमारा पहला काम, हमारा असली काम आज के समाज की बुनियादों को बदलना है। इन्सान को सिर्फ सुखी बनाना हमारा काम नहीं है। इन्सान को

जिन्दगी की सारी नियामतें मुहैया करा देना, उसके लिए आराम और चैन का सारा सामान चारों तरफ से लाकर जुटा देना हमारा असली काम नहीं है। जिन्दगी की जो नियामतें और आराम का जो सामान इन्सान चाहता है, उन नियामतों को और उस सामान को वनाने और कमाने का मौका उसे हो, उसके औजार उसे मिलें, यह हमारा असली काम है। इस असली काम को अगर हम भूल जायेंगे, तो इन्सान को आराम देने के इन्तजाम में आप खो जायेंगे। आपकी क्रांति कल्याणकारी राज्यवाद मे डूब जायगी और ऐसी गहरी डूबेगी कि थाह नहीं लगेगी। इसलिए मैं खासतौर से अर्ज करना चाहता हूँ कि हमारा मकसद और हमारी मन्शा मौजूदा समाज की बुनियादों को वदलना है।

आज के समाज में ऐसी कौन-सी चीजें हैं, जो इन्सान की इन्सानियत को पनपने नहीं देती, इन्सानियत की तरक्की में रुकावट करती हैं। ऐसी तीन चीजें हैं जिनका जिक्र मैं कई वार कर चुका हूँ। लेकिन इस सम्मेलन के मच पर से मैं करीव-करीव पहली वार वोल रहा हूँ। इसलिए एक मर्तवा और दुहरा देता हूँ। इन्सानियत की तरक्की मे रुकावट डालनेवाली तीन ताकतें हैं। तख्त, तिजोरी और तलवार। इनकी हैसियत जव समाज से मिट जायगी, तव इन्सान की हैसियत वढ़ेगी। आज के समाज मे कौन-सी बुनियादी खरावी है? जिन्दगी की नियामतें, जिन्दगी की जरूरत की चीजें, उन चीजों को वनाने के औजार और इन्सान की मेहनत पर उसका कब्जा हो जाता है, जो उसे खरीद सकता है। आप इसे पूँजीवाद कह लीजिये या और कोई वाद कह लीजिये। हमको पेड गिनने से मतलव नहीं है, हमको आम खाने से मतलव है। हम इतना जानते हैं कि जिस समाज में इन्सान की मेहनत, जिन्दगी की जरूरत की चीजें और चीजें वनाने के औजार खरीदनेवाला खरीद सकता है, उस समाज की बुनियादों को ही हम वदल देना चाहते हैं। क्योंकि उस समाज मे लोकतन्त्र पर भी पैसे की हुकूमत होती है। वह डालर डिमाक्रसी, अशर्फियों की जमहूरियत होती है।

सवाल हमारे सामने यह था—क्या लोकतन्त्र मे, जमहूरी सल्तनत में सत्याग्रह के लिए कोई जगह और मौका हो सकता है? हम लोग इस नतीजे पर पहुँचे—लोकतन्त्र की इज्जत का सवसे वडा और आखिरी सहारा सत्याग्रह ही हो सकता है। सत्याग्रह के विना लोकतंत्र ठहर नहीं सकता, फल-फूल नहीं सकता। इसलिए

इस मंच पर से बहुत अदब के साथ इस देश की सारी राजनैतिक पार्टियों के सामने दामन पसारकर दरख्वास्त करना चाहता हूँ कि अगर दरअसल आप चाहते हैं कि इस देश में लोकशाही की बुनियादें पुख्ता हों, लोकशाही फूले और फले, तो उसके लिए सबसे जरूरी बात यह है कि इस देश मे आप नागरिक के लिए इज्जत और आजादी के साथ जीने के लिए हवा पैदा करें। मैं सारी राजनैतिक पार्टियों से यह कह रहा हूँ, उस पार्टी से भी जो हुकूमत पर सवार है और उन पार्टियों से भी जो कि हुकूमत की उम्मीदवार हैं। आज समाज में दो फिरके हो गये हैं। एक तो वह है, जिसका दौलत पर अख्तियार है और दूसरा वह है, जो दौलत का उम्मीदवार है। एक अपनी मालकियत को महफूज रखने की फिक्र में है, दूसरा मालकियत हासिल करने की फिराक में है। उसी तरह से आज एक पार्टी हुकूमत पर दखलयाव है और दूसरी हुकूमत के लिए उम्मीदवार है। उन दोनों से मैं यह दरख्वास्त कर रहा हूँ। जिनका सल्तनत पर दखल है, उनसे मेरी यह दरख्वास्त है कि अमन कायम रखने के लिए वे फौज और पुलिस से काम लेने के मौके कम-से-कम आने दें। और आइन्दा यह कोशिश करें कि ऐसे मौके बिलकुल ही न आयें। इस बात का अहद सारे सत्ताधारियों को कर लेना चाहिए। यह नहीं—तुम ईंट नहीं फेंकोगे, ढेलेबाजी और पत्थरबाजी नहीं करोगे, तो हम गोली नहीं चलायेंगे। यह बात तो कोई मतलब नहीं रखती। कोई यों ही गोली नहीं चलाता। यहाँ कोई डायर और ओडायर की सन्तान नहीं है। गोली तब चलती है, जब भीड़ मतवाली होकर या जोश के नशे में आकर ढेलेबाजी करने लगती है। प्रतिज्ञा यह हो कि जब लोगों की भीड़ मतवाली हो जाय, अपने आपे से बाहर हो जाय, तब भी गोली नहीं चलेगी। और अगर मजबूरी की हालत में चलानी ही पड़ी, तो फौरन अपने-आप गोलीकाण्ड की जाँच कायम हो जायगी। इस देश के शासक और सत्ताधारी गांधीजी के नाम-लेवा हैं। अगर वे ऐसा संकल्प नहीं करते, तो यहाँ लोकशाही नहीं ठहर सकेगी। इसमें कोई ठहराऊ तत्त्व नहीं रह जायगा।

लोकशाही की बुनियादों को ही शुद्ध करने का आज हमारा कार्यक्रम होना चाहिए। आज सबसे बड़ा विधायक सत्याग्रह यही है। अफसोस की बात है कि आज यह मान लिया गया है कि जिनके हाथ में हुकूमत और कानून है, उनके लिए सत्याग्रह की कोई जरूरत ही नहीं है। हुकूमत तो उनकी है, जो बहुमत में हैं

और बहुमत में वे लोग हैं, जिनको लोगों ने चुना है, पसद किया है। तो, अब क्या लोग अपने ही खिलाफ सत्याग्रह करेंगे? क्या स्वस्कधारोहण हो सकता है? कोई अपने ही कन्धे पर चढ सकता है? वेतुकी बात है।

इसमें एक बहुत बडा विचार दोष है। दुनिया के सारे मतदाता मिलकर भी एकमत से जिन्दगी के उन उसूलों को पैरों तले नहीं कुचल सकते, जो समाज की बुनियाद में हैं। Aunanimous vote of all parliament or an unanimous vote in a referendum of the whole people. दुनिया की सारी ससदों का एकमत और समूचे लोक-समुदाय का सार्व-मत भी समाज-जीवन के बुनियादी उसूलों का उल्लघन नहीं कर सकता। यह लोकशाही का प्रधान संकल्प है। एक मशहूर राज्यशास्त्रवेत्ता ने इसे 'पब्लिक फिलासफी' कहा है। इस लोक-दर्शन का विरोध, इस लोक-मर्यादा का उल्लघन सारे लोगों के एकमत से भी नहीं हो सकता है। लोगों की इस आत्म-मर्यादा के लक्षण के लिए मैंने पहली माग उन लोगों से की है, जिनके हाथों में सल्तनत की बागडोर है।

लोकात्मा की मर्यादा के रक्षण के लिए दूसरी माग इन लोगों से करता हूँ, जो नागरिक स्वतन्त्रता की दुहाई देते हैं, जिनमें से एक मैं भी हूँ। पुराने ग्रीस में किसीने सुकरात से पूछा था—तेरी आजादी की बुनियाद कहाँ है? क्या तेरी आजादी का आधार यह राज नहीं है, जिस राज मे तू रहता है? सुकरात ने कहा—मेरी आजादी की बुनियाद मेरी अपनी काबिलियत में है। तेरी काबिलियत किस ीज में है? मेरे भीतर दो सुकरात हैं। एक सुकरात हैवान है, दूसरा सुकरात इन्सान है। उस हैवान पर इन्सान का जिस हद तक काबू चलता है, उस हद तक मेरी आजादी रहती है। यही मेरी आजादी का बुनियाद है। नागरिक स्वतन्त्रता की और लोक-राज्य की बुनियाद क्या है? अपने आपको काबू मे रखने की और अपने पडोसी की शान सम्हालने की हमारी ताकत में है। जगन्नाथन्‌जी के मुँह से आपने सुना और बापू के वक्त का आप सबको अनुभव है कि जब कभी हिन्दू-मुसलमानों के दगे फूट पडते थे या उसी तरह की दूसरी वारदातें हो जाती थीं, तो बापू अपने सत्याग्रह को थोडे दिनों के लिए रोक देते थे। कहते थे सत्याग्रह के लिए हवा नहीं है। जहाँ नागरिक एक-दूसरे को सँभाल नहीं सकते, जहाँ एक-दूसरे का मुकाबला करने का हथियार ही सत्याग्रह बन जाता है, वहाँ सत्याग्रह सार्वत्रिक नहीं

हो पाता। लोकशाही का अधिष्ठान, उसका अंतिम आधार, उसका आखिरी सहारा फौज और पुलिस के हथियार न हो, बल्कि नागरिक की आत्म-मर्यादा हो। इन्सान का ईमान हो। यह अगर आप मानते है, तो दूसरे की शान को सँभालना और अपनी ईमान को सँभालना हर नागरिक का फर्ज हो जाता है। मै अपने भाई का पासदार और रखवाला बनूँगा। उस पर निगरानी रखनेवाला नम्बरदार नहीं बनूँगा। मै अपने पडोसी का विश्वासपात्र दरबान बनूँगा। उसके खिलाफ जासूस या मुखबिर नहीं बनूँगा। यह आजादी का सूत्र है। आजादी की कीमत निरंतर जागरूकता है। लेकिन किसके खिलाफ जागरूकता? क्या मै अपने पड़ोसी के खिलाफ चौकीदारी करूँगा?

एक शख्स दूसरे एक शख्स के घर रातभर सोया। मेहमान सवेरे उठकर जब चलने लगा, तो यजमान ने कहा—हम आपका बहुत अहसान मानते है। रातभर आप हमारे घर सोये, फिर भी घर मे आग न लगायी। जवाब में मेहमान ने कहा—हम भी आपका बहुत-बहुत निहोरा मानते हैं। हम रातभर आपके मकान मे सोये, फिर भी आपने हमारा गला नहीं काटा। इस तरह उनका एक-दूसरे को धन्यवाद देने का कार्यक्रम हुआ। क्या इस बुनियाद पर कोई स्नेह सम्बन्ध रह सकते है? यहाँ शासन-मुक्ति की बात आती है। शासन-मुक्ति का मतलब यह है कि एक नागरिक और दूसरे नागरिक के व्यवहार मे उनके आपस के ताल्लुकात मे कानून और अदालत का दखल कम-से-कम हो। लोग पूछते है कि क्या ऐसा भी कोई दिन आयेगा, जब राज्य नहीं होगा? इसका जवाब तो ज्योतिषी ही दे सकेगा। इस तरह के आखिरी सवाल सिर्फ दलील के लिए किये जाते हैं। टॉल्स्टॉय ने जब ब्रह्मचर्य की हिमायत की, तो उससे पूछा गया कि सभी लोग ब्रह्मचारी हो जायेगे, तो मानव-जाति का क्या होगा? जवाब में टॉल्स्टॉय ने पूछा था—वैज्ञानिकों के कहने के मुताबिक जिस दिन यह सारी पृथ्वी ठंडी हो जायगी, उस दिन जीवों का क्या होगा? आज हम इतनी दूर की न सोचे। क्या कोई दिन ऐसा आयगा, जब शासन ही न होगा? इस सवाल को फिलहाल छोड़ दीजिये। आज हमारी इतनी ही दरख्वास्त है कि सत्याग्रह के लिए मुआफिक हवा अगर पैदा करनी है, तो नागरिकों का जो एक-दूसरे के साथ व्यवहार होता है, उसमें कानून और अदालत का हिस्सा कम-से-कम हो। माँ और बेटा, बाप और बेटी,

और आप मेरे खिलाफ सत्याग्रह करेंगे ? सत्याग्रह किसीको गिराता नहीं है। वह दोनों को उठाता है। यही उसकी खूबी है। वह किसी के खिलाफ नहीं होता। दोनों के हक में होता है। हमारे एक मित्र अपनी बात हमसे मनवाना चाहते थे। उनकी बात हमारे दिमाग में खपती नहीं थी। उन्होंने हमारे खिलाफ उपवास शुरू कर दिया। उनके उपवास से हमें बहुत दर्द होता था। लेकिन उन्होंने कहा कि मैं तुम लोगों के हृदय-परिवर्तन के लिए उपवास कर रहा हूँ। हमने पूछा, इससे आपका अपना भी हृदय-परिवर्तन होगा ? उन्होंने बड़ी ईमानदारी के साथ कहा कि मुझे इस बात का तो होश ही नहीं रहा कि मेरा अपना भी कोई दिल है। उसे भी टटोलने और बदलने की जरूरत है। सत्याग्रह के उन्माद में दूसरे का दिल बदलने की धुन हम पर इतनी सवार हो जाती है, उसमें हम इतने खो जाते हैं कि हमारे अपने दिल का कोई ठौर-ठिकाना ही नहीं रह जाता है।

सर्वोदय को मानने या न मानने का यह सवाल नहीं है। जो लोग लोकशाही में विश्वास करते हैं, वे सब इतना तो चाहते ही हैं कि तिजोरी की इज्जत न रहे। लेकिन साथ-साथ वे यह भी चाहते हैं कि तलवार का रुतबा न रहे। यहाँ हमारी समाज-रचना का दूसरा उसूल आ जाता है। हम सिर्फ ऐसा समाज नहीं चाहते, जिसमें खरीदनेवाले की मालकियत न होगी, वरन् ऐसा समाज भी चाहते हैं कि जिसमें छीननेवाले की भी मालकियत न होगी, तिजोरी की गद्दी पर तलवार नहीं बैठेगी। कुछ लोगों का यह कहना है कि तख्त और तलवार के सहारे से हम तिजोरी की इज्जत समाज से मिटा देंगे। हम यह भूलते हैं कि उस हालत में इज्जत तख्त और तलवार की होगी, इन्सान का रुतबा नहीं बढ़ेगा। एक दफा अगर छीननेवाले की इज्जत कायम हो गयी, एक की पैनी तलवार अगर चल गयी, तो छीना-झपटी का सिलसिला शुरू हो जायगा और उसकी कोई इन्तिहा नहीं रहेगी। बुद्ध, महावीर, ईसा और गांधी की बात मैं नहीं दुहरा रहा हूँ। मैं तो स्वतन्त्रता प्रिय नागरिक की बात आपके सामने रख रहा हूँ। मैं नहीं चाहता कि मेरी कोई ताकत या शिफत नीलाम में खरीदी जा सके या जोर-जबरदस्ती की होड में छीनी जा सके। हम खरीदनेवाले की मालकियत नहीं चाहते, हम छीननेवाले की भी मालकियत नहीं चाहते, ऐसी हवा देश में पैदा होनी चाहिए। लोकतन्त्र के लिए यही प्राणवायु है।

हम यह वातावरण सत्ता और संविधान के द्वारा, आईन और कानून की मार्फत नहीं बनाना चाहते। हमें कानून में कोई एतराज नहीं, कोई परहेज नहीं। लेकिन कानून हमारे अपने परस्पर संबंधों पर मुहर लगाने के लिए हो। उनका दायमी रूप देने के लिए हो। हमारे परस्पर संबंधों का आधार अगर कानून होगा, तो कानूनबाजी और अदालतबाजी बढ़ेगी। हमारे पारस्परिक संबंध औपचारिक होंगे। हार्दिक नहीं होंगे। मनुष्यों के संबंध जहाँ औपचारिक होते हैं, हार्दिक नहीं होते, वहाँ तीन दोष पैदा होते हैं। संविधानवाद, संस्थावाद और संप्रदायवाद। जयप्रकाश जब तक हमारी पार्टी के मेम्बर हैं, तब तक साथी जयप्रकाश हैं, जिस दिन पार्टी छोड़ देते हैं, तो क्या गैरसाथी बन जाते हैं? यह संस्थात्मक संबंध है। यह औपचारिक नातेदारी है। हमको मनुष्यों के बीच औपचारिक नातेदारियों की जगह जाब्ते की रिश्तेदारियों की जगह हार्दिक संबंध कायम करने हैं। दिल को दिल से जोड़ना है। नागरिकता भी काफी नहीं है, क्योंकि वह संविधानात्मक भूमिका है। इन्सान की कानूनी हैसियत है। हमको नागरिकता से मानवता की तरफ कदम बढ़ाना है। राज्यवाद, संस्थावाद और संप्रदायवाद इस जमाने के कफ-वात पित्त हैं। कभी एक का दौर होता है, कभी दूसरे का, कभी तीसरे का। अब खतरा यह है कि कहीं तीनों का दौर एक साथ न हो। लोकतंत्र को इस सन्निपात से बचाने के लिए आज कोई-न-कोई इलाज करने की जरूरत है। सारी पार्टियों को साथ मिलकर आज सच्चे दिल से इस सन्निपात का इलाज करने में जुट जाना चाहिए।

पूछा जाता है कि क्या पार्टियाँ नहीं होंगी, तो लोकशाही जीवित रह सकेगी? यह तो अपने-अपने बुद्धियुक्त विश्वास का सवाल है। छुटपन में जब मैंने अछूतों के साथ भोजन करना शुरू किया, तो हमारे दादा ने पूछा कि आखिर तेरा इरादा क्या है? मैंने कहा—जात-पाँत मिटाना चाहता हूँ। वे हैरान रह गये। कहने लगे—बगैर जाति के समाज का जीना नामुमकिन है। हमारे दादा-परदादा के उत्तराधिकारी आज कहते हैं कि पार्टियाँ नहीं होंगी तो लोकशाही ही नहीं रहेगी। हर जमाने की अपनी एक दकियानूसी रहम होती है। यह एक तरह का आधुनिक पुराणवादित्व है। लेकिन इस बहस को जाने दीजिये। मान लीजिये कि पार्टियाँ बरकरार रहेंगी। लेकिन जो मेरी पार्टी में है वही मेरा भाई है, जो पार्टी से बाहर है वह मेरा भाई नहीं है, जो पार्टी में है उसीका यकीन कर सकता हूँ, जो पार्टी

से बाहर है उस पर यकीन नहीं कर सकता—इस संकीर्णता से तो ऊपर उठना ही होगा। सत्याग्रह का तरीका पक्षगत संकीर्णताओं से पार्टीबाजी की तंगदिली से ऊपर उठने का उपाय है। इसी दृष्टि से मैंने जान-बूझकर आज आपके सामने सत्याग्रह की कोई व्याख्या नही की। सत्याग्रह के कितने रूप हो सकते हैं? उसका अधिकारी कौन है? इसका भी विवेचन नहीं किया। लोकतन्त्र के संरक्षण के लिए आज जिस विधायक सत्याग्रह की आवश्यकता है, उसका कुछ प्रत्यक्ष व्यावहारिक कार्यक्रम आपके सामने पेश किया है।

सत्याग्रह का जो प्रतीकारात्मक पहलू है, उसके लिए कब अवसर होता है? उसके कितने विविध अंग और स्वरूप हो सकते हैं? उसका अधिकारी कौन हो सकता है? यह सारा गांधीजी ने हमको पहले ही बतलाया है। विनोबा भी समय-समय पर उसका विवेचन करते रहते हैं। आज तो मैं सिर्फ आप लोगों के सामने इतनी ही बात रखना चाहता था कि हम एक ऐसी समाज-रचना कायम करना चाहते हैं, जिसमे किसी इन्सान पर अपनी मेहनत बेचने की नौबत नहीं आयगी। किसी इन्सान को दूसरे इन्सान की मेहनत खरीदने का मौका नहीं मिलेगा। हम चाहते हैं कि एक ऐसा समाज बने, जिसमें कोई इन्सान किसी दूसरे इन्सान की मेहनत जबरदस्ती से छीन नहीं सकेगा और छल-प्रपंच से हड़प नहीं सकेगा। हम चाहते हैं कि एक ऐसा समाज बने, जिसमें हर इन्सान दूसरे इन्सान की हिफाजत करेगा। इन्सानों के आपस के ताल्लुकात में कानून और अदालत की तादाद कम-से-कम होगी। ऐसे समाज की बुनियादें डालने का काम महात्मा गांधी जैसे लोकोत्तर पुरुष के बाद एक अदना आदमी कर रहा है, जिसका नाम विनोबा है। हम नहीं जानते कि आगे आनेवाली अनोखी और आलीशान इमारत कौन बनायेगा? उसमें पच्चीकारी और दुलकारी के लिए जड़ाऊ पत्थरों की जगह कौन लेगा? हम इतना ही जानते हैं कि यह शख्स जो नीव खोद रहा है, उसमें आड़े-टेढ़े और खुरदरे सभी तरह के पत्थरों की जरूरत है। अगर हम इतने ही खुशनसीब हो जाते हैं कि उस बुनियाद के ऐसे पत्थर बनें, तो आगे का रास्ता साफ हो जाता है। आगे का रास्ता रोशन हो जाता है। तब उस पर जो लोकात्मा का सुन्दर प्रासाद बनेगा, वह कहीं भव्य, कहीं सुन्दर और कहीं मंगलमय होगा।

आशादेवी (सेवाग्राम) :

शान्ति-सेना के विषय मे जो अध्ययन गोष्ठी हुई, उसकी चर्चा का साराश मैं आपको सुनाऊँगी और श्री शकररावजी का उस विषय पर भाषण होगा। इस अध्ययन-गोष्ठी का अनुभव आनन्दमय रहा। समय की मर्यादा तो रखी गयी थी, परतु सबने अनुशासन माना। किसी निर्णय पर तो पहुँचना नहीं था, शान्ति-सेना की कल्पना और कार्यपद्धति का विश्लेषण करना था। चर्चा मे बहुत-से प्रश्न उठे। जिन प्रश्नों के उत्तर गाधीजी या विनोबा के साहित्य में आये हैं, उन प्रश्नो को छोड दिया गया। बचे हुए प्रश्नों के विषय मे यह नियम रखा गया कि जिन्होंने सोचा है वे ही बोलें। नमूने के तौर पर कुछ प्रश्न प्रस्तुत करती हूँ (१) शान्ति-सैनिक कौन बन सकता है? (२) शान्ति-सैनिक के परिवार का निर्वाह कैसे होगा? (३) शान्ति-सैनिक के प्रशिक्षण का क्या प्रबन्ध होगा? (४) शान्ति-सैनिक का सरकारी तत्र से क्या सम्बन्ध होगा?

१ इस विषय में यह प्रश्न हुआ कि गृहस्थाश्रमी बहनें शाति-सैनिक बन सकती हैं या नहीं? उत्तर मे यह कहा गया कि गृहिणियाँ तो एक तरह से शाति-सैनिक है ही। माताओं का मातृत्व परिवार तक परिमित है, वह व्यापक बने। वे ग्राम-परिवार की माताएँ बनें। एक भाई की राय रही कि सिर्फ वानप्रस्थी ही शान्ति-सैनिक बनें। अधिकतर की राय यही रही कि विद्यार्थी याने ब्रह्मचारी और गृहस्थ सभी स्त्री-पुरुष शान्ति-सैनिक बन सकते हैं।

२ इस प्रश्न के दो पहलुओं पर विचार हुआ। एक तो शान्ति-सैनिक की जीवनचर्या और दूसरा उसका निर्वाह। सबकी यह राय रही कि शान्ति-सैनिक की जीवनचर्या निरन्तर सेवामय हो। सादगी, युक्ताहार-विहार और नियमितता उसकी दिनचर्या में प्रकट हो। शान्ति-सैनिक का जीवन एक धार्मिक अनुष्ठान ही है। इसलिए वह अपने निर्वाह की चिन्ता ईश्वर पर छोड़कर धर्माचरण करता रहे। समाज अपने सच्चे सेवक को पहचानता है। वह उसकी परीक्षा करेगा, पर उपेक्षा नहीं कर सकता। शान्ति-सैनिक नित्य उत्पादक परिश्रम करे और समाज के लिए भार रूप न बने।

३. प्रशिक्षण का विचार करने के लिए एक समिति बनायी गयी है। वह

अपनी योजना बना रही है। बापू और बाबा के साहित्य से योजना बनाने में काफी मदद मिली है। इस सम्बन्ध में एक सुझाव यह आया कि प्रशिक्षण के लिए व्यक्ति के बजाय परिवार को इकाई माना जाय। समाज-धर्म मे सहधर्माचरण का बहुत महत्त्व है। शांति-सेना के काम में पति-पत्नी का सहयोग चाहिए। शांति-सेना कारुण्य पर प्रतिष्ठित है। परिवार का आधार भी स्नेह और कारुण्य है। इसलिए शांति-सेना के लिए पारिवारिक प्रयत्न आवश्यक है। शान्ति-सैनिक के लिए विज्ञान का अध्ययन भी आवश्यक है। उसके बिना वह सामाजिक समस्याओं को और अशान्ति के कारणों को भलीभाँति समझ नहीं सकेगा। इसके अतिरिक्त कुछ प्रत्यक्ष दैनिक कार्यक्रम की भी आवश्यकता रहेगी। सशस्त्र सेनाओं में अनुशासन के लिए क्वायद, मार्चिङ्ग आदि कार्यक्रम होते हैं, उसी प्रकार सहयोगात्मक अनुशासन शान्ति-सेना में आवश्यक होगा। इसके लिए कुछ योजनाएँ बनानी होंगी। थोडा बहुत प्राथमिक चिकित्सा और उपचारों का ज्ञान भी उसे प्राप्त करना होगा। साराश, शान्ति-सैनिक एक सुबुद्ध और सभ्य सेवक रहेगा।

अन्त मे श्री टेवर भाई ने कहा, "भय और लोभ ही सारे अनर्थ का मूल है। समाज से उन दोनों का निवारण करने के कार्यक्रम ही शान्ति-सैनिक की नित्य जीवनचर्या होनी चाहिए। पीडितों और दु खितों की सेवा का समावेश इसमे हो ही जाता है।" मार्जरी साइक्स ने बाइबिल से एक वचन सुनाया, जिसमे यह बतलाया गया है कि ईश्वर की कृपा और करुणा ही संपूर्ण प्रेम है।

शंकरराव देव :

ग्यारह बजकर पन्द्रह मिनट हो गये हैं। व्याख्यान देने और सुनने के लिए यह समय कोई अनुकूल नहीं है। मराठी मे कहावत है "आधी पोटोवा मग विठोवा।" पहले पेट पूजा, बाद में देव पूजा। इसलिए मैं आपका ज्यादा समय न लूँगा और लेने की आवश्यकता भी नहीं है। पिछले दो साल से मैंने सर्वोदय-सम्मेलन के मंच पर से बोलना बन्द कर दिया था। इस साल भी बोलने का मेरा इरादा नहीं था। लेकिन कल की विचारगोष्ठी मे शान्ति-सेना के बारे मे जो सवाल-जवाब हुए, उन्हे सुनने के बाद मुझे अन्दर से लगा कि न बोलने में कर्तव्यच्युति होगी। इसलिए केवल कर्तव्य-पालन की दृष्टि से चन्द मिनटों में इस विषय में मैं अपने विचार आपके सामने रखूँगा।

सबसे पहले मुझे यह कह देना चाहिए कि शान्तिसेना और शान्ति-सैनिक यह शब्द-समुच्चय मेरे मन में कोई अनुकूल और उत्साहकारक भावना या प्रतिक्रिया पैदा नहीं करता। मुझे भय लगता है कि इस प्रयोग में से कोई ऐसी चीज न खड़ी हो जाय, जो हमारे लक्ष्य की पूर्ति में रुकावट बन जाय। गांधीजी की यह विशेषता थी कि अपने साध्य की सिद्धि के लिए वे जिन साधनों का इस्तेमाल करते थे, उन साधनों में और उनके साध्य में संगति होती थी। बल्कि हम यह कह सकते हैं कि वे साध्य से साधन को ज्यादा महत्त्व देते थे। वे मानते थे कि अगर साधन सही है, तो साध्य के विषय में किसी तरह की चिन्ता या डर की आवश्यकता नहीं होगी। अब हमारा साध्य क्या है? हमारा साध्य यह है कि हम एक ऐसा समाज कायम करना चाहते हैं, जिसमें वर्ग नहीं होंगे और हमारे देश की विशेष परिस्थिति में जाति भी नहीं होगी। वह वर्गहीन और जातिहीन समाज होगा। एक बात उसमें यह होगी कि कोई किसीका शोषण नहीं करेगा और ऐसा कोई खास वर्ग, कोई खास जमात या जाति नहीं होगी कि जो अपने को लोक-समाज से अलग समझकर दूसरों पर किसी रूप में, किसी नाम से, किसी तरह की हुकूमत चलायेगी। चाहे फिर वह हुकूमत आध्यात्मिक हो, नैतिक हो, सामाजिक हो या आर्थिक हो। केवल आर्थिक क्षेत्र में ही शोषण होता है, ऐसी बात नहीं है। जीवन के जितने भिन्न-भिन्न क्षेत्र हैं, अंग हैं, उन सबमें शोषण होता है, होता आया है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में जिसे मैं अपना सुख या लाभ मानता हूँ उसकी प्राप्ति के लिए जब मैं किसी दूसरे का उपयोग कर लेता हूँ, तो समझना चाहिए कि मैं एक शोषक हूँ। शोषणविहीन समाज वह समाज है कि जिसमें किसी एक वर्ग, जाति या जमात की हुकूमत और मालकियत नहीं है। ऐसा एक लोक-समाज हम कायम करना चाहते हैं। मैं लोकसमाज शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। लोकराज्य कहने में मुझे कुछ झिझक होती है।

जिस लोक-समाज का निर्माण हम करना चाहते हैं, उस समाज की सारी व्यवस्था का आधार सारे समाज की शक्ति होगी। हम उस समाज के लिए कोई चीज कितनी ही अच्छी क्यों न समझें, उसे बाहर से लादने की कोशिश कभी नहीं करेंगे। अपने हित और कल्याण की जो आकांक्षा लोगों के भीतर होगी, उसकी पूर्ति के लिए लोग स्वयं कोशिश करेंगे। याने उस लोक-समाज की व्यवस्था का

अनुवन्ध लोक-शक्ति के साथ रहेगा। इसलिए जब हम लोक-रक्षण का विचार करते हैं, तो लोक-रक्षण का हमारा जो साधन होगा, जो तरीका होगा वह भी ऐसा होना चाहिए कि जिसका लोक-शक्ति के साथ अनुवन्ध हो। हमने यह माना है कि लोक-राज्य या लोकसमाज के संरक्षण का प्रत्यक्ष अनुवन्ध लोकशक्ति के साथ तभी होगा, जब कि लोग अपना संरक्षण शस्त्र और हिंसा से नहीं करेंगे, अहिंसा और प्रेम से ही करेंगे। गाधीजी ने जो ग्रामस्वराज्य का चित्र हमारे सामने रखा है, उसका आधार भी अहिंसात्मक स्वसरक्षण है।

अभी आचार्य दादा धर्माधिकारी ने सत्याग्रह की वात कहते हुए वहुत सुन्दर ढग से यह चीज आपके सामने रखी। उन्होंने सत्य और आग्रह को अलग-अलग करके समझाया और मानवता को नागरिकता से अलग करके दिखाया। सत्याग्रह का सारा सिद्धात इन्सानियत के स्तर पर आपके सामने उन्होंने पेश किया। सत्याग्रही कौन हो सकता है? शान्ति सैनिक कौन हो सकता है? यह सवाल जब उठते हैं, तो सवाल करनेवाले मानते हैं और सवाल का जवाब देनेवाले भी समझते हैं कि आज शाति-सैनिक कोई भी नहीं हो सकता। क्योंकि उसके लिए जो शर्तें हैं, जो प्रतिज्ञाएँ हैं, जो नियम हैं, जो व्रत हैं, उनका पालन तो वे करना नहीं चाहते। इसलिए वे उसमे दाखिल नहीं हो सकते और वह चीज वन नही पाती। इसलिए जव हम शातिमय और अहिसात्मक रक्षण की वात करते हैं, तो हमें लोगों को इतना ही समझा देना चाहिए कि यह आपकी चीज है। यह आपकी आवश्यकता। यह आपकी जिम्मेवारी है। शाति-सैनिक के लिए हम कोई नियम, व्रत और शर्तें रखते हैं, तो जो लोग अहिंसात्मक संरक्षण में विश्वास करते हुए भी हमारे व्रतों, नियमों और प्रतिज्ञाओं का स्वीकार नहीं कर सकते, वे शाति-सेना से वाहर रह जाते हैं। और फिर उन शर्तों का, उन प्रतिज्ञाओं का और उन नियमों का पालन करनेवाला सैनिकों का एक वर्ग वन जाता है। मैं चाहता हूँ कि शाति-सेना के सिलसिले मे हम ऐसा कोई वर्ग खडा न करें। केवल व्यापक लोक-शिक्षण ही हमारा आधार हो। हम किसी तरह की शर्तें न रखें। लोगों को समझायें कि यह काम, यह जिम्मेवारी आपकी है। उस जिम्मेदारी को निवाहने के लिए जो गुण चाहिए, जो माद्दा चाहिए, वह आपके अन्दर मौजूद है। हमारा फर्ज इतना ही है कि उसका भान हम आपको करा दें।

जब ऐसा कोई खास वर्ग, सेवकों का या दूसरे किसी समुदाय का खड़ा हो जाता है, तो उसे कुछ खास हक, कुछ सहूलियतें, कुछ विशेष अधिकार और प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती हैं। इस तरह एक पन्थ या संप्रदाय बन जाता है। दुनिया में आज तक जितने पन्थ और सप्रदाय बने हैं, वे ज्यादातर अच्छे कामों के लिए ही बने हैं। लेकिन जब उन्हें विशेष अधिकार और प्रतिष्ठाएँ प्राप्त होती हैं, तो वे गिर जाती हैं। पिछले तीन हजार साल का धार्मिक क्षेत्र का जो अनुभव है, जिस क्षेत्र को हमने जीवन का ऊँचा क्षेत्र माना है, वह अनुभव भी यही बतलाता है कि धर्म के नाम पर जब कोई एक खास प्रतिष्ठित और अधिकारी वर्ग बन जाता है, तो समाज में यह भावना बन जाती है कि ये लोग हमारा बहुत बड़ा उपकार कर रहे हैं। इसलिए उनके लिए हमें कुछ खास सुविधाएं और विशेष साधन प्राप्त करा देने चाहिए। इस तरह की जो खास सुविधाएं लोगों की तरफ से सेवकों को मिलती हैं, उनमें सबसे बड़ी सहूलियत है योगक्षेम की। आज हम सर्वोदय-पात्र के साथ शांति-सेना का जो सम्बन्ध जोड़ रहे हैं उसमें यही दोष है। दुनिया में धर्मपन्थों को अगर किसी एक विशेषाधिकार ने गिराया है, तो इस योग-क्षेम के विशेषाधिकार ने गिराया है। हम ईश्वर, मोक्ष या निर्वाण के लिए अपने जीवन को समर्पित कर रहे हैं। इसलिए समाज का यह धर्म है, उसका यह कर्तव्य है कि हमारे योग-क्षेम की व्यवस्था वह करे। समाज हजारों बरस से यह मानता आया है कि जो लोग ईश्वर-सिद्धि जैसे बड़े कार्यों में लगे हैं, उनको योग-क्षेम की चिन्ता से मुक्त रखना हमारा काम है।

मैं इस मंच पर से एक चेतावनी दे देना चाहता हूँ। कोई व्यक्ति समाज की चाहे कितनी भी बड़ी सेवा क्यों न कर रहा हो, अपने मन में वह हरगिज ऐसा न समझे कि यह काम समाज के लिए मैं कर रहा हूँ। इसलिए समाज की यह जिम्मेवारी है कि मेरी रोटी का बन्दोबस्त वह करे। इसमें मैं भ्रष्टाचार का बीज देखता हूँ। यह पतन का सबसे बड़ा कारण है। शांति का रक्षण करना किसी एक वर्ग का काम नहीं है। शांति-सैनिक अपने उदाहरण से और अपने जीवन से शांतिमय संरक्षण का शिक्षण देता है। शांति का संरक्षण तो समाज की मूलभूत आवश्यकता है। मानवीय जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है। अगर शांति नहीं होगी, तो रोटी मिलना भी मुश्किल है और मिले, तो खाने की सुविधा नहीं हो सकती। इसीलिए जब अंग्रेजों का राज

आया, तो पुराने लोग कहते थे कि अब कम-से-कम रोटी खाने का मौका तो है। अंग्रेजों के आने से पहले हमारे देश में पक्वान्न और मिष्टान्न भी थे। लेकिन उन्हे खाने के लिए मौका नही मिलता था। सब तरफ उपद्रव ही उपद्रव था।

लेकिन यह तो गुलामी की शाति हुई। स्वतत्र मानवीय जीवन की बुनियाद जो शाति है, उस शाति की स्थापना और सरक्षण एक मनुष्य के लिए कोई दूसरा मनुष्य नहीं करेगा। सारे समाज के लिए कोई एक वर्ग शाति की स्थापना और संरक्षण नहीं करेगा। तब सवाल यह होता है कि अहिंसक संरक्षण का उदाहरण जो लोग पेश करेंगे और लोगों को उनकी रक्षण-शक्ति का भान जो लोग करायेंगे, उनके निर्वाह का क्या साधन होगा? मतलब यह है कि कुछ-न कुछ प्रबन्ध तो होना ही चाहिए। हमारे कुछ मित्रो ने कहा—ऐसा शाति-सैनिक तो ईश्वर निर्भर ही होगा, इसलिए उसको अपने योग-क्षेम की चिन्ता ईश्वर पर छोड देनी चाहिए। परन्तु हम तो सर्वसाधारण मनुष्य को भी शाति-सैनिक बनाना चाहते हैं। ईश्वर मे श्रद्धा तो सभी को रखनी चाहिए। हमको जो रोटी मिलती है वह भगवान् ही देता है। लेकिन रोटी पैदा करने के लिए हमको भी कुछ करना होगा। आखिर ईश्वर देगा तो भी किसी-न-किसीके द्वारा ही देगा। अगर किसी-किसीके परिश्रम से ही हमारा निर्वाह होगा, तो फिर हमारे अपने परिश्रम से ही क्यों न हो एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर अपने योगक्षेम के लिए निर्भर क्यों रहे?

इस विषय मे गाधीजी ने काफी सोचा था। गाधीजी से पहले यह मान्यता थी कि विद्यार्थी जब तक विद्यार्जन करता है, तब तक उसके पिता का और समाज का यह कर्तव्य है कि वे उसके विद्याध्ययन और योगक्षेम का प्रबन्ध करें। विद्यार्थी पर कोई आर्थिक जिम्मेवारी नहीं होगी। लेकिन गाधीजी ने कहा कि जब विद्यार्थी विद्यार्जन करता है उस वक्त उसकी विद्या ही ऐसी होनी चाहिए, जिससे वह अपनी रोटी और कपडे का प्रबन्ध भी अपने परिश्रम से कर सके। इसीको उन्होंने बुनियादी तालीम या नव-शिक्षण कहा था। विद्यार्थी जीवन मे विद्यार्जन करते समय अगर हमें अपनी रोटी अपनी मेहनत से कमानी है, तो फिर गृहस्थ, वानप्रस्थ या सन्यासी बनने पर हमें परिश्रम के अपने औजारों का त्याग करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। सन्यासी बनने पर हम क्या यह कहेंगे कि अब मैं दड-कमडल लूंगा और चरखा फेंक दूंगा? चरखे का नाम मैं एक उदाहरण के लिए ले रहा

हूँ। आजकल के शिक्षण मे ऐसा होता है कि विद्यार्थी दशा मे हम बहुत-सी चीजें करते हैं और सीखते हैं। लेकिन जब स्कूल या कॉलेज के क्षेत्र से निकलकर प्रत्यक्ष जीवन के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तो उनमे से ज्यादातर चीजे निकम्मी समझ-कर प्रेमपूर्वक अपने गुरुजनो को समर्पित कर देते है। परतु गाधीजी की जो बुनियादी तालीम है, वह एक जीवन का दर्शन है। जीविका की एक पद्धति का उसमे दिग्दर्शन है। गाधीजी की विद्यार्थियो से भी यह अपेक्षा है कि विद्यार्जन करते समय वे अपनी जीविका के लिए अपने गुरुजनों पर, माता-पिता पर या समाज पर निर्भर न रहे। वे कहते थे कि शिक्षण स्वावलबी होना चाहिए। इसमें उनका जो मूल विचार है, उसे हमें शाति-सैनिक के लिए भी लागू करना चाहिए। इसलिए समाज मे सेवकों या शिक्षको का कोई वर्ग, कोई दल ऐसा नही होना चाहिए, जो यह कह सके कि मैं जो सेवा-कार्य कर रहा हूँ वह अपने मे इतने महत्त्व का है कि वह मुझे अपनी योगक्षेम की चिन्ता से मुक्त रहने का अधिकार देता है।

अपना सरक्षण अहिंसात्मक पद्धति से करना हर नागरिक का कर्तव्य और अधिकार है। ऐसे समाज मे कौन शाति-सैनिक होगा, और कौन शाति-सैनिक नही होगा? उस समाज में यह नागरिक और यह सैनिक ऐसा भेद थोडे ही रहेगा। हमको आज से ही उस तरफ उस दिशा मे कदम रखने की कोशिश करनी चाहिए। व्रत और प्रतिज्ञाएँ रखकर एक अलग वर्ग नही बनाना चाहिए।

यह मेरा अपना व्यक्तिगत विचार है। हम सेवक या सैनिक के नाते समाज के सामने न जाय। एक इसान के नाते दूसरे इसानों से कहे कि आपकी यह जरूरत है, आपमें यह ताकत है और आपका यह फर्ज है कि आप स्वयं अपना अहिंसात्मक सरक्षण करें। अहिसात्मक सरक्षण ही यथार्थ संरक्षण है। इसमे एक का सरक्षण दूसरा नही कर सकता। हिंसात्मक सरक्षण आत्मनिर्भर नही होता। उसके लिए जो नियम लागू हैं, वे अहिंसात्मक सरक्षण के लिए लागू नहीं होते। दूसरे के द्वारा मेरा जो सरक्षण होता है, वह स्वसरक्षण नही है और वह अहिंसात्मक भी नही है। क्योंकि वहाँ मै अपने सरक्षण के लिए दूसरे का बलिदान करता हूँ। उसमे उसका उद्धार होगा और उसका विकास होगा। परन्तु मेरा पतन होगा।

भोजन जिस प्रकार मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता है, उसी प्रकार शाति की स्थापना भी मानवीय जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है। अन्न का उपार्जन यदि

हर व्यक्ति को अपने परिश्रम से करना चाहिए, तो शाति का संरक्षण भी अपनी सामर्थ्य से करना चाहिए। इस दृष्टि से अहिंसात्मक स्वसंरक्षण हर व्यक्ति की अपनी जिम्मेवारी है। ऐसे समाज मे नागरिक और सैनिक मे कोई अतर नही रहेगा। लेकिन बीच के समय मे अहिंसात्मक संरक्षण का शिक्षण देने के लिए कुछ व्यक्तियों का एक दल या पथक बनाने की आवश्यक्ता हो, तो उसके लिए भी हम ऐसी सहूलियते और विशेष प्रतिष्ठाएँ पैदा न कर दे, जिससे उनका पतन हो। याद रहे, योग-क्षेम का प्रबन्ध सबसे बडी सुविधा है। इसलिए शाति-सैनिक के निर्वाह का सबध सर्वोदय-पात्र के साथ हरगिज नही होना चाहिए।

मैंने इस मच से बोलने का साहस इसलिए किया कि ये चन्द बातें मेरे दिल में एक तूफान-सा मचा रही हैं। मैं मानता हूँ कि शाति की प्रस्थापना मनुष्य का मूलभूत अधिकार नहीं, बल्कि उसका मूलभूत कर्तव्य है। इस कर्तव्य के विषय में लोक-शिक्षण करना जो व्यक्ति अपना धर्म समझता है, उसे भी अपने योग-क्षेम के लिए समाज पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। उसे आत्म-निर्भर ही रहना चाहिए। वह अपने योग-क्षेम का दायित्व किसी दूसरे का न माने। गाधीजी की बुनियादी तालीम में यही आधारभूत तत्त्व है। रोटी के लिए मेहनत के सिद्धात में यही बुनियादी तत्त्व है। इसलिए हमे इस मूल तत्त्व को सामने रखकर ही अपनी सारी तजवीजें बनानी होगी। ये दो चीजें आपकी सेवा में पेश करने की गरज से मैने आपका इतना समय लिया।

● ● ●

तीसरा दिन

रविवार, १ जून १९५८ : तीसरे पहर ३ बजे

(खुला अधिवेशन)

तुलसी मेहेर (नेपाल)

मैंने अपने सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ नेपाल में मद्य-मांस के विरुद्ध प्रचार करने से किया। इस जुर्म के लिए सरकार ने मुझे गिरफ्तार किया और देश निकाले की सजा दी। तब मैं साबरमती जाकर बापू के आश्रम में भर्ती हुआ। मुझे पूनी बनाने का काम सौंपा गया। १९२५ में बापूजी का आशीर्वाद लेकर नेपाल वापस गया। वहाँ से फिर वापस आया और बापूजी के बिहार दौरे में उनके साथ रहा। नेपाल में रूई नहीं होती, इसलिए वहाँ रूई ले जाने की कोशिश की। चुंगी की माफी मिली। परन्तु रूई के दाम देने के लिए मेरे पास पैसे नहीं थे। बापूजी ने पूछा कितने रुपये चाहिए? मैंने कहा, सिर्फ एक बोरी रूई दीजिये। इस एक बोरे रूई के सहारे मैंने खादी का काम शुरू कर दिया, और उसे जनता के जीवन में प्रवेश का साधन बनाकर स्त्री-शिक्षण आदि काम किये। आप लोगों से प्रार्थना है कि नेपाल को छोटा भाई समझकर आप उससे सहयोग करें। लक्ष्मीबाबू से मुझे सहयोग मिलता रहा, आगे भी बिहार से उसी प्रकार सहयोग मिलता रहेगा ऐसी आशा है।

इसके बाद चर्चा-गोष्ठियों की रिपोर्टें सुनायी गयीं।

ठाकुरदास बंग (वर्धा)

आगामी कार्यक्रम क्या हो, इस विषय में सबसे प्रथम सुझाव रहा कि कार्यकर्ताओं की योग्यता बढ़ायी जाय। १९५८ का यह सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम माना जाय। कार्यकर्ताओं का भंडार जनता है। अतः अब उन्हींमें से कार्यकर्ता ढूँढे जायँ। पुराने कार्यकर्ता या तो श्रम-साधना-केन्द्र खोलकर क्षेत्रों में बैठें और इन नये कार्यकर्ताओं के सहायक बनें या जिला, प्रान्त या अखिल भारतीय सेवकत्व

की ओर मुडें और स्थानीय काम इन नये जनता मे से निकले हुए कार्यक्र्ताओं को सौप दे। प्रशिक्षण के लिए शिविरवाले तरीके मे बडे-बड़े नेताओं के भाषणों के वजाय गोष्ठी, परिसंवाद का तरीका हमें अपनाना चाहिए। गोष्ठी में विचारों की सफाई हो, जैसे क्रान्ति यानी क्या, आरोहण का अर्थ क्या इत्यादि। १९५७ में क्राति पूरी नहीं हुई है, लेकिन क्राति का होश लोगो मे आया है। लोग मानने लगे हैं कि जमीन अव रहनेवाली नहीं है। निर्माण मे काम करनेवाले, क्राति मे काम करनेवाले और दफ्तर में काम करनेवाले कार्यक्र्ताओं मे आगे-पीछेवालापन का भेद मिट जाय। क्राति के लिए जो कुछ आवश्यक है, वह काम करनेवाला क्राति-कारी हो। ऐसा है, भले ही वह कोई काम करता हो। अव आदोलन आशिक समय देनेवाले, फुरसत का समय देनेवाले लोग ही चलावें। एतदर्थ दाता-आदाता संमेलन लिये जायँ और उन्हे आरोहण की जानकारी दी जाय। कार्यकर्ताओं के निर्वाह के साथ-साथ उनकी वौद्धिक एव नैतिक योग्यता वढाने के लिए उनके पास हर माह ५ रु० का साहित्य दिया जाय, जिसका नित्य पठन हो। कार्यकर्ताओं के दैनदिन व्यवहार मे सयम रहना चाहिए। हर रोज उन्हे श्रम करना चाहिए। एक सुझाव यह था कि तीन-तीन महीने के कार्यक्र्ताओ के शिविर लिये जायँ। कुछ भाइयों का कहना रहा कि अभी क्राति हुई नहीं, क्राति हुई यह कहना अपने आपको धोखा देना है। हमने येलवाल और सरकार से सहयोग की नीति अपना-कर गलती की है। इससे जनशक्ति कुंठित होगी। इससे हम सरकारी तत्र के yesmen हो जायँगे, यह डर पैदा हो गया है। नये कार्यक्र्ता नहीं आवेंगे और जोश नहीं रहेगा। इसलिए सरकारी तत्र से असहयोग, कर न देना, जमीन पर कब्जा करना, साहुकार, चुनाव, शराव की दुकान, कचहरियों आदि पर वहिष्कार डालने का कार्यक्रम अपनाकर जनशक्ति जाग्रत करनी चाहिए। वुराई से असहयोग का कार्यक्रम अपनाना चाहिए। किसी एक व्यक्ति को या सर्व-सेवा-सघ सरीखी केन्द्रीय संस्था पर पूर्णतया अवलंवित रहना खतरे से भरा हुआ है। हमें कार्यक्र्ताओं के outordinous organisation वनाने चाहिए। आश्रमवासियों के हाथ में आदोलन न सौंपकर जिन्हे जनशक्ति जाग्रत करने का अनुभव है, ऐसे नेताओं पर आदोलन की जिम्मेवारी डालनी चाहिए। इसीसे एक दिन सब मिल्कियत के कागजों की होली करने का कार्यक्रम सपन्न होगा।

कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के साथ दूसरा कार्यक्रम ग्रामदान की प्राप्ति का सुझाया गया। उस विषय में कुछ भाइयों ने यह कहा कि ग्रामदान अब हमें मांगने नहीं चाहिए, बल्कि ग्रामदान की घोषणा के पूर्व वहां का मानस बदलने की पूर्ण तैयारी करनी चाहिए। वैसे ही शोषक और शोषित शब्द हमें निकाल देना चाहिए। यह आरोहण सबका आरोहण है, शोषक एवं शोषित परिस्थिति के कारण है, अत इन शब्दों का उपयोग न करें। एक सुझाव था कि हर प्रान्त के अन्दर आगामी ९ अगस्त से अखंड पदयात्रा चले। एक सुझाव था कि ११ सितंबर से २ अक्तूबर तक सारे देश में सामूहिक पदयात्राएँ गाँवों में चलें। येलवाल में जिन्होंने हस्ताक्षर किये हैं, ऐसे भिन्न-भिन्न पक्षों के नेता मिलकर भारत की यात्रा करें और जगह-जगह अपने-अपने पक्षवालों को इस आंदोलन में हिस्सा लेने में प्रेरित करें, यह एक सुझाव रहा। ग्रामदानी गाँवों के लोग पदयात्राएँ निकालकर दूसरे गाँवों में प्रचार करें। ग्रामदान की भाषा में बात न करते हुए ग्राम-स्वराज्य की भाषा में लोगों से बात की जाय। जहाँ-जहाँ रचनात्मक काम हुआ है, वहाँ-वहाँ ग्रामदान-प्राप्ति का विशेष प्रयत्न किया जाय। ग्रामदान घोषित करने के पूर्व उचित सावधानी बरती जाय। अब हमें क्वालिटी की ओर अधिक ख्याल देना चाहिए। ५ करोड़ भूमि का जो हमारा वचन था, उसे ग्रामदान में उतनी भूमि प्राप्त कर हम पूरा करें और उसके लिए हर प्रान्त में एक तालुकादान प्राप्ति का संकल्प हम यहाँ से लेकर जायँ यह भी एक सुझाव था। जय जगत् नारे का प्रचार हो, क्षेत्र, जिला, प्रांत आदि level पर स्नेह-सम्मेलन हो। पदयात्राओं के पूर्व अच्छी पूर्व तैयारी की जाय। गीत एवं भजन के माध्यम से काम करने पर हम जोर दें। गाँव के सब लोग मिलकर कोई काम करें ऐसा ग्रामसंकल्प का वातावरण और आंदोलन ग्रामदान प्राप्ति के पूर्व चलाया जाय। तीसरा कार्यक्रम ग्रामदान से ग्राम-स्वराज्य की ओर जाने का कार्यक्रम अब हमें हाथ में लेने के बारे में था। इस विषय में एक भाई ने कहा कि ग्राम-स्वराज्य शब्द से गलतफहमी होती है और नगर एवं ग्राम में खाई पड़ती है। अत 'जनस्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया जाय। मिली हुई सारी भूमि फौरन वितरित न की जाय और यह वितरण जनता द्वारा करवाया जाय। यदि कार्यकर्ताओं को बैठना हो, तो वे ग्रामदानी गाँवों में बैठें। हमारे अपने संशोधन-केन्द्र हों जहाँ व्यवस्थित जानकारी इकट्ठा की जाय, तथ्यों का तटस्थ

अध्ययन हो, भिन्न-भिन्न प्रयोगों की सबको व्यवस्थित जानकारी मिले। जो गाँव जिस परिस्थिति में हो, वहीं से उसके विकास की योजना बननी चाहिए। बाहर से साधन लाने के पूर्व जनता में होश रहना चाहिए और वहाँ परिवार-भावना बढ़नी चाहिए। वितरण एव निर्माण की जिम्मेवारी रचनात्मक सस्थाओं पर डाली जाय। हर प्रान्त में एक क्षेत्र में ग्राम-स्वराज्य के लिए शक्ति लगायी जाय यह भी एक सुझाव था।

शहरो मे हमारा बहुत कम काम हुआ है, ऐसा सभी का कहना रहा। अतः अब हम शहरों के काम की ओर अधिक खयाल दें। राष्ट्रीय सप्ताह मे सारे देश में नगर पदयात्राएँ चले यह एक सुझाव था। वॉर्ड-वॉर्ड में शिविर ले, कॉलेज मे एवं नगरों मे सर्वोदय-विचार-केन्द्र कायम करे। बुद्धिजीवियों को शक या घृणा की भावना से न देखें। हमे शहर के मजदूरों मे प्रवेश करना चाहिए, ऐसा कइयों का सुझाव रहा। ग्रामदान का वातावरण गाँवों मे बनाने के मार्ग मे शहरों मे चलनेवाला अल्पकाल यह एक कारण है। अत शहरो मे जोरों से काम किया जाय, इसमे ग्रामदान का वातावरण गाँवों मे फैलाने में बड़ी मदद होगी।

हमारा पाँचवाँ काम शातिसेना रहे। शातिसेना को न्याय का पक्ष, शोषितों का पक्ष लेना चाहिए यह एक सुझाव था। शातिसेना के लिए डायरेक्ट रिक्रुटमेंट न करते हुए हम विचार-प्रचार करें, जिस दिन जिसमे उमंग आवेगी और विचार पक्का होगा, उस दिन वह विनोबाजी को लिख देगा। हम सेवा-टोलियों का सगठन करें, सर्वोदय-पात्र का खूब प्रचार किया जाय, इसके द्वारा हम बहनो में एवं बच्चों में पहुंच सकते हैं। सर्वोदय-पात्र के अन्न का उपयोग केवल कार्यकर्ताओं के (earmarked) न करते हुए भूदान-आरोहण के किसी भी काम मे किया जाय यह एक सुझाव था।

वल्लभस्वामी :

[समय के अभाव मे वल्लभ-स्वामी ने कार्यव्यवस्था (तन्त्रमुक्ति-निधिमुक्ति) विषय के चर्चा-मंडल की रिपोर्ट नहीं सुनायी। वह नीचे दी जा रही है —]

पूर्व सूचना के अनुसार ता० ३१-५-५८ को ८ बजे सुबह से ११ बजे तक "कार्य-व्यवस्था" इस विषय की चर्चा-मडल की बैठक हुई। चर्चा में बोलनेवालों

में मुख्यत बिहार के भाई थे। इसके अलावा उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उडीसा, मैसूर एवं आन्ध्र के भाई बोले।

तन्त्रमुक्ति के बारे मे कुल मिलाकर यह राय दीख पडी कि जो कदम उठाया गया है वह अच्छा है। लेकिन काम की व्यवस्था की दृष्टि से कुछ तन्त्र होना चाहिए और वह नीचे से बनता जाय। गाँव मे गॉवसभा बने। तालुका आदि ऊपर के क्षेत्र मे कार्यकर्ता अपनी कोई समिति वगैरह बनावें। जिले के कार्यकर्ता महीने मे एक बार मिले। हर जिले से एक-दो कार्यकर्ता, इस तरह प्रान्त के सारे जिलों के कार्यकर्ता दो-एक महीने मे एक बार मिलते रहे।

निधिमुक्ति के बारे मे दो राये रही। कइयो का कहना रहा कि निधिमुक्ति नहीं रहनी चाहिए। जरूरत हुई तो केवल सम्पत्तिदान से ही नहीं, चन्दा करके भी निधि इकट्ठी की जाय। और उसके द्वारा पूरे समय के कार्यकर्ताओ का निर्वाह चलाया जाय। दूसरो की राय थी कि सूताजलि, सम्पत्तिदान, सर्वोदय-यात्रा, साहित्य-बिक्री-कमीशन इन जरियों से कार्यकर्ताओ का निर्वाह किया जाना चाहिए।

आम राय यह दीख पडी कि निधिमुक्ति के बाद कार्यकर्ताओं के निर्वाह की व्यवस्था की जितनी चिन्ता और प्रयत्न बडे कार्यकर्ताओ को करना चाहिए था, नहीं किया गया।

कार्यकर्ताओ के निर्वाह के बारे में यह सुझाया गया कि अबर कताई या खेती आदि कार्यकर्ता का परिवार करे और बाहर से निर्वाह के लिए मदद लेने की जरूरत कम-से-कम रहे। इस दिशा मे परिवार को मोडने का प्रयत्न किया जाय। जरूरत हो, तो अंबर कताई की दुगुनी मजदूरी दी जाय। आम राय रही कि यह सुझाव अच्छा है और हो सकता है।

कार्यकर्ताओं के शिक्षण के बारे मे तफसील से विचार नहीं हो सका। छोटे शिविरों के बजाय तीन एक महीनों का शिविर चले, जिसमें विचार के साथ किसी उद्योग की भी शिक्षा दी जाय। इसके अलावा प्रान्त मे कुछ ऐसे शिक्षा-केन्द्र हों, जहां जिले-जिले के कार्यकर्ता बारी-बारी से आकर शिक्षा पा सकें।

डोनाल्ड ग्रूम (इग्लैंड)

करीब बीस साल पहले मै अपने घर से निकला था। विश्वशान्ति की खोज मे

था। मैं जानना चाहता था कि क्या कोई ऐसा रास्ता है, जिससे विश्व में वास्तविक शान्ति स्थापित हो सकती है। मै महात्मा गाधी के आकर्षण से यहाँ नही आया। शान्ति-स्थापना का मार्ग खोजने आया और मैंने गाधी को पाया। उसके बाद जब भूदान-आन्दोलन शुरू हुआ, तो इसमे शामिल हो गया। लम्बी पदयात्राएँ लगातार महीनों तक कीं। आजकल बेंगळूर मे हूँ। बाबा ने वहाँ भेजा है। मैं बार-बार सोचता हूँ कि आजकल हम लोग एक विशेष समय मे से गुजर रहे हैं। इस विचार से हमे आनन्द और प्रेरणा मिलनी चाहिए। हम एक युग और दूसरे युग के जोडे पर खडे हैं। पिछले युग में हिंसा के सिवा हमारे सामने कोई रास्ता ही नहीं था। लेकिन गतसाल जब मैं इग्लैड गया था, तो अहिंसा के विचार को सुनकर वहाँ के मित्रों ने कहा कि इस विचार में नयी शक्ति है। दुनिया के लोग अहिंसा के रास्ते का अध्ययन कर रहे हैं। वे इस देश से कुछ सीखना चाहते हैं। एक गंभीर बोझ इस देश के सिर पर है। हमे अपने मार्ग का प्रयोग कर ससार के सामने उसकी सफलता सिद्ध करनी है। हम इस देश मे सर्वोदय-समाज स्थापित करने की कोशिश अपनी सारी शक्ति लगाकर करे। दूसरे लोग अपनी शक्ति मंदिर और गिरजा बनाने में लगाते हैं, हमको मन्दिर और गिरजाघर नही बनाना है, मानव का समाज बनाना है। इस समाज-मन्दिर में परमेश्वर की वास्तविक महत्ता प्रकट होगी। यदि हमको समाज का निर्माण करना है, तो हम एक मजबूत सगठन बनाये। सगठन चाहे छोटा ही क्यों न हो, जहाँ कही दो-चार-दस कार्यकर्ता हैं, वे अपने जीवन में सर्वोदय-समाज को प्रकट करें। मैं केवल एक व्यक्ति नहीं हूँ। दूसरे देशों के उन हजारों लोगों का प्रतिनिधि हूँ, जो इस आन्दोलन मे दिलचस्पी लेते हैं। यदि यहा हमको सफलता मिलती है, तो दुनिया मे आशा और आनन्द का वातावरण पैदा होगा।

जुगतराम दवे (गुजरात)

सर्वोदय की प्रेरणा पाने के लिए यहाँ हम सब इकट्ठा हुए हैं। मुझमें कोई विशेषता नहीं है। लेकिन मैंने यहाँ जो कुछ देखा-सुना, उसका आनद व्यक्त करने के लिए मैं आपके सामने खडा हूँ। विनोबाजी कुछ दिन बाद गुजरात में आ रहे हैं। उन्होंने हमे समय बहुत कम दिया है। क्योंकि विश्व के साथ सम्बन्ध

रखनेवाले प्रश्न उनके मन में चल रहे हैं। इसलिए वे कश्मीर-पजाव की तरफ जाना चाहते है। हमने ज्यादा आग्रह नहीं किया कि वे गुजरात में ज्यादा दिन रहे। वे कहते है कि वह महात्माजी का प्रान्त है। जहाँ महात्माजी के चरण नित्य पडते रहे है, वहाँ के लोगों का कल्याण ही होगा। अव तक हम लोग नयी तालीम, खादी आदि काम करते रहे है। भूदान का काम भी एक रचनात्मक काम ही है, जो नया रूप लेकर आया है। रचनात्मक कार्यकर्ताओं को यह पहचानना चाहिए कि रचनात्मक काम अपना स्वरूप वदल रहा है। भूदान खादी के काम का विस्तार है। आज हमें सिर्फ वस्त्र-स्वावलवन से सन्तोष नहीं है। हम चाहते हैं कि हर गाँव सभी बातों में स्वावलवी वनें। लेकिन वह स्वावलवी वने कैसे? खेती गिरी हुई है, जमीनें विगड रही हैं, जमीन से तंवाकू वगैरह जैसे विष पैदा किये जा रहे है। इसके लिए कानून वनाने की भी कोशिश की गयी, लेकिन चूँकि लोगों का सहकार नहीं रहा, इसलिए कानून सफल नहीं हो सके। जव तक लोगों के दिल में खेती के लिए दिलचस्पी पैदा नहीं होती है, हम छोटी-मोटी वातों को लेकर अपनी ताकत न लगायें। जमीन के सभी प्रश्नों को हाथ में न लें। जो मुख्य चीज है उसीको पकड़कर रहे। जव गाँव के लोग अपने को उस भूमि के पुत्र समझने लगेंगे, तव वे स्वय अपने पुरुषार्थ से वहुत-सी समस्याएँ हल कर सकेंगे। जमीन के विषय की सभी वातें टेक्निकल नहीं हैं। हम अगर अपने काम को विस्तृत और गहरा साथ-साथ वनाते जायेंगे, तो गाँववाले भी वहुत-सी शास्त्रीय समस्याओं को हल करने में अपनी वुद्धि और शक्ति लगायेंगे।

वल्लभस्वामी :

हमारे मार्गदर्शक जयप्रकाशवावू अवकी वार सम्मेलन में नहीं है। उनकी अनुपस्थिति हम सवको खटकती है। हमारी कोशिश थी कि उनके जाने से पहले सम्मेलन किया जाय, लेकिन वह न हो सका। उनके साथ सर्व-सेवा-सघ के सहमत्री श्री सिद्धराज ढड्ढा भी गये हैं। उन लोगों के विषय में जानने की उत्सुकता आप सवको होगी। इसलिए उनके पत्र का कुछ अंश मैं आपको पढ़कर सुनाता हूँ। [श्री ढड्ढाजी के पत्र से कुछ अंश उन्होंने पढ़कर सुनाये।]

अव इसके वाद हर साल की तरह सर्व-सेवा-सघ की तरफ से एक निवेदन आपके

सामने प्रकट किया जायगा। श्री पूर्णचन्द्रजी जैन आपको उसे पढ़कर सुनायेंगे और बाद में श्री धीरेन्द्रभाई उस पर भाषण करेंगे।

श्री पूर्णचन्द्र जैन ने निम्नलिखित निवेदन पढ़कर सुनाया

ग्रामदान-आन्दोलन ने इस साल कुछ निश्चित कदम उठाये हैं। गाँवों की जनता स्वयं ही ग्रामदान करे, अपनी प्रेरणा से ही जमीन का बटवारा कर ले, अपने-आप निर्माण के काम उठा ले तथा अन्य गाँवों को ग्रामदान की प्रेरणा दे, यह सब प्रसग नयी आशा के सूचक हैं। लेकिन अब भी ग्राम-स्वराज्य के हमारे ध्येय तक पहुँचने के लिए काफी जोरदार कदम उठाने होंगे।

सारे देश मे यह अपेक्षा पैदा हो गयी है कि सर्व-सेवा-संघ व्यापक बने। राजनीतिक पक्षों ने भी यह अपेक्षा प्रकट की है। यह अपेक्षा स्वाभाविक है, लोकनीति के विकास की दिशा में वह एक संकेत है। इसी सकेत का दर्शन येलवाल में हुआ। गाधीजी की कल्पना के लोक-सेवक-संघ की विकसितरूप मे स्थापना के लिए परिस्थिति उत्तरोत्तर अनुकूल हो रही है। अब इस दिशा में कदम बढाने की आवश्यकता है।

सरकार अपनी सामुदायिक विकास-योजना के लिए ग्रामदान का आधार उपयुक्त समझती है और तदनुसार सरकार ने अपने सामुदायिक विकास-योजना के उद्देश्यों को नये शब्दों में प्रकाशन दिया है—इसका संघ स्वागत करता है।

ग्रामदान के विषय मे सारे नेताओं का रुख जितना आदरयुक्त रहा, उससे अधिक ही आदरयुक्त रुख शान्ति-सेना के विचार के लिए रहा है। ग्रामदान के विचार को साकार बनाने में भी सेवकों की एक सेना की जरूरत है। यह तो स्पष्ट ही है कि इस प्रकार की शान्ति सेना असल में सेवा-सेना ही होगी और जो सेवक-वर्ग होगा, वह श्रमनिष्ठ होगा ही, क्योंकि हम एक शोषणहीन-समाज की नींव डालना चाहते हैं।

साथ-साथ सेवक के लिए यह भी आवश्यक है कि जिस क्षेत्र में वह सेवा करता है, उस क्षेत्र की जनता का वह विश्वासपात्र बने, अर्थात् लोक-सम्मति उसकी सेवा का आधार हो और इस सम्मति का प्रतीक सर्वोदय-पात्र हो। आशा है कि देश के घर-घर मे सर्वोदय-पात्र स्थान पायेगा।

अहिंसात्मक आन्दोलन की एक विशेषता नारीशक्ति का आविष्कार और विकास है। नारी, अल्पमत और व्यक्ति का आत्म-मर्यादा के संरक्षण का आश्वासन जितना शान्ति-सेना में है, उतना और किसी योजना में नहीं हो सकता। उसमें निर्भयता और वीरवृत्ति के विकास के लिए सार्वत्रिक अवसर है।

जिन लोगों का शान्ति की शक्ति पर तत्त्वत विश्वास नहीं था, वे भी वर्तमान परिस्थिति के कारण धीरे-धीरे शान्तिमय साधनों को अपना रहे हैं। यह जितना जागतिक आकांक्षा का परिणाम है, उतना ही उन शान्तिमय साधनों का भी परिणाम है, जिनका प्रयोग आधुनिक भारत ने गांधीजी के नेतृत्व में किया।

विश्व में विवाद और कलह के प्रबल कारण धर्म-भेद और पक्ष-भेद रहे हैं। इस दृष्टि से पण्ढरपुर के मंदिर में भिन्न-धर्मी सद्दजनों का प्रवेश व्यापक धर्म-भावना की दृष्टि से एक कल्याणकारी चरण है। इस वृत्ति का विस्तार होगा ऐसी आशा है।

जब कि जगत् के और भारत के वातावरण में इतने अनुकूल चित्र प्रकट हो रहे हैं, स्वाभाविक रूप से, हृदय स्फूर्ति, उत्साह और आशा से भर जाता है, लेकिन उन अनुकूलताओं से उपयुक्त लाभ उठाने की पात्रता हमें तभी प्राप्त होगी, जब हम अहिंसा के अभावरूप पहलू के बदले उसके विधायक पहलू की तरफ अधिक ध्यान देंगे। इस दृष्टि से शान्ति-सेना का मूलभूत विचार केवल किसी एक क्षेत्र या समुदाय का विचार न रहकर विश्व-मानव के निर्माण का साधन हो सकता है।

इस विचार और योजना का अनुसरण दुनिया के सभी देशों में हो सकता है। हम यद्यपि अपना सेवा-क्षेत्र भारत तक ही मर्यादित समझते हैं, तो भी सर्व-सेवा-संघ का विचार-क्षेत्र विश्व-व्यापक है और सर्वोदय समाज तो स्वयं एक विश्व-समाज है ही। इसलिए सर्वोदय के जो सह-विचारक और सह-प्रयोगी दुनिया में जहाँ-जहाँ हों, उन सबसे हमारी अपील है कि वे शान्ति-सेना के नमूने अपने-अपने देश में पेश करने की कोशिश करें और इस प्रकार ससारभर के मनुष्यों को स्वयं संरक्षित बनाने के इस पुण्य प्रयास में हाथ बटावें।

धीरेन्द्रभाई :

आपके सामने सर्व-सेवा-संघ का जो निवेदन पेश किया गया है, वह अपने आपमें साफ है। फिर भी ज्यादा सफाई की जरूरत इसलिए है कि हम समझें

कि हमसे क्या अपेक्षा है। और हमारी क्या जिम्मेवारी है। अब ग्रामदान विचार को देशभर के सभी पक्षों के नेताओं ने ही नहीं, देहात के लोगों ने भी अपनाया है। आपने इस मच पर से सुना है कि गॉव के लोग टोलियॉ बनाकर ग्रामदान के विचार का प्रचार करते हैं और ग्रामदान प्राप्त करते हैं। हमारे पास पत्र आते हैं कि हम ग्रामदान के लिए तैयार है। ग्राम-स्वराज्य के लिए व्यापक पैमाने पर परिस्थिति अनुकूल हो रही है। लेकिन ग्राम-स्वराज्य की कल्पना जैसे—जैसे साकार होती है, वैसे-वैसे कुछ समस्याऍ भी सामने आ रही है। मुख्य समस्या है स्वसरक्षण की। ग्राम-स्वराज्य तब चरितार्थ होगा, जब गॉववाले स्वय अपना रक्षण, पोषण और शिक्षण कर सकेंगे। इसीमे से शान्तिसेना के विचार का जन्म हुआ। सारी दुनिया को आज शान्ति चाहिए। उसे यदि कोई मार्ग न दिखाये, तो यह आकाक्षा निराशा मे परिवर्तित हो सकती है। निराशाग्रस्त मानव मतवाले होकर एक-दूसरे का नाश कर सकते हैं। इस अनर्थ से बचने के लिए दुनिया को हिंसा के बदले अहिसा का तरीका बतलाना होगा। सेवाव्रतधारी सेवको की सेवा-सेना का ही दूसरा नाम शान्ति-सेना है। जो लोग गॉवों की पुनर्रचना करनेवाले हैं, वे भी सब शान्ति-सैनिक हैं। लेकिन उनकी पहचान क्या होगी ? बन्दूक रखने-वाले और वर्दी पहननेवाले सिपाही को बच्चा भी पहचानता है कि यह हिंसा का सिपाही है। क्या खादीधारी और चरखावाले को कोई अहिंसा का सैनिक मानेगा ? इसकी जिम्मेवारी हमारे ऊपर है। हर खादीधारी और चरखेवाले को शान्ति-स्थापना का काम करना चाहिए। हमारा सौभाग्य है कि आज हमारे बीच मार्ग-दर्शन के लिए बाबा मौजूद हैं। जिस हद तक जनता मे आशा निर्माण हुई है, क्या उस हद तक हमारी सेवा-सस्थाऍ उस आशा को पूरा कर सकती है ? क्या सर्व-सेवा-सघ गाधीजी की कल्पना का लोक-सेवक-सघ बन सकता है ? ये सारे प्रश्न इस निवेदन मे हमसे पूछे गये हैं। सर्व-सेवा-सघ को अधिक विराट् रूप देने से ही वह लोक-सेवक-सघ नहीं बन जायेगा। कोई सस्था स्थूलकाय हो, तो यह जरूरी नहीं कि वह स्वस्थ ही होगी। प्राकृतिक-चिकित्सावाले तो कहते हैं कि जब काय स्थूल हो जाती है, तो उसमें विजातीय द्रव्य की अधिकता होती है। सर्व-सेवा-सघ में सभी भाई-बहन आ जायँ, इसका अर्थ यह नहीं कि रजिस्टर में हमारी लम्बी-चौडी फेहरिस्त रहे। हमे एक भीमकाय सस्था नहीं खडी करनी है। बल्कि जनता

हमसे जो अपेक्षा रखती है, उसे पूरा करने की सामर्थ्य प्राप्त करनी है। सर्व-सेवा-संघ को व्यापक बनाने का यही अर्थ है। इस अर्थ में जब वह व्यापक बनेगा, तो वह अपने-आप देशव्यापी बन जायगा। गाधीजी ने कहा था कि चरखा-सघ की कामना-पूर्ति तब होगी, जब वह अपने को सात लाख देहातों में विभाजित कर देगा। उसी तरह सर्व-सेवा-सघ की कामना-पूर्ति भी तब होगी, जब पाच लाख देहात सर्व-सेवा-संघ के प्रतिरूप बन जायेंगे। तब वह लोक-जीवन में विलीन हो जायगा और कृतकार्य हो जायगा। आप उसे इस आकाक्षा की पूर्ति मे सहायता दे।

राजेन्द्रप्रसाद :

मेरी हमेशा यह कोशिश रहती है कि इस सम्मेलन में प्रतिवर्ष आकर शरीक हो सकूँ। यह इसलिए नहीं कि मुझे कुछ आपको कहना रहता है, बल्कि इसलिए कि अपने लिए कुछ प्रेरणा ले जाऊँ। तो भी जब भाइयों का आग्रह होता है कि मुझे भी कुछ कहना ही चाहिए, तो मैं उस आग्रह को टाल भी नहीं सकता। आप तीन दिनों मे विचार-विमर्ष कर रहे हैं और अनेकानेक विषयों पर अपने दृष्टिकोण से आपने विचार किया है। मुझे वह सब सुनने और जानने का भी मौका नहीं मिला है, तो भी मैं इतना समझ सकता हूँ कि आप जिन भावनाओं को लेकर प्रेरित हो रहे हैं और जिस कार्यक्रम को सामने रखकर आगे बढ़ना चाहते हैं, देश को बढ़ाना चाहते हैं, समार को बढ़ाना चाहते हैं। वह भावनाएँ ऐसी है, जिन पर कोई भी मनुष्य चाहे किसी भी स्थान पर हो, विचार किये बिना रह नहीं सकता। इसलिए मुझे भी उन भावनाओं पर विचार करना पड़ता है और खास करके जो आज की स्थिति है, उस स्थिति को देखता हूँ, तो विचार करना बहुत ही आवश्यक हो जाता है।

विदेशों की स्थिति मैं ज्यादा नहीं जानता और न उनके सबध में मैं आपको कुछ कहना चाहता हूँ। केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि सभी जगहों में आज अविश्वास, एक-दूसरे के प्रति बुरी भावना और देश-देश के अन्दर आपस मे गृहकलह लगे हुए हैं। ऐसा मालूम होता है कि जैसी प्रगति आज विज्ञान ने की है, उस प्रगति का दो मे से एक ही नतीजा हो सकता है। एक नतीजा तो यह हो सकता है कि जितने भौतिक साधन हैं, जितने भौतिक पदार्थ हैं और हम

भौतिक साधनों द्वारा जितना सुख प्राप्त करना चाहते हैं, वह सब सुख यदि उन साधनों का हम प्रयोग करें, तो हमें मिल सकेगा। पर अभी यह प्रकट नहीं है कि हम इस बात को पूरी तरह समझ गये हैं कि उन साधनों का उपयोग किसी भी सही काम के लिए होना चाहिए, किसी गलत काम के लिए नहीं। इसीलिए उसका दूसरा फल यह हो सकता है कि वे साधन हमारे विनाश का कारण बन जायँ और सारे मानव-समाज का एक प्रकार से नाश हो जाय। अब तक जो प्रवृत्ति नजर आ रही है और जो कुछ प्रयत्न उस दिशा में किये जा रहे हैं, उन सबका नतीजा विनाश की ओर ही हमको ले जा रहा है, उन्नति की ओर नहीं, मनुष्य के सुख की ओर नहीं, बल्कि उसके नाश करने की तरकीब हम सब सोच रहे हैं।

यह तो विदेश की हालत है। साथ ही स्पष्ट है कि सभी देशों मे विचारशील लोग इस चीज से अवगत हो गये हैं कि आज मानव-समाज ऐसे खतरे के मुकाम पर पहुँच गया है, जहाँ उसको सोच-समझकर कदम उठाना है। अगर गलत कदम उठा, तो वह एक ऐसे गड्ढे में गिरेगा कि जिससे वह फिर उठ ही नहीं सकता—अगर जिन्दा बचा भी तो। और अगर सही कदम उठा, तो हो सकता है कि वह सुख के रास्ते पर चल सके। यही एक आशा का चिह्न है—जिससे हम अपने आपको यह आश्वासन दे सकते हैं—कि समझदार लोगों के दिलों में इस तरह की भावना हो गयी है, तो हो सकता है कि हम विनाश की ओर से मुँह मोड लें और समृद्धि की ओर चलें। मगर यह भी है कि जो लोग सोच रहे हैं, उनको भी यह रास्ता अभी स्पष्ट नहीं दीख रहा है कि किस तरह चले। यह बात नहीं है कि आज तक किसीने वह रास्ता दिखाया ही न हो। ससार में जितने पैगम्बर, ऋषि-मुनि, धर्मों के प्रवर्तक पैदा हुए हैं, सबने कुछ-न-कुछ उस रास्ते को बतलाया है और उस रास्ते पर चलने का प्रयत्न भी किया है, तो भी आज की जैसी विकट स्थिति हो गयी है, इस स्थिति का किसीको सामना नहीं करना पडा था। इसलिए किसीने इस विकट स्थिति के मुकाबले का कोई रास्ता पूरी तरह से न देखा, न बताया। हम भारतवर्ष में आज से नहीं, अनादिकाल से अपनी रीति से सोचते आये हैं, चलते भी आये हैं। हमने भौतिक पदार्थों की उपेक्षा नहीं की है। हमेशा इस बात पर ध्यान रखते आये हैं कि जीवन भौतिक रूप से भी सुखी रहे, आनदी

रहे। मगर तो भी हमने कभी भी भौतिक पदार्थों को प्रथम स्थान नहीं दिया। यही कारण है कि इस देश मे इतनी गरीबी रहते हुए भी, इतना दुःख रहते हुए भी अगर आप जाकर लोगों से पूछें और लोगों को अच्छी तरह से समझने की कोशिश करें, तो आपको मालूम होगा कि वे कुछ सुख का ही अनुभव करते है। चिथडा पहने हुए, मिट्टी मे सोये हुए, गदा पानी पीते हुए आदमी भी भारतवर्ष मे जितना सुख अनुभव करते है, उतना अच्छे-से-अच्छे भौतिक पदार्थों को भोगनेवाला भी दूसरी जगह शायद ही अनुभव करता हो।

उसका कारण यह है कि हमेशा से ही उनका मानस ऐसा बना रहा है कि वे अपने सुख का अनुभव अन्दर से करते है, बाहर से नहीं करते। अन्तर्मुखी होकर के ही हम सुख का अनुभव करते है। हम बाहर के साधनों पर अपना सुख निर्भर नहीं रखते और यही कारण है कि आज तक हम जीवित रहे। जितने प्रकार की आपत्तियाँ हमारे देश पर आयी हैं और हमारी जनता को बरदाश्त करनी पडी हैं, उतनी आपत्तियाँ शायद ही और किसी देश को या और किसी जनता को सहनी पडी हो। जिन पर पडीं, वह एक प्रकार से वह न रहे जो पहले थे। अब उनका रूप, उनका जीवन, उनका सब कुछ इस प्रकार से बदल गया कि वे एक नयी चीज बन गये। भला या बुरा मै नहीं कहता, लेकिन वे वही नहीं रहे, वे कुछ दूसरे ही बन गये। हम अभी तक कोई चीज बने रहे है और यदि इस चीज को हमने कायम रखा, तो मैं आशा करता हूँ कि हम आइन्दा भी बने रहेंगे।

यह समझना गलत है कि हम चाहते है कि लोग जिस तरह से भूखे हैं, उसी प्रकार भूखे बने रहे, जिनके पास कपडे नहीं, वे हमेशा के लिए वस्त्रहीन बने रहे। हम चाहते है कि सुख के जो भौतिक साधन हो सकते है, वे सबको मिले और सबको प्राप्त रहे। पर यदि किसी कारण से उनमे से कोई चीज नहीं मिले, तो उसके लिए हम इतने दुःखी न बनें कि हमारे लिए जीना ही भार हो जाय। इस भावना को हमें जाग्रत रखना है। आज कल मुझे शका होती है कि कहीं हम, जो हमारे हृदय के अन्दर दुःखों और सुखों को सहने की शक्ति है, जो त्याग की वृत्ति है, उसको तो कमजोर नहीं बना रहे हैं और कभी-कभी तो मुझे डर लगता है कि साधनों के बाहुल्य से भी वह कमजोरी आ सकती है। हमारा जो कुछ प्रयत्न

साधनों को बढ़ाने का हो रहा है, देखने में बहुत ही अच्छा और सुंदर है। क्योंकि जहाँ किसीको खाना कम मिलता था, उसको भरपेट खाना मिलने लगा, जिसके रहने के लिए अच्छा मकान नहीं था, उसको अच्छा मकान मिल गया। इसको देखकर कौन खुश नहीं होगा, सबको खुश होना चाहिए। मगर मकान मिलने के बाद भी यदि वह अपने दिल में दु खी रहा, अपने भाग्य से असतुष्ट रहा, तो फिर उसका बहुत भला हमने नहीं किया और मैं यह देख रहा हूँ कि जैसे-जैसे हम साधन बढ़ाते जा रहे हैं, वैसे-वैसे असतोष कम होने के बदले बढता जा रहा है।

हम लोग जिस वक्त स्वतन्त्रता-प्राप्ति की लडाई मे लगे हुए थे, अक्सर यह सुना करते थे कि असतोष पैदा करना जरूरी है, और असंतोष के बल पर ही हम बढ़ सकते हैं। हो सकता है कि कुछ अश में यह बात सच हो, मगर मै मानता हूँ कि असतोष के बल पर बढ़ना हमेशा श्रेयस्कर नहीं होता। हो सकता है कि उसका नतीजा यह रहे कि असतोष ज्यों-का-त्यों बना रहे और सब कुछ हमे प्राप्त हो, तो भी हमे आनन्द न मिले। इसलिए हमको आज एक मध्यम मार्ग निकालना है और वह मध्यम मार्ग सही हो सकता है कि साधनों को तो हम जुटायें, मगर मनोवृत्ति को अपनी जगह पर वैसी ही बना कर रखें।

स्थूल रूप से अगर देखा जाय, तो एक चीज सभी जगह देखने में आती है या कम-से-कम उसकी शिकायत सभी जगह सुनने में आती है। लोग कहते हैं, आजकल सभी जगहों में कर्तव्य-परायणता कम हो रही है, रिश्वतखोरी बढ़ रही है, भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। इस सबका कारण मैं जहाँ तक समझता हूँ यही है कि जो उनकी स्थिति है, उससे असतुष्ट होकर उसको बदलने के लिए जल्दी-से-जल्दी जो कुछ साधन हाथ मे आ सकता है, उसका वे उपयोग करते हैं और इस चीज का ध्यान वे लोग नहीं रखते हैं कि साधन शुद्ध है या अशुद्ध है? अगर हमको अच्छा मकान चाहिए, तो अच्छे मकान के लिए पैसे चाहिए। फिर पैसे चाहे जिस तरह से मिले, प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इसमे भ्रष्टाचार हो ही जाता है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अच्छे मकान की ख्वाहिश या लालसा होना कोई बुरी बात नहीं है, मगर उस ख्वाहिश को इस हद तक नहीं जाने देना चाहिए कि जिससे उसे पूरा करने में हम भ्रष्टाचार का सहारा ले। यह सदाचार का एक स्थूल रूप हो जाता है।

सर्वोदय सम्मेलन में जो लोग शरीक होते हैं, वे बहुत गहराई से इन चीजों पर विचार करते हैं और इन चीजों को ध्यान में रखकर ही वे लोग अपना कार्य आगे बढ़ाते हैं। आपने लोगों में त्याग की प्रवृत्ति को बहुत जोरों से जाग्रत किया। विनोबाजी ने थोड़ी बहुत जमीन मांगना शुरू किया। पहले तो पाँच भाइयों से एक हिस्सा मांगा, उसके बाद कुछ और ज्यादा मांगा और अब तो तमाम गाँव ही मांग रहे हैं और लोग दे भी रहे हैं। यह एक शुभ लक्षण है। मालूम होता है कि वे त्याग की प्रवृत्ति को जाग्रत करने में बहुत हद तक सफल हो रहे हैं। खास करके जमीन एक ऐसी वस्तु है कि जिसको हम सबसे कीमती मानते हैं। इसीलिए आज तक जमीन के लिए ही सारी लड़ाइयाँ हुई हैं, चाहे वह व्यक्ति के लिए हों, समाज के लिए हों, चाहे देश के लिए हो। आज भी अगर कहीं किसी जगह पर कोई युद्ध छिड़ा, तो आप समझ लीजिये कि उस जगह भी जमीन की ही मांग होगी। कोई एक देश दूसरे देश को अपने कब्जे में करना चाहेगा।

इसी तरह से छोटे झगडे भी जितने आज तक हुए हैं और हो रहे हैं, जमीन के लिए ही होते रहे हैं। उस जमीन के विषय में ऐसी उदारता कि लोग उसका अपनी इच्छा से सर्वस्व दान कर देने के लिए तैयार हो जायँ एक आश्चर्यजनक घटना है, जिसका इतिहास में कम नमूना मिलेगा। यह चीज हो रही है, इसीसे आशा होती है कि इसके साथ ही आप इस भावना को जाग्रत करें कि जहां तक भौतिक पदार्थों से सुख प्राप्त हो सकता है, वह सुख हम लेते रहें। लेकिन उसके इतने गुलाम न बन जायँ कि उसके लिए सब कुछ करने को तैयार हो जायँ और भले-बुरे का खयाल ही छूट जाय।

सारे देश में इस भावना को जाग्रत करना आवश्यक है, क्योंकि इस वक्त हमारा देश एक विचित्र अवस्था में है। विचित्र अवस्था यह है कि बहुत दिनों के बाद स्वतन्त्र रूप से चलने का हमको मौका मिला है। अगर हम अपनी रीति को छोड़कर पराई रीति पर चलने लगें, तो उसका भी मौका हमको पूरा पूरा है। यह हमको आज फैसला करना है कि जो अपनी प्राचीन पद्धति और संस्कृति रही है, अर्थात् मानस में संतोष। संतोष का कारण भौतिक पदार्थों में नहीं, इस चीज को सामने रखकर ही हम आगे बढ़ेंगे या भौतिकसुख को ही सर्वश्रेष्ठ ध्येय मानकर हम आगे बढ़ेंगे। अगर हम ठीक फैसला करेंगे, तो हो सकता है कि

हमारे फैसले का असर दूसरों पर भी पडे। उन साधनो के लिहाज से, जो आज वडे-बड़े राष्ट्रो के हाथ में मौजूद हैं, उनके मुकावले में हम एक वारगी पिछडा हुआ राष्ट्र समझे जायेंगे। मगर हम यह समझें कि औरों के पास जो साधन हैं, वे किस प्रकार से आये हैं और उन साधनो को वे क्या महत्त्व देते हैं और उनकी वजह से आज वे अपनी स्थिति से स्वय ही संतुष्ट हैं या नहीं इस पर ध्यान दे, तो हमको यह भी मालूम होगा कि हमारा भी एक स्थान है, जो वहुत नीचा नहीं है। जो औरों के मुकावले में करीव-करीव आ सकता है। इसीलिए एक वडी जवाबदारी हम पर है—अपने देश के निर्माण के लिए और उसके साथ-साथ जो एक वड़ी भयकर स्थिति संसार में खड़ी हो गयी है, उस स्थिति को सँभालने के लिए। जो कुछ हम सेवा कर सकते हैं, जो थोडी बहुत कम सहायता दे सकने हैं, उसके लिए भी आज ही अवसर है। अगर हम चाहेंगे, तो उसकी योग्यता भी हम प्राप्त कर सकते हैं।

एक छोटी-सी मिसाल ले लीजिये। अगर हम औरों की सहायता उन्हींकी रीति पर चल करके करना चाहते हैं और उसी तरीके पर चलकर एक नये समाज का गठन करना चाहते हैं, तो एक के वाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी चीज की जरूरत हमारी बढ़ती ही जायगी और उसका कभी अन्त नहीं हो सकता। हमको आज वडे-वड़े कारखानों की जरूरत होती है। लोहे की जरूरत होती है कारखाने न.ने के लिए, लोहे की जरूरत होती है औजार और हथियार वनाने के लिए और हथियार की जरूरत होती है दूसरे देशों के हथियारों से मुकावला करने के लिए। इस तरह से विजली अथवा भाप से संचालित यन्त्रों से हम पूरी तरह से संतुष्ट न होकर अणुशक्ति द्वारा सचालित यंत्रों के पीछे पडते हैं और उनके लिए हम खोज करते हैं। अगर हम ऐसा करते हैं, तो हमको इसी रास्ते पर अभी वहुत दूर तक चलना होगा और तव दूसरे के मुकावले हम आ सकते हैं।

लेकिन अगर उन चीजों को हम गौण स्थान दे देते हैं और लोगों का मानस ऐसा तैयार कर सकते हैं कि वगैर उनके भी हम काम कर सकते हैं, चला सकते हैं, तो उसके लिए हमको इतना इन्तजार नहीं करना पड़ेगा, तव हम वहुत कुछ कर सक्ते हैं। छोटी मिसाल दूसरी सामने यह आ जाती है कि आज हम सभी जगहों में शान्ति चाहते हैं और शान्ति चाहते हैं, तो उसका उपाय दूसरों ने यह सोच रखा

है कि दूसरे के पास जो साधन है, उससे भी जबर्दस्त साधन प्राप्त करके हम शाति स्थापित कर सकते हैं। अगर हम भी उन्हींके रास्ते से चलेंगे, तो हम बहुत जमाने के बाद उनके मुकाबले आ सकेंगे। लेकिन अगर हम आज का तरीका छोड़-कर जैसा महात्माजी ने बताया था उस रास्ते से चलना चाहे, तो हमारा खर्चा भी बच जायगा और बहुत तरह से हम काम आगे बढ़ा सकेंगे और दूसरे के सामने नमूना भी पेश कर सकेंगे।

तो ये सब चीजें एक मौलिक रीति से विचार करने की हैं। एक बहती लहर में बह जाना आसान है, मगर उसके खिलाफ तैरना बहुत कठिन है। आज जो धारा है, जो प्रवाह है, वह जहाँ सारी दुनिया को खींच करके ले जा रहा है, हमको उस प्रवाह से विरुद्ध चलना है। उस प्रवाह के विरुद्ध आदमी कई तरह से जा सकता है। एक तो सीधे मुकाबला करना। उसमे बड़ी शक्ति लगती है। मगर कुछ इधर-उधर होकर दायें-बायें होते हुए जैसा कि तैराकू लोग करते हैं। जो प्रवाह है, उसमे सीधे तैरना मुश्किल हो जाता है इसलिए बाहें इधर-उधर करके कुछ दूर तक आदमी आसानी से जा सकता है।

अगर सीधा मुकाबला हम नहीं कर सकते हैं, तो हम कम-से-कम दाहिने-बायें थोड़ा बहुत होकर ठीक उस रास्ते पर न चलकर अपना रुख दूसरी ओर को बदलें, तो भी काम चलेगा। रुख बदलने की बात है। प्रवाह कुछ दूर तक खींचकर अपने साथ ले ही जायगा, लेकिन अगर हमारा रुख उलटी ओर है, तो हम आगे बढ़ सकेंगे।

तो सर्वोदय का सबसे बड़ा काम मैं यही समझता हूँ कि ससार की जनता का मानस बदलें, विचारशैली को बदले। उसमें हम तभी सफल हो सकते हैं, जब हम स्वयं अपने मानस को, विचार और जीवन को बदले। उसी जीवन-पथ पर चलना हमारा सबसे बडा ध्येय होना चाहिए। आप उसी पथ पर चलने के प्रयत्न मे लगे हैं। विनोबाजी की वह बड़ी तपस्या है। हमारे देश मे तपस्वियों ने ही सब काम पूरा किया है। मैं आशा रखूँगा कि उनकी यह तपस्या सफल होगी, महात्माजी की भी यही तपस्या थी। दोनों की तपस्या देश को और ससार को आगे बढाये।

अण्णासाहब सहस्रबुद्धे :

मैं आप लोगों की क्षमा-याचना करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ। पटर-

पुर में सम्मेलन होना जब तय हुआ, तो एक व्यवस्था-समिति कायम हुई। पूज्य बाबा की पदयात्रा के लिए भी एक अलग व्यवस्था-समिति बनी। पंढरपुर में जो व्यवस्था-समिति बनी, उसकी ओर से इस वक्त क्षमा-याचना के लिए मैं खड़ा हूँ। आप सब लोगों को काफी अव्यवस्था और कष्ट सहने पडे, इसका मुझे दुःख है। शायद हमारे कुछ अनुमान गलत साबित हुए। हमने सोचा, पंढरपुर में साल मे दो-तीन बार लाखों की तादाद में तीर्थयात्री आते हैं और दर्शन करके चले जाते हैं। उनके ठहरने के लिए बड़ी-बडी धर्मशालाएँ हैं, मठ हैं और व्यक्तिगत रूप से व्यवस्था करनेवाले लोग भी हैं। व्यवस्थापक-समिति ने सोचा कि इस स्थायी व्यवस्था से लाभ उठाया जाय। नया अस्थायी नगर न बनायें। इसलिए आप लोगों को अलग-अलग निवासस्थान देने पडे, जिसके सबब से एक-दूसरों के साथ हर साल की तरह सम्पर्क न हो सका। इसके अलावा भी और कई तरह की अव्यवस्था हुई।

पंढरपुर की नगरपालिका ने पूरा-पूरा सहकार दिया। स्थानीय लोगों ने राजनैतिक पक्षों के विचारों को दूर रखकर सम्मेलन की व्यवस्था में सहयोग देना अपना कर्तव्य समझा। महीना-डेढ़ महीना सब लोग सतत काम करते रहे। फिर भी अन्य प्रान्तों में जैसी व्यवस्था हुई थी, वैसी यहाँ नहीं हो सकी। निवास की व्यवस्था १३० अलग-अलग मकानों में करनी पड़ी। करीब १ मील का घेरा रहा। पानी का प्रबन्ध पर्याप्त नही हो सका। भोजन की व्यवस्था मे भी दोष रह गया। दस लाख ग्यालन से १५ लाख ग्यालन तक पानी म्युनिसिपैलिटी दे सकी। इससे ज्यादा देना सभव नहीं हुआ। मैं नगरपालिका के अधिकारी, पंढरपुर के नागरिक और अन्य सब लोगों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

एक विचार मेरे मन में आता है कि अगर इस साल १५ से २० हजार तक प्रतिनिधि आये हैं, तो हो सकता है कि यह सख्या आगे चलकर बढ़े। यदि ऐसा हुआ, तो निवास, भोजन आदि की व्यवस्था हम लोगों को छोड़ देनी होगी और हरएक पर अपनी-अपनी व्यवस्था करने की जिम्मेवारी सौंपनी होगी। बहुत बडा निवास-नगर हम नहीं बना सकेंगे। पिछले साल बारिश के कारण सम्मेलन समाप्त करना पडा। निवास की व्यवस्था करने में यह एक बडी भारी कठिनाई है। यह एक नया विचार मेरे मन में आता है। आप लोग इस पर सोचें। फिर एक बार मै आपसे क्षमा-याचना करता हूँ।

आशादेवी :

हर सम्मेलन के अन्त मे वहुत प्रिय काम होता है। जिन्होंने हमे अपने शहर और प्रान्त में वुलाया, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना वह प्रिय काम है। इस वर्ष पंढरपुर मे एक नया प्रयोग किया गया। निवास की व्यवस्था अलग-अलग मकानों में हुई। दस वर्ष पहले वावा ने कहा था कि सम्मेलन का स्वरूप एक धार्मिक मेले का हो। उसका कुछ आभास इस वर्ष हुआ। इन आयोजनों में वहुत अधिक व्यवस्था की अपेक्षा रखना उचित नहीं है। व्यवस्थापक-समिति ने प्राप्त साधनों से हमारे लिए सुविधाओं का जो आयोजन किया, उसके लिए हम आभारी हैं। हम सव लोगों को चन्द्रभागा मे स्नान करने का और देव-दर्शन करने का सौभाग्य मिला, इसका श्रेय व्यवस्था-समिति को है। हमें असुविधाओं का स्मरण नहीं रहेगा, उनके आतिथ्य और स्नेह का ही स्मरण रहेगा। सव प्रतिनिधियों की ओर से मैं व्यवस्थापक-समिति को, नगरपालिका को और पंढरपुर के नागरिकों को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

रमादेवी चौधरी :

पूज्य वावा के भाषण के वाद यह सम्मेलन समाप्त होगा। आज तीन दिन से सम्मेलन में जो चर्चाएं हुईं और जो भाषण हुए, उनके वाद कुछ कहने को वाकी नहीं रहता। जिस विचार का उच्चारण यहां वार-वार हुआ है, उसे हमें आचार मे लाना है। वापू के जमाने में सारे देश की जनता सत्याग्रह का सन्देश श्रद्धापूर्वक सुनती थी। लेकिन हमारी जितनी चित्तशुद्धि और क्रियाशक्ति होती थी, उतना प्रभाव जनता पर होता था। आज वावा का ग्रामदान का सन्देश ग्रामीण जनता सुनती है, वह हमसे अपेक्षा रखती है कि हममें आत्मशक्ति और प्रयत्न का सातत्य होना चाहिए। इसी पर कार्यसिद्धि निर्भर है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हमें इस प्रकार की प्रेरणा और सामर्थ्य दे।

वल्लभस्वामी

सम्मेलन के लिए करीव १७,५०० लोगों ने प्रवेश-पत्र मांगे थे। उनमें से लगभग १५००० लोग यहां आये होंगे। वहुत कोशिश करने के वाद भी किसी-न-

किसी कारणवश असुविधा और अव्यवस्था हो ही जाती है। व्यवस्था के लिए कई प्रकार के साधनो की आवश्यक्ता होती है। भिक्षापात्र लेकर घूमना पडता है। एक ही समाधान है कि सभी तरह के लोगों का सहकार प्राप्त हुआ और सभीने अपनी ओर से सब तरह की कोशिश की। इसके बावजूद, प्रत्यक्ष हमारी अध्यक्षा रमाबहन, श्री नवबाबू, कनु गाधी, आभाबेन आदि लोगों को भी निवास के लिए देर तक इन्तजार करना पडा, अपमान भी सहना पडा। इस सबके लिए हमे खेद है। लेकिन प्रयत्नों के बाद भी जो अव्यवस्था होती है, उसे हम केवल 'ईश्वरी इच्छा बलीयसी' कहकर सह लेते हैं। इसे नियति का ही एक अग हम मान लेते हैं। कुछ लोगों को यह भ्रम है कि सम्मेलन की बहुत-सी व्यवस्था सरकार ने की है और बहुत-से साधन भी सरकार की तरफ से मिले हैं। यह केवल भ्रम ही है। हर मेले के समय सरकार अपनी तरफ से कुछ व्यवस्था करती है, उतनी उसने की है। उससे अधिक सरकार ने कुछ नही किया है। बाकी सब यहाँ के और इस प्रान्त के लोगों ने चन्दा जमा करके किया है। मैं उन सबकी कृपा के लिए उनका आभारी हूँ। जो कमियाँ रह गयीं, वे हमारी और उनकी दोनों की है। इसलिए हम उन्हे भूल जायँ। पूज्य रमादेवी ने हम सबकी इच्छा का आदर किया और कृपापूर्वक सम्मेलन का अध्यक्ष-पद स्वीकार किया। इसके लिए मैं आप सबकी ओर से विशेष रूप से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इसके बाद विनोबाजी का उपसहारात्मक भाषण हुआ।

श्री विनोबा :

विचार-यज्ञ के साधन : कृति, शब्द, मौन

ॐ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येव आत्मा, सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्त शरीरे जोतिर्मयो हि शुभ्रो, य पश्यति यतय क्षीणदोषा ॥
सत्यमेव जयते नानृतम्, सत्येन पथा. विततो देवयान।
येनाक्रमति ऋषयो ह्याप्तकामा, यत्र तत् सत्यस्य परम निधानम् ॥

सात साल से एक विचार-यज्ञ चल रहा है। भारत एक बहुत पुराना देश है और उसमें अनेक प्रकार के आध्यात्मिक और सामाजिक प्रयोग किये गये हैं। उन प्रयोगों की पृष्ठभूमि इस देश के सारे इतिहास को उपलब्ध हुई है और परमेश्वर

की योजना के अनुसार इस देश का संबंध दुनिया के बहुत-से देशों के साथ बहुत (कदीम) जमाने से आज तक चला आया है। इसलिए विचारों का लेन-देन इस देश और दुनिया के दूसरे देशों के बीच सतत चला आया है। कभी-कभी उस लेन-देन और विचार-विनिमय को आक्रमण का स्वरूप आया, तो कभी संघर्ष का स्वरूप आया और कभी परस्पर प्रेम-परामर्श का रूप आया। इस देश पर बहुत बार आक्रमण हुए। फिर भी सारे इतिहास में इस देश की ओर से उस किस्म का आक्रमण दूसरे किसी देश पर हुआ हो, ऐसा स्मरण नहीं है। यह कोई छोटी चीज नहीं है कि इतने बड़े देश के लिए यह कहा जाता है कि इसने बाहर के किसी देश पर आक्रमण नहीं किया है। मेरे खयाल से यह एक बहुत बड़ी चीज है।

विचारों का समन्वय

इस देश की श्रद्धा निरंतर विचारों पर रही है और विचारों के समन्वय पर रही है। यहाँ पर जितने भी बाहर से लोग आये, चाहे वे व्यापार-व्यवहार के लिए आये हों, चाहे आश्रय के लिए आये हों, चाहे भूमिप्राप्ति के लिए आये हों, चाहे राज्य-सत्ता की, वैभव की लालसा से आये हों, चाहे विचार-दान के लिए या विचार-चर्चा के लिए आये हों, या धर्म-प्रचार के लिए आये हों, ऐसे अनेक निमित्तों से जितने भी लोगों का यहाँ प्रवेश हुआ, उन सबको इस देश ने एक ही ढंग से स्वीकार किया और वह ढंग था कि जो विचार मिले, उसे अपने में पचा लेना, उसका समन्वय करना।

सात साल में हमारा यह जो आरोहण चला है, उसमें भारत की इस दृष्टि का निरंतर खयाल रहा है। अपने चिन्तन का थोड़ा-सा अंश मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। मेरे अन्दर समन्वय का जो द्वंद्व चल रहा है, उसका भी आपको दर्शन होगा। मैंने 'द्वंद्व' शब्द इसलिए कहा कि जब तक परिपूर्ण समन्वय सधता नहीं, तब तक उसके अंदर कुछ द्वंद्व भी रहता है। मैं अपना परीक्षण करता रहता हूँ। दुनिया में जो भिन्न-भिन्न तत्त्वज्ञानी पुरुष, विचारक और चिंतक हुए, उन्होंने जिस ढंग से काम किया, उसका दर्शन भी मैं कराऊँगा।

एकमात्र विचार पर निष्ठा

उन लोगों में कुछ ऐसे होते थे, जिन्होंने पहले से अंत तक केवल विचार पर ही

निष्ठा रखी, आदि मे विचार, मध्य मे विचार और अंत में विचार। इस तरह से जिनकी आदि, मध्य और अन्त केवल विचार पर ही निष्ठा रही और विचार समझकर जिन्होने सन्तोष माना, ऐसे लोगों की जमात दुनिया में दीख पड़ती है। कुछ नाम लेना अपरिहार्य हो जाता है, उसके विना चर्चा अव्यक्त दीख पडती है, इसलिए मैं कुछ नाम लूंगा। जैसे, 'महावीर'। वे जिस किसीसे मिलते थे, उसकी भूमिका पर जाकर उसे विचार समझाते थे। अपने निज के किसी विचार का आक्रमण सामनेवाले पर नहीं करते थे, वल्कि पूछ लेते थे कि वह शख्स किस प्रकार की विचार-पद्धति को मानता है। अगर वह वेदों को मानता था, तो उसे वेदो के अनुसार समझाते थे। अगर वह दूसरी कोई प्रणाली मानता था, तो उसे उस प्रणाली के अनुसार समझाते थे। ऐसी कई प्रणालियाँ भारत मे उन दिनों चलती थीं, जिनका दिग्दर्शन सरकृत, पाली, अर्धमागधी आदि भाषाओ मे होता है। इस तरह उसकी परंपरा और विचार-पद्धति के अनुसार ही एक-एक को वे समझाते थे और यही कहते थे कि विचार कभी एकागी नहीं होता है। जो एकागी होता है, वह विचार नहीं, वल्कि अविचार होता है। इसलिए जो तुम सोचते हो, वह भी सही है, लेकिन उसमे भिन्न वातें भी सही हो सकती हैं, इसका खयाल मन में रखो और अपने विचार की पूर्ति के लिए उस विचार से वाहर जाकर कुछ विचार पाने की, विचार के विकास की पुष्टि की आशा रखो। उसके लिए हृदय खुला रखो। जो शख्स किसी प्रकार की विचार-प्रणाली पहले से नही मानते थे, उनके पास पहुँचने पर वे उन्हें अपने ढग से विचार समझाते थे। इस तरह अत्यंत अनाग्रह से वे विचार समझाते थे। उन्होंने दुनिया को एक वडी भारी देन दी है कि कोई भी विचार परिपूर्ण सर्वाङ्गीण ही हो सकता है। जो विचार परिपूर्ण नहीं है, सर्वाङ्गीण नहीं है, वह विचार ही नहीं है। उन्होंने कोई भी स्थूल कार्य अपने हाथ में नहीं लिया था और जिसे उन्होंने 'मध्यस्थ दृष्टि' कहा, उस मध्यस्थ दृष्टि से वे जनता को सिर्फ विचार ही समझाते गये।

प्रचार के लिए स्थूल आलंबन

महावीर के चालीस साल के वाद उनसे एक भिन्न अवतार हुआ गौतम बुद्ध का। बुद्ध ने उनसे भिन्न विचार-प्रक्रिया चलायी। उन्हे समाज के सामने एक विचार

रखना था, इसलिए उनके लिए आधार-रूप एक कार्य भी उन्होंने ढूँढ लिया था। वह कार्य उनके लिए सर्वस्व नहीं था, परन्तु वह कार्य उनके लिए विचार का वाहन था और विचार-प्रचार के लिए एक साधन के तौर पर उन्होंने उस जमाने में यज्ञ में जो विकार आया था, उसकी शुद्धि का कार्य हाथ में लिया। वे प्रचार तो विशुद्ध करुणा का ही करते थे, परंतु साथ-साथ यज्ञ में किया जानेवाला बलिदान बंद करने का कार्यक्रम भी उन्होंने हाथ में लिया। विचार-प्रचार की यह दूसरी पद्धति है, जिसमें विचार पर श्रद्धा तो है ही, परन्तु उसके प्रचार के लिए कोई स्थूल आलंबन चाहिए, ऐसा समझकर एक कार्य हाथ में ले लिया।

पंथ और सम्प्रदाय

इसके आगे जाकर जिनकी विचार में श्रद्धा थी, उन्होंने विचार-प्रचार के लिए कुछ सम्प्रदाय, शिष्य-परंपरा आदि बनाना शुरू किया। इस प्रकार से गुरुपंथ, संप्रदाय आदि बने, जिसके परिणामस्वरूप भिन्न भिन्न धर्म, जो एक-दूसरे के विरोधी नहीं थे, यद्यपि विरोधी दीख पड़ते थे, निर्माण हुए और उनके लाखों अनुयायी बने। इतिहास को दर्शन हुआ कि जब धर्म-विचार का आरंभ हुआ, तब खालिस विचार की दृष्टि से समझाया जाता था और लोग धीरे-धीरे समझते थे, परन्तु कुछ बरसों के बाद उसमें कुछ शक्तियाँ दाखिल होती थीं। जैसे ईसाई-धर्म में कोंस्टैनटाइन के बाद एक परिवर्तन आया, बौद्ध-धर्म में अशोक के बाद एक परिवर्तन आया, हिन्दू-धर्म में और वैष्णव संप्रदाय में गुप्त साम्राज्य के बाद एक परिवर्तन आया, तथा लाओत्से और कनफ्युशिअस के विचार के साथ चीनी सत्ता जुड़ने से दूसरी शक्ति से प्रचार हुआ, ऐसा कई मिसालें मिलती हैं। इस तरह खालिस विचार समझाना और केवल विचार ही समझाते रहना, उसके साथ कोई कार्य हाथ में न लेते हुए विचार समझाते रहना, यह एक पद्धति हुई और विचार-प्रचार के लिए कुछ कार्य हाथ में लेकर उसके जरिये विचार समझाना, यह दूसरी पद्धति हुई।

सत्ता द्वारा विचार-प्रचार

तीसरी पद्धति में विचारों का शासन आया, याने शासन के या सत्ता के जरिये लोगों में विचार-प्रचार किया गया। विचार के ग्रहण के लिए भौतिक अनुकूलताएँ पैदा करना और उसके अग्रहण के लिए भौतिक प्रतिकूलताएँ पैदा करना, यह सारा

किया गया। जो उस विचार को माने, उनके लिए अनुकूलताएँ पैदा की गयी और जो नही माने, उनके लिए प्रतिकूलताएँ पैदा की गयीं। इस तरह का आयोजन हुआ। अब धर्म-विचार के साथ सत्ता जुड गयी और सत्ता ने धर्म-विचार का प्रचार करना अपना कर्तव्य समझा। जिस सत्ता ने ऐसा अपना कर्तव्य समझा, वह सत्ता उस जमाने मे लोकमान्य हुई और उस-उस धर्म के अनुयायियो की सख्या बहुत बढ़ी। उसका परिणाम क्या हुआ, हम सब जानते हैं। आज दुनिया में एक-एक धर्म को माननेवाले की करोडो की तादाद है। लेकिन धर्म-विचार की असलियत छिप गयी है या विकृत हो गयी है, वह प्रकट नहीं हो रही है।

सैनिक-शक्ति की मदद

इससे आगे जाकर जिस विचार को हम अत्यन्त पवित्र समझते हैं और जिसके ग्रहण से मनुष्य जाति का कल्याण होगा ऐसा मानते हैं, उसके विरोध मे कोई शक्ति खडी हो, तो उस शक्ति को तोडना भी आवश्यक माना गया और विचार-प्रचार में या विचार-प्रचार के नाम पर सैनिक-शक्ति की भी मदद ली गयी। आरभ में तो सुरक्षा के नाम पर सैनिक शक्ति आयी। मुहम्मद पैगम्बर ने शुरुआत में अत्यन्त तितिक्षा और सहनशीलता बरती और सबको यही समझाया कि हमारे विचार परमेश्वर की हमारे लिए देन हैं। उनके वास्ते लोग हमें तकलीफ देते हैं, तो उन्हे सहन करना चाहिए। लेकिन बीच मे ऐसा हुआ कि शिष्यों की सहन-शक्ति टूट गयी और वे भागने लगे, तो पैगम्बर को यह कहने का मौका आया कि डरपोक बनकर भागना ठीक नहीं है। इससे बेहतर है कि तुम तलवार लेकर मुकाबला करो। लेकिन जितनी मात्रा में उसकी जरूरत है, उतनी ही मात्रा में उसका उपयोग करो। इस तरह जब उनके शिष्य क्षमा, तितिक्षा और अहिसा के नाम से डरपोक बनकर पलायन करने लगे, तब उन्हे प्रतिकार की आज्ञा देनी पडी। इस तरह विचार-प्रचार के लिए नहीं, बल्कि विचार के बचाव के लिए आरंभ में हिंसा को सम्मति दी गयी। यह पैगम्बर की एक ही मिसाल नहीं है, महाभारत मे भी यही दिखायी देता है कि विचार-प्रचार के साथ एक नयी शक्ति आयी और शुद्ध विचार के साथ उसे जोडा गया। उसके बाद किसी प्रकार का विचार समझाना ही नहीं रहा और ऐसी नीति अख्तियार की गयी कि जो विचार न समझता हो, उसे दंड ही देना चाहिए। इस

तरह विचार-प्रचार के मोह से आक्रमण तक चले गये और फलत विचार अविचार में परिणत हुआ।

विचार पर अटूट श्रद्धा

यह सारा इतिहास मेरे सामने है। मैं सोचता हूँ कि मेरी श्रद्धा इनमे से किस पर है और मैं कर क्या रहा हूँ। समन्वय का द्वद्व मुझमे चल रहा है। उसका दर्शन मे आपको कराना चाहता हूँ। मेरी श्रद्धा विचार के सिवा और किसी चीज पर लेश मात्र भी नहीं है, बल्कि अपने अनुभव से मैंने देखा है कि विचार जब ध्यान मे आता है, तब ध्यान में आने पर, समझने पर, पचने पर वह ठीक मालूम होता है और उसका साक्षात् दर्शन होने पर अमल मे लाने के लिए बीच मे कुछ करना पड़ता है, यह मेरी समझ में ही नहीं आता है। इसका मतलब यह नहीं कि जो विचार समझ में आया, उस पर मैंने फौरन अमल किया हो। इसके अमल में बहुत समय गया, परतु वह समय क्यों गया, इसका विश्लेषण करते हुए ध्यान में आया कि विचार को मैने पूरी तरह से समझा ही नहीं था, इसलिए इसके अमल में कुछ समय गया। लेकिन जो विचार मैंने पूरी तरह से समझा था, उसके आचरण के लिए और कोई कृति करनी पड़ती हो, कोई तप या साधना करनी पडती हो, यह मेरी समझ मे नहीं आता। जब विचार समझने पर उसके अमल करने मे मुसीबतें आती हैं, तब मैं अपने मन में यही समझता हूँ कि उस विचार को मैंने परिपूर्ण समझा नहीं है। विचार के अमल के लिए विचार को परिपूर्ण समझना ही परिपूर्ण और पर्याप्त है, यह मेरी श्रद्धा है। फिर भी मैं कर क्या रहा हूँ?

निरंतर घूमने का व्रत मैंने लिया है। यह भी ठीक है। घूमना और विचार समझाना चलता हो, तो उसमे भी कोई विशेष विसगति नहीं है। परंतु मैंने विचार को आचार का रूप देने के लिए एक कार्य भी उठा लिया है और उससे भी आगे जाकर अब शातिसेना की बात निकली है। शातिसेना के लिए कुछ योजना भी करनी पड़ती है। लोगों ने मुझसे पूछा कि 'शातिसेना के लिए आयोजन क्यों करते हो? उसके लिए शर्तें, योग्यता, पाबंदी यह सब क्यों रखते हो?' मैं कहना चाहता हूँ कि इन सवालों का कोई जवाब मेरे मन मे नहीं है, क्योंकि ये लाजवाब सवाल हैं। मेरी श्रद्धा विचारो पर होने के कारण मेरी तरफ से उन प्रश्नों का कोई उत्तर

नही दिया जा सकता है। अगर मेरी चले, तो मैं शातिसेना का प्रयोग नहीं करता, उसकी योजना और प्रबंध नहीं करता, उसके लिए पावदियाँ नहीं रखता। अगर मेरी चले, तो मै किसी कार्य-विशेष को हाथ मे नही लेता। अगर मेरी चले, तो विचार-प्रचार के लिए घूमने की ही मुझे अन्दर से जरूरत नही महसूस होती, वल्कि विचार को परिसिद्ध करना, यही विचार-प्रचार का साधन है, मै मानता हूं। उसके लिए तो शब्द भी कमजोर साधन हैं।

मौन सर्वश्रेष्ठ साधन

प्राय माना जाता है कि शब्द से कृति बलवान् साधन है, परंतु मैं वैसा नहीं मानता हूँ। कभी कभी मैं वैसा बोलता हूँ, परंतु मैं समझता यह हूँ कि कृति से शब्द श्रेष्ठ साधन है और शब्द से नि शब्द, मौन श्रेष्ठ साधन है। वाणी से जो प्रचार होता है, उससे अधिक प्रचार चिन्तन से होता है। जब चिंतन मे शुद्ध विचार आता है, तो उसका तीव्र वेग से प्रचार होता है, ऐसा मेरा मानस मुझसे कहता है। यद्यपि इन दिनों बाहर के कार्य मै तीव्र वेग से कर रहा हूँ और शाति-सेना आदि का आयोजन भी कर रहा हूँ, तथापि विचार पर मेरी जो श्रद्धा है, वह उत्तरोत्तर दृढ ही होती जा रही है।

[इसी समय मडप के वाहर जो भीड इकट्ठी थी, वहाँ कुछ अशाति हुई, खासकर वहनों और बच्चों की तरफ से आवाज आ रही थी, इसलिए विनोबाजी ने भाषण समाप्त करते हुए कहा]

यहाँ पर कुछ अशाति है, इसलिए मैं अब नही बोलूँगा। हम सब पॉच मिनट तक मौन रखेंगे और उसमे सत्य, प्रेम, करुणा का चिंतन करेंगे। अभी मैं जो कहने जा रहा था, वह इसी भाषा में सर्वोत्तम कहा जायगा।

० ० ०

परिशिष्ट : १

सर्व-सेवा-संघ के सदस्यों और निमंत्रितों के बीच

[विनोबा]

इस वक्त सम्मेलन से पहले यहाँ परिसंवाद हुआ, यह एक बहुत अच्छी योजना रही। इसमें सम्मेलन के लिए एक भूमिका बन गयी। परिसंवाद की जानकारी अभी मुझे अच्युतराव पटवर्धन ने दी। उसका मुझ पर अच्छा असर हुआ। हम जिस गति से और जिस दिशा में चल रहे हैं, उसका निरीक्षण परिसंवाद में हो सकता है। मुझे कहने में खुशी होती है कि परिसंवाद में जिन दो-चार विषयों की चर्चा हुई, उन सबमें चिंतन का स्तर ऊँचा ही रहा। उन सब विषयों की तो इस वक्त मैं चर्चा नहीं करूँगा। अधिक समय नहीं है। परन्तु एक बात की चर्चा यहाँ करना चाहता हूँ। क्योंकि उस विषय में हम लोगों में कुछ विचार-भेद बना रहा। उस विषय की चर्चा काफी हुई। दोनों बाजू की दलीलें पेश की गयीं। एक-दूसरे की दलीलें सुन ली गयीं और समझ ली गयीं। फिर भी शायद पूरा समाधान नहीं हुआ है और कुछ फरक रह गया है। यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। दुःख का विषय तो हो ही नहीं सकता। बल्कि मैं उसका स्वागत करता हूँ और उसके लिए आपको बधाई देता हूँ। ऐसे छोटे-छोटे मतभेद जरूर रहेंगे, जरूर रहने भी चाहिए ताकि दोनों बाजू का समतोल सधे। जब किसी विचार की दो बाजुएँ सामने आती हैं, तो हरएक में कुछ ताकत होती है। कम-बेशी होती है, यह बात अलग है। परंतु कुछ ताकत दोनों बाजुओं में होती है। इसीलिए अगर पूरा समाधान नहीं हुआ है और कुछ फरक रह गया है, तो मैं उसका स्वागत करता हूँ। लेकिन इस विषय में मैं अपनी ओर से दो-चार बातें रखना चाहता हूँ। उस पर आप चिंतन करें, तो संभव है कि जो कुछ थोड़ा मतभेद रह गया है, उसके समाधान में कुछ मदद मिलेगी।

एक तो हमको यह सोचना चाहिए कि हम कौन हैं? और जिस क्षेत्र में हम

काम कर रहे हैं, वह क्षेत्र कौन-सा है ? हम एक परिणाम भी हैं और एक कारण भी बनना चाहते हैं। जो पुराने विचार हैं, उन विचारों के हम परिणाम हैं। और कुछ नये विचारों का मूल कारण हम बनना चाहते हैं। याने हम मध्य में हैं। हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमारा चिंतन पूर्वविचारों से प्रभावित नहीं है। उसका उस प्रकार प्रभावित होना लाजमी है। उन विचारों के परिणामस्वरूप ही हमको कुछ विचार सूझे हैं। ये विचार हमको कुछ नवीन-से लगते हैं। इसलिए हम नूतन विचार प्रचारक कहलाते हैं। परंतु यद्यपि हम नूतन विचार प्रचारक कहलाते हैं, फिर भी हमको यह समझना चाहिए कि हम पूर्व विचारों के बहुत ज्यादा ऋणी हैं। उनको हम किसी प्रकार से छोड नहीं सकते। उनको भूल नहीं सकते। उनको नजर-अंदाज नहीं कर सकते। बल्कि उनको ध्यान मे रखकर ही नये विचारों का प्रवेश हमको समाज में कराना होगा।

उसकी एक प्रक्रिया है। आज भी कुछ लोग आक्षेप किया ही करते हैं। यद्यपि यह आक्षेप बहुत कम हो गया है तथापि आज भी मैं वह आक्षेप सुनता हूँ कि यह 'दान' क्या चीज है। यह शब्द क्यों चलाया जा रहा है। उस शब्द से गलतफहमी होती है। उसमे हमारा पूरा अर्थ नहीं आता। इत्यादि, इत्यादि। इसका जवाब तो मैं कई दफा दे चुका। लेकिन फिर भी उन लोगों का पूरा समाधान नहीं होता, जिनका सम्बन्ध पूर्व विचारों से कटा हुआ है। उन्होंने पश्चिम के ग्रन्थ पढ़े हैं। उन ग्रन्थों से उन्हे बहुत अच्छी चीजें मिली हैं। वे उन ग्रन्थों से प्रभावित हैं यह ठीक ही है। अच्छा ही है। अच्छे विचार जहाँ से मिलें, उनसे प्रभावित होने योग्य हमारा दिमाग होना ही चाहिए। उनके दिमाग ग्रहण-शील तो हैं। परंतु यहाँ के जो पूर्व विचार हैं, उनसे उनका सम्बन्ध टूट गया है। इसलिए वे लोग समझ नहीं पाते कि यह दान शब्द किस तरह विकसित होता गया है। उस शब्द मे कौन-सी ताकत भरी पडी है ? उस शब्द को छोड़ने से हम क्या खोनेवाले हैं, इसका उनको अन्दाजा नहीं है। इसलिए उस शब्द के साथ जो ऐसे भाव आते हैं, जिन्हे हम इस जमाने के लिए अनुकूल नहीं समझते, उतने ही भावों का प्रतिकूल असर हमारे दिल पर होता है। जो अनुकूलताएँ, सहूलियतें, ताकतें उस शब्द से हमको मिलती हैं, उनका हमको अन्दाजा नहीं है।

जन-समाज के संपर्क में हम जितने आयेंगे, उतना हमारे ध्यान में आयेगा कि जन-समाज पर उस शब्द का कोई भार नहीं पड़ता है। जन-जीवन ही पूर्व विचारों से भरा हुआ है, उन विचारों के अनुकूल बना है। इसलिए उनके खून में वह चीज है। इससे हमको लाभ उठाना चाहिए। इस अनुकूलता से अगर हम वंचित रहते हैं, तो उस समाज की दृष्टि से हम पूर्ण लायक नहीं बन सकते। हमको सेवा के लिए पूर्ण लायक बनना है, तो जो संवेदनाएँ सारे समाज में पैठ गयी हैं, वे संवेदनाएँ हमको भी होनी चाहिए। उन संवेदनाओं से हमको अछूता नहीं रहना चाहिए।

मैंने यह केवल 'दान' शब्द के लिए ही नहीं कहा है। 'दान' शब्द तो केवल एक मिसाल के तौर पर लिया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दुस्तान में आज जो परिस्थिति है, वह अनेक पूर्व परिस्थितियों का परिणाम है। यद्यपि हमको अपने विचार नये भासित होते हैं, तो भी वे उतने नये नहीं हैं कि पुरानी परम्पराओं को बिलकुल अलग रखकर पुरानी परिस्थितियों का विचार पूरी तरह छोड़कर हम एक शून्य में, एक रिक्तता में लोगों के सामने अपने विचार रखें और कामयाब हों, यह नहीं हो सकता है।

इसलिए हम जब यह देखते हैं कि अब हम इस आन्दोलन में एक ऐसी जगह पहुँचे हैं, जहाँ हमारे सामने प्रश्न उपस्थित होता है सरकार के साथ सहयोग का, तो हमको उसके विषय में गहराई से विचार करना चाहिए। उसमें कुछ लाभ हैं, कुछ हानियाँ हैं। अब सोचना यह है कि लाभ अधिक हैं या हानि अधिक है? लाभ ही लाभ है या हानि ही हानि है? आज यह सोचने का प्रसंग है। लेकिन यह प्रसंग कैसे आया? इसका थोड़ा इतिहास देखना चाहिए। सरकार अपनी योजनाएँ चलाती है। कुछ योजनाओं के साथ मूलभूत विचारों में हमारा अत्यन्त विरोध हो सकता है। क्षण भर के लिए मान लें कि सरकार की सारी योजनाएँ हमारे विचारों के अत्यन्त विरोधी हैं। फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि वे अपनी योजनाएं जनहित के खयाल से ही बनाते हैं। अगर इतना भी श्रेय हम उनको नहीं देंगे, तो हम स्वयं भी श्रेयभाजन नहीं रहेंगे। अर्थात् हम भरोसे लायक नहीं रहेंगे। हम दूसरों को 'क्रेडिट' नहीं देंगे, उन पर भरोसा नहीं रखेंगे,

तो हम खुद भी 'क्रेडिट वुल', भरोसे के लायक नहीं रहेगे। इसलिए यह मानना होगा कि सरकार जो योजनाएँ बनाती है, उनमें उसकी नीयत अच्छी है। हम उन योजनाओं के दोप बतलायें, अपनी दृष्टि से उनकी टीका भी करें। संभव है कि उनकी सारी योजनाएँ हमें बिलकुल गलत मालूम हों, फिर भी हमको यह मानना होगा कि उन योजनाओं के मूल मे उद्देश्य अच्छा है। वे भी लोकहित चाहते हैं और हम भी लोकहित चाहते हैं। अगर इतना भी हम न मानते हों और उनकी नेकनीयती का हमको एहसास न होता हो, तो उनके साथ किसी तरह का सहयोग हमको करना ही नहीं चाहिए। यह निस्सन्देह वात है।

गाधीजी दक्षिण अफ्रिका से यहाँ आये, उससे पहले यहाँ के कॉग्रेस नेता और लोकमान्य जैसे दूसरे राजनैतिक नेता देश के विपय में जो विचार करते थे, उसके पीछे यहाँ की परिस्थिति का उनका अनुभव था। गाधीजी दक्षिण अफ्रिका मे थे, इसलिए यहाँ की परिस्थिति का अनुभव उन्हे नही था। मित्रो की वातचीत से, अखबारो पर से और कुछ अपने चितन से उन्हे यहाँ की परिस्थिति का कुछ अन्दाज था। परन्तु वे यहाँ की परिस्थिति से उस तरह परिचित नहीं थे, जैसे लोकमान्य और दूसरे नेता परिचित थे। इसलिए यहाँ आने पर गाधीजी ने सरकार के साथ असहयोग की वात तव तक नहीं की, जव तक उनको यह यकीन नहीं हुआ कि इस सरकार के उद्देश्य ही दूषित हैं। वे इतना मानते थे कि अग्रेज सरकार के कारनामे गल्त थे। लेकिन, फिर भी वे ऐसा समझते थे कि उनके उद्देश्य अच्छे हो सकते हैं और शायद हैं भी। यहाँ के पुराने नेता तो खैर ऐसा मानते ही थे। दादाभाई नौरोजी ने जो पुस्तक लिखी, उसको उन्होंने "पावर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इण्डिया" नाम दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश शब्द के लिए उनके दिल मे कितना आदर था। हमारे मन मे जिस प्रकार 'आर्य' शब्द के लिए आदर है और किसीके लिए अनार्य कहना उसे वहुत वुरा वतलाने के वरावर है, उसी तरह उन्होंने 'अन-ब्रिटिश' शब्द का व्यवहार किया। इतना विश्वास दादाभाई को ब्रिटिश लोगों के सदुद्देश्यों में था। ब्रिटिशों के कारनामे गलत हैं यह दादाभाई ने जितनी अच्छी तरह रखा, उतना शायद ही और किसीने रखा हो। लेकिन उनकी यह श्रद्धा थी कि ब्रिटिश लोगों के उद्देश्य अच्छे हैं। उसी परम्परा के गाधीजी भी

थे। लोकमान्य जैसे राष्ट्र नेताओं का भ्रमनिरास हो चुका था। वे कहते थे कि इस सरकार के उद्देश्य भी दूषित हैं। उनके मन मे निश्चय हो चुका था। फिर भी गाधीजी ने दूसरों के अनुभवों के आधार पर चलना उचित नहीं समझा। उनको भीतर से एक चीज खटकती थी। वे ऐसा मानते थे कि एक सत्याग्रही को और सत्यनिष्ठ पुरुष को अग्रेजों के ही उद्देश्यों के लिए नहीं, किन्तु मानवमात्र के उद्देश्यों के लिए श्रद्धा होनी चाहिए। यह उनका मूलभूत विश्वास था। अग्रेजों के उद्देश्य ही दूषित हैं, ऐसा मानने मे उस मूलभूत विश्वास को पीड़ा होती थी। यह इतनी बड़ी जमात राज्यकर्ताओं की यहाँ आयी, बहुत पराक्रम से आयी। अग्रेजो का सारा इतिहास देखा जाय, तो मानना होगा कि उन्होंने काफी सहनशीलता से काम लिया और काफी तकलीफें उठायीं। इतनी सब मुसीबतें सहकर वे लोग यहाँ आये। उनका साहित्य भी काफी ऊँचा है। उनके अनेक सत्पुरुषों ने बहुत उच्चकोटि के ग्रन्थ लिखे है। यह सब होते हुए भी यह मानना कि उनकी नीयत ही खराब है एक मानव प्रेमी के नाते, एक सत्याग्रही के नाते और एक आत्मनिष्ठ व्यक्ति के नाते गाधीजी के लिए असह्य था। यहाँ जिन राष्ट्र नेताओं का भ्रमनिरास हुआ था, वे कोई छोटे लोग नहीं थे। बहुत बडे लोग थे। मैने तो लोकमान्य का नाम ही लिया है। फिर भी दूसरों के अनुभवों पर आधार रखना गाधीजी ने उचित नहीं माना और उन्होंने असहयोग की बात तब तक नहीं छेड़ी, जब तक कि उनको स्वय यह यकीन नहीं हुआ कि अग्रेजों की नीयत ही ठीक नहीं है। अभी यह प्यारेलालजी ने जो किताब लिखी है (लास्ट फेज), 'अन्तिम कला', उसमें भी जगह-जगह यह नजर आता है कि बापू के मन मे बार-बार सगय आता था कि ब्रिटिश लोग जो कर रहे हैं, उसमे उनकी नीयत ठीक है? यह शका बापू के मन मे बार-बार आती है और वे आखिर तक उन पर विश्वास ही रखते चले जाते है। कहते है कि हमको विश्वास ही करना चाहिए। परन्तु सावधान रहना चाहिए। क्योंकि एकदफा उनका भ्रमनिरास हो गया था। लोकमान्य का भ्रमनिरास हुआ, तो भी वे बात करते थे प्रतिसहयोग की। लेकिन गाधीजी उस वक्त सहयोग की ही बात करते थे। कहते थे—जो चीज हमको नहीं जँचेगी, उसका हम डटकर विरोध करेंगे, सत्याग्रह भी करेंगे। लेकिन बाकी सारी बातों मे सहयोग ही करेंगे। गाधीजी सहयोग की बात करते थे और लोकमान्य भ्रमनिरास होने पर भी प्रतिसहयोग की बात करते थे। परन्तु जब

गाधीजी का पूरी तरह भ्रमनिरास हुआ, तो उन्होंने प्रतिसहयोग का नाम नहीं लिया, वल्कि विल्कुल दूसरे सिरे पर जा पहुँचे और कहा कि सम्पूर्ण असहयोग ही होगा। यह सारा इतिहास मैंने आपके सामने इसलिए रखा कि अंग्रेज सरकार को भी वापू ने मौका ही दिया। वे यह समझते रहे कि सरकार के उद्देश्य अच्छे हो सकते हैं। उनके काम गलत हैं। शायद वे आत्मवचना कर रहे हैं। हमको ठगने के लिए वे गलत काम नहीं कर रहे हैं। अच्छे उद्देश्यो के साथ वे गलत काम कर रहे है। ऐसा मान्य किया उन्होने। आखिर तक कोशिश की। दूसरे पर विश्वास रखने के विषय मे कमाल कर दिखाया। जव वे लाचार हो गये, तभी उन्होंने असहयोग की वात कही।

अव हमको जरा सोचना चाहिए कि आज इस देश मे जो सरकार है, उसके वारे में हम उसी प्रकार के निश्चित निर्णय पर पहुँचे हैं, जैसे निर्णय पर असहयोग के आन्दोलन के समय गाधीजी पहुँचे थे ? क्या हम इस निश्चित निर्णय पर पहुँचे हैं कि इस सरकार की नीयत ही ठीक नही है ? इस तरह से अगर हम नहीं सोचते हैं और शासनमुक्ति के अत्युत्साह में आज के शासन के साथ चाहे वह सदुद्देश्य से ही प्रेरित क्यो न हो, अगर हम सहयोग नही करते हैं, तो मुझे इतना ही कहना है कि इसमें हम वहुत ज्यादा अविश्वासपरायण वन जाते हैं। शासन-मुक्ति तो एक आदर्श की चीज है। वह सबके पराक्रम से और सवके सहयोग से आगे चलकर आनेवाली है। परन्तु केवल उस शब्द के उत्साह मे हम शासन के साथ असहयोग करेंगे, तो हम शासन-मुक्ति को नजदीक नहीं लायेंगे, वल्कि और दूर ले जायेंगे। हम शासन को भी तोडेंगे और शासन-मुक्ति को भी तोडेंगे।

शासन-मुक्ति एक वहुत वडा विचार है। इसलिए मैंने इन दिनो उस पर वहुत जोर दिया है। शायद ही दूसरे किसीने इतना जोर दिया हो। उसका विश्लेषण करते हुए वार-वार मैंने यह भी वतलाया है कि पुण्य-कार्य एक वात है और मुक्ति-कार्य दूसरी वात है। अभी हाल ही मे मेरे जो व्याख्यान हुए हैं, उनमे पुण्य-कार्य और मुक्ति-कार्य के फर्क को भी पहचानने की वात कही है। लेकिन क्या मुक्तिवादी पुण्य-कार्य से असहयोग करेगा ? असहयोग तो पाप से ही हो सकता है। पाप से असहयोग लाजमी है, जिसमे पुण्य की शक्तियाँ एकत्र हो

सके। मुक्ति की शक्तियाँ और पुण्य की शक्तियाँ दोनों एक-दूसरे के साथ सहयोग करें और पाप के साथ असहयोग करें। पाप के साथ लड़ने में पुण्य-कार्य और मुक्ति-कार्य दोनों का सहयोग होना चाहिए। जब पुण्य अच्छी तरह से प्रस्थापित हो जायगा और पाप का अन्त हो जायगा, तब पुण्य और मुक्ति के बीच मतभेद का अवसर होगा। मुक्ति पुण्य से कहेगी कि तेरा और मेरा जो समान दुश्मन था, वह तो समाप्त हो गया। अब पाप तो नहीं रहा। अब तू और मैं दोनों ही रहे। अब हम अलग-अलग हो जायँ। तुम अपना पुण्य-कार्य चलने दो, मुझे अपने रास्ते से जाने दो। नहीं तो मैं तुमको ऊपर उठाने के बदले स्वयं नीचे गिर जाऊंगी। इसलिए अब मैं तुमसे अलग होती हूँ। मुझे थोड़ी अलग तपस्या करने दो। आगे चलकर तुम भी शायद इसी रास्ते पर आ जाओगे। वह मौका भी आयेगा।

यह एक विचार मैं आपके सामने रखना चाहता था। अगर इस सहयोग में कुछ थोड़ी झिझक हमको मालूम होती हो, तो हमें अपने मन में इसका निर्णय करना चाहिए कि क्या दुनिया से पाप निवारण हो गया और पुण्य प्रकट हो गया है? इसलिए अब ऐसी स्थिति आ गयी है कि पुण्य के साथ असहयोग करने का प्रसंग है। या फिर यह सोचना चाहिए कि क्या हम इस सरकार के उद्देश्यों को एकदम खराब, उसकी नीयत को बिलकुल खराब ही मानते हैं और उसके साथ सहयोग करना पाप समझते हैं? अगर हम इस निर्णय पर न पहुँचे हों, तो सम्पूर्ण असहयोग की भाषा हमको शोभा नहीं देती। इस प्रकार की भाषा हमारे विचार को तोड़ती है। इसे मुक्ति का विचार नहीं, बल्कि स्वैर विचार बना देती है। शासन-मुक्ति स्वैर वर्तन नहीं है।

दूसरी बात मैं आपके सामने यह रखना चाहता हूँ कि हम यह देखें कि हमें अपने अन्दर भी ताकत का कुछ एहसास है या नहीं? अपनी ताकत भी नम्रता के साथ पहचाननी होती है। वह नम्रता से ही पहचानी जाती है। नहीं तो पहचानी नहीं जाती। हममें कौन-सी ताकत है आज? क्या हम कोई राजनीति के पण्डित हैं? क्या लोगों पर जिनकी सत्ता जमी हुई है, ऐसे नेता हैं हम? क्या कोई बड़ी भारी शक्तियाँ, जैसे सम्पत्ति की शक्ति, शस्त्र की शक्ति, साहित्य की शक्ति—इस प्रकार की शक्तियाँ हमारे साथ हैं? हमारी ताकत किस चीज में है, यह हम

पहचानें। हमारी शक्ति इस बात में है कि आज कुल दुनिया अहिंसा की तरफ झुक रही है। हम वास्तव मे अहिंसक नहीं हैं। लेकिन अहिंसा का नाम लेनेवाले हैं। इसलिए लोग हमारी तरफ आकर्पित होते हैं। वही हमारी ताकत है। दुनिया ईश्वर को मानती है। इसलिए ईश्वर का नाम लेनेवाले भक्त की ओर आकर्षित होती है। हमारे आचरण में अहिंसा नहीं है। हम केवल अहिंसा का नाम लेनेवाले उसके भक्त हैं। दुनिया अहिंसा को चाहती है, इसलिए हम कहते हैं कि आज के समय की आकाक्षा मे हमारी शक्ति है। इसलिए हमको कालतत्त्व का ध्यान रखना पडता है। हम वास्तव मे अहिंसक होते, तो काल का ध्यान हमको रखना नहीं पडता। हमारे कुछ मित्र कहते हैं और वे ठीक कहते हैं कि बदलते हुए काल के अनुसार हमें अपने सिद्धान्त नहीं बदलने चाहिए। हमारे सम्पूर्ण जीवन मे अगर अहिंसा होती, तो काल का ध्यान हमको नहीं करना पडता। काल ही हमारी तरफ ध्यान देता और सारे जगत् के मानव हमसे मॉग करते कि कृपा करके आप मार्ग-दर्शन कीजिये। आप थोडे-से ही लोग हैं, लेकिन आपका दिमाग अपनी जगह पर है। हम बहुत ज्यादा तायदाद में हैं, लेकिन अपना दिमाग खो बैठे हैं। इसलिए कृपा करके हमारा मार्ग-दर्शन कीजिए। आज वैसी परिस्थिति आपकी नहीं है। आज वे आपके पास इसलिए आते हैं कि आप कम-से-कम अहिसा का नाम तो ले रहे हैं। तो हम अहिसक अब तक नहीं बने हैं। लेकिन अहिंसा का नाम लेते हैं, इसलिए भक्ति-मार्गी हैं। भक्ति-मार्गियों को जितनी ताकतें उनके साथ आना चाहती हैं, उनका विश्वास करना चाहिए और उनका स्वागत करना चाहिए। उसके बिना भक्ति कैसे बढ़ेगी ? हमारी सिर्फ अहिंसा-भक्ति है। न हमारा जीवन अहिंसक बना है, न अहिसा के किसी प्रयोग का हमको अनुभव है। बल्कि अगर हम जरा कठोर आत्म-परीक्षण करें, तो जो लोग अहिंसा का बिलकुल नाम ही नहीं लेते उनके हृदय में जितनी शुद्धि होती है, उससे अधिक शुद्धि का दावा हम नहीं कर सकते। चाहे हम अहिसा का नाम भले ही लेते हों। यह तो अन्तर निरीक्षण करने से ज्ञात होगा। वे लोग सभ्यता के कारण भले ही कहते हों कि आप कुछ शुद्ध हैं, कुछ ऊँचे हैं। लेकिन हमको समझना चाहिए कि नम्रतापूर्वक हमको ऊँचा समझकर वे स्वय ऊँचे उठते हैं। हम यदि अपने को उनसे ऊंचा

समझने लगें, तो हम नीचे गिरनेवाले है। उनके हृदय की शुद्धि होगी और हमारे हृदय अशुद्ध होंगे। हमको यह पहचानना चाहिए कि अभी हमारी बहुत अन्त शुद्धि होना बाकी है।

हमने अहिंसा मे श्रद्धा रखी। उसका नाम ले लिया। इतने से जो कुछ मत-परिवर्तन हुआ है, उसका हमको भान होना चाहिए। आज हम यह देखना चाहते हैं कि हमारी कृति का क्या फल हो रहा है। हमारी कृति का क्या फल होनेवाला था, जो हम उसका हिसाब करना चाहते है? हमने ऐसी कौन-सी कृति की है, जिसके परिणामों का हम मूल्याकन करें? कृति तो तब मानी जायगी, जब हम शुद्ध अहिसा से कोई काम कर सके हों। हम तो सिर्फ अहिंसा का नाम लेकर ही काम कर सके हैं। इससे ज्यादा दावा हमारा नहीं है। ऐसी हालत मे हमारे लिए अपनी कृति का मूल्याकन करना फिजूल है।

परन्तु दुनिया मे जो प्रक्रिया काम कर रही है, उसका महत्त्व हमको अच्छी तरह समझना चाहिए। आप देखिये कि दुनिया किस तरफ को मुड रही है। जहाँ तक हिन्दुस्तान का तअल्लुक है, मैं आपके सामने उसका विवेचन करना चाहता हूँ। दूसरे देशों का विचार करके भी मुझे ऐसा ही लगता है कि हिन्दुस्तान के लिए जो लागू है, वह उनके लिए भी लागू है। पर अभी मैं अपनी बात हिन्दुस्तान के लिए ही सीमित रखना चाहता हूँ। हिन्दुस्तान के सारे राजनैतिक पक्ष और उन पक्षों से भिन्न जनता भी अहिसा की तरफ दौड़कर आ रही है। यह लक्षण मै देख रहा हूँ। यहाँ मैं इसका विस्तार नही करूँगा। अगर बोलने की इच्छा हो जाय, तो शायद सम्मेलन मे इस विषय मे कुछ कहूँगा।

पंचवार्षिक योजना का एक कार्यक्रम हिन्दुस्तान में चला। हमको मानना चाहिए कि वह अच्छे उद्देश्य से ही चला। उसमे कुछ कामयाबी हुई, लेकिन कहने लायक कामयाबी नहीं हुई। जितना खर्च हुआ, उसकी जितनी धूम मची, उसमे जितनी ताकत खर्च हुई, उस हिसाब से उसका नतीजा नही आया। वे लोग भी यह जानते हैं, मानते है और कबूल करते हैं। इसलिए अब उनके मन मे ऐसी बात पैदा हुई कि हमारी योजना का दूसरा कोई आधार होना चाहिए। कम्युनिटी प्रोजेक्ट हो या दूसरी कोई तजवीज हो, उसके लिए ऐसा कोई आधार चाहिए कि जिससे जनशक्ति और नैतिकशक्ति उसमे दाखिल हो जाय। यह आवश्यकता उनको

मालूम हुई। इसलिए जो इतनी बड़ी भारी सरकार और उसके नेता यह कहने लगे कि सरकारी कार्यकर्ताओं और सर्वोदयी कार्यकर्ताओं मे सहयोग होना चाहिए। सहयोग की बातें वे करने लगे इसके पीछे हमारा कोई विशेष पुरुषार्थ या शक्ति थी, यह मानना फजूल है। परन्तु परिस्थिति किस तरह आपके विचारों के अनुकूल हो रही है, इसकी तरफ आपका ध्यान जाना चाहिए। अगर यह बात आपके ध्यान में नही आती है, तो उसका अर्थ यह होगा कि परिस्थिति तो हमारे अनुकूल हो रही है, लेकिन हम ही उसके लिए प्रतिकूल बन रहे हैं। याने परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाने के बदले उसको प्रतिकूल बनाने में ही हमारा पुरुषार्थ खर्च हो रहा है।

सामनेवाला हमसे प्रत्यक्ष कह रहा है कि हम गरीबों की मदद करना चाहते हैं, लेकिन कर नहीं पाते। हमारा काम करने का ढग कुछ ऐसा बन गया है कि उस ढंग से उन्ही लोगो को मदद मिलती है, जो मदद को अपनी तरफ खींच सकते हैं। गरीब तो बेचारे मदद खींच नही सकते हैं। इसलिए हमारी आर्थिक मदद से उनका कोई फायदा नहीं होता। जब सामनेवाला ऐसी बात कहता है, तो । हम यह कहेगे कि तुम्हारा रवैया ठीक नही है, और तुम्हारे साथ सहयोग करने से शासन-मुक्ति डूब जायगी। उस हालत में जब कि वह कहता है कि हमारे उद्देश्यों की पूर्ति नही हो रही है, आपको उसे उन उद्देश्यों की पूर्ति का उपाय बतलाना चाहिए। आप उससे कहे कि हम आपकी मदद करने को तैयार हैं। हां, आप ऐसे ढग से उसमे न पडे कि सारा-का-सारा बोझ आपको उठा लेना पडे। यह दूसरी बात है। उनके साथ सहयोग किस ढंग से होना चाहिए, हमारे कार्यक्रम का कितना अंश उनके कार्यक्रम के साथ मिलाया जा सकता है और कितना अश अलग ही रखना होगा? यह बात अलहदा है। यह सब हमको सोचना होगा और हम सोचेंगे भी। परतु जब कि वह एक कदम आगे बढ़ रहा है, उस वक्त हम झट से एक कदम पीछे हटेगे, तब तो हमारे और उसके बीच जो फासला है, उसे बनाये रखने की युक्ति होगी वह। वह जब हमारी तरफ को आ रहा है, उस वक्त अगर हम पीछे हटते हैं, तो हम ही अतर रखनेवाले साबित होते हैं। उसको अपने नजदीक आने देने मे ही हम खतरा समझते हैं, तो हम कुश्ती के लिए मल्ल बनने लायक ही नहीं है। हाथ-से-हाथ मिलाने में ही कुश्ती की विशेषता है।

हाथ-से-हाथ मिलाने में ही यह डर न हो कि मैं उखड़ जाऊँगा और वह मुझे चित्त कर देगा। अपने लिए अगर हमको बहुत अधिक आत्मविश्वास न हो, तो क्षम्य है। क्योंकि हम कोई बड़े नहीं है। लेकिन अपने विचारों के लिए अगर हमें आत्मविश्वास न हो, तो हम कहीं के नहीं रहेंगे। जिन विचारों ने हमें प्रेरित किया है, जिन विचारों के कारण सामनेवाला हमारी कद्र कर रहा है, उन विचारों के लिए तो विश्वास होना चाहिए। हमको मोह-माया ग्रास लेगी, इस डर से हम उनके नजदीक नहीं जायेंगे, तो क्या मोह-माया से अलिप्त रह सकेंगे? मराठी में एक कहावत है, जिसका हिन्दी में अर्थ है बँधी मुट्ठी सवा लाख की। मुट्ठी बँधी हुई हो, तो पता नहीं चलता कि उसके भीतर क्या-क्या है? तो क्या ऐसी बँधी मुट्ठी रखने से हम मोह-माया से मुक्त वैरागी साबित होंगे? सहयोग के विषय में हमारे मन में जो हिचक है, उससे अपने विचारों के प्रति हमारी निष्ठा कम होती है। मैं यह नहीं कहता कि आप अपने ऊपर बहुत ज्यादा भरोसा करें। उतने विश्वास के लायक हम शायद हों, शायद न भी हों। लेकिन हमें अपने विचारों के लिए तो विश्वास होना चाहिए। हमारे मन में यह निश्चय होना चाहिए कि हमको सही विचारों ने प्रेरित किया है। उन सही विचारों ने ही सरकारी योजनाओं के दोष हमको दिखलाये हैं।

इन दिनों एक बहुत बड़ी बात, बहुत दफा पंडित नेहरू की जबान से आपने सुनी होगी। लोग कहते हैं कि वह शख्स अब जरा आस्तिक बनने लगा है। वह पहले से ही सच्चे माने में आस्तिक है। यह अगर हम समझते नहीं हैं, तो वह हमारी मूर्खता है। आजकल वे बार-बार कहते हैं कि हिन्दुस्तान में आज आध्यात्मिक आधार की जरूरत है। यह उनकी कोई नयी सूझ है या पहले से वे यह चीज जानते नहीं थे, ऐसी कोई बात नहीं है। परंतु उनके मन में एक विश्वास था कि भारत आध्यात्मिक भूमि तो है ही, यहां आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि है। इसलिए पश्चिम के अर्थशास्त्र के साथ हम जोरों से आगे बढ़ेंगे, तो भी हम कुछ खोयेंगे नहीं। क्योंकि हमारी आध्यात्मिक बुनियाद तो पक्की है ही। उसके ऊपर यह नया अर्थशास्त्र खड़ा होगा। लेकिन अब उनके ध्यान में आया कि ऐसा मानने में खतरा है। आध्यात्मिकता थी हमारे पूर्वजों के पास। यह आध्यात्मिक देश है, ऐसा कहना हमको अच्छा लगता है। लेकिन अब वह

आध्यात्मिकता गायब हो गयी है। वह खो गयी है। अब उसकी सख्त जरूरत मालूम हो रही है। इसलिए पंडित नेहरू बार-बार कह रहे हैं कि आध्यात्मिक बल का आधार हमको चाहिए। मैं कहना यह चाहता हूँ कि एक प्रकार की चाह हमारे विचारों के लिए परिस्थिति मे पैदा हो रही है। उन विचारो के लिए आदर पैदा हो रहा है। लका के एक सिंहली अखबार में एक भाई ने लेख लिखा कि आज कम्युनिस्टों का जो रवैया बदल रहा है, उसमे बाबा की केरल मे जो भूदान-यात्रा हुई, उसका भी एक भाग है। ऐसी कोई बात मैंने कभी सोची ही नहीं थी। परतु जब कोई ५-७ दिन पहले मेरे पास उस लेख का कटिंग आया, तब मै सोचने लगा कि क्या दरअसल ऐसा हुआ है? मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं हूँ। लेकिन उस लेख ने तटस्थ भाव से कुछ दूरी पर से देखकर यह बात कही। इसलिए मै सोचने लगा। फिर भी मैं उसकी बात मानने के लिए तैयार नही हूँ। मैं देखता था कि केरल की जनता काफी प्रभावित थी। मेरी जो सभाएँ होती थीं, उनमें किसी पार्टी ने विरोध नहीं किया। जो सवाल पूछते थे, वे बहुत अच्छे होते थे। बहुत बुद्धियुक्त सवाल होते थे। मेरे कई व्याख्यान उन सवालो के जवाब में हुए। मै देखता था कि उन पर काफी असर होता था। इतना तो मैं मानता था, क्योंकि मैंने प्रत्यक्ष देखा ही था कि केरल के बुद्धिमान् लोगों पर कुछ असर हुआ है। लेकिन कम्युनिस्टो की नीति मे जो एक परिवर्तन् सा आ रहा है, उसमे भी मेरी यात्रा का कुछ हिस्सा होगा, यह बात मेरे दिमाग मे नहीं थी। लेकिन उस सिंहली पेपर में पढ़कर मैं सोचने लगा कि सारी दुनिया मे जो अनेक ताकतें काम करती हैं, शायद उनमें से एक छोटी-सी ताक्त यह भी हो। खैर, जो भी हो, कम्युनिस्ट पार्टी ने जाहिरा तौर पर यह ऐलान किया है कि हम भी शातिमय उपायों से काम लेना चाहते हैं। उनकी घोषणा में अविश्वास कर हम उनको हिंसक बनाना नहीं चाहते। हिंसा को तो मानते ही हैं वे पहले से। लेकिन मै उनको हिंसक क्यों बनाऊँ, जब कि वे अहिंसा की बात कह रहे है। तो क्या मैं उनसे कहूँ कि तुम्हारी बात गलत है, तुम झूठ बोलते हो। यह कहकर उनका जो पुराना हिसा का रवैया था, उसको मैं और मजबूत बनाऊँ? यह कोई अहिंसा का तरीका होगा? राजनीतिज्ञ उनकी ईमानदारी पर भरोसा करने को भले ही तैयार न हों, वे

भले ही कहते रहें कि दाल में कुछ-न-कुछ काला है, मैं उनको दोष नहीं देता क्योंकि वे इस तरह से सावधानी रखने को ही राजनीतिज्ञता मानते हैं। लेकिन हमें जरा गहराई से जांच-पड़ताल करनी चाहिए। अभी ख्रुश्चेव ने एकतरफा ऐलान किया है कि हम आणविक अस्त्रों के प्रयोग नहीं करेंगे। उसकी नीयत में अमेरिका को विश्वास नहीं है। यह तो होता ही है। राजनीतिज्ञ अविश्वास को ही बुद्धिमानी समझते हैं। इसलिए प्रतिपक्षी का अविश्वास करना वे अपना कर्तव्य मानते हैं। जब उसकी प्रामाणिकता का पूरा-पूरा दर्शन होता है तब भी विवेकपूर्वक विश्वास करते हैं। उससे पहले बिलकुल विश्वास नहीं रखते। यह उनकी नीति-निपुणता होती है। मैं उनको दोष नहीं दूंगा। परंतु यदि आप और मैं कम्युनिस्ट पार्टी के इस ऐलान को मिथ्या मानेंगे, तो मैं आपको और अपने को दोष दूंगा। अरे भाई, कम-से-कम मुंह से कहने तो दो। तुकाराम ने लिखा है—

'नसे जरि मनि न सो परि वाचिर वरि वसो।'

मन में न हो तो न हो, लेकिन वाचा में तो हो। वे लोग जाहिरा तौर पर सारे हिन्दुस्तान से कह रहे हैं कि हम शांतिमय मार्ग अपनाने जा रहे हैं। उनका हमें स्वागत करना चाहिए।

मुख्य चीज जो मुझे कहनी थी, वह यह है—यह जो सब हो रहा है, उसमें हमारी कोई कर्तव्य-शक्ति नहीं है। दुनिया में हमारे विचार काम कर रहे हैं। वे हमारे जरिये काम नहीं कर रहे हैं। उनका अपना स्वतन्त्र जरिया है। वे हमको प्रभावित कर रहे हैं और दूसरों को भी प्रभावित कर रहे हैं। वे हमारे लिए अनुकूलताएँ पैदा कर रहे हैं। उन अनुकूलताओं का लाभ भी हमको मिलेगा, अगर हम श्रद्धा और हिम्मत के साथ आगे कदम बढ़ायेंगे। सरकार का पक्ष और दूसरे पक्ष सभी हमारे अनुकूल हो रहे हैं। वे अपनी-अपनी नीतियों के कारण एक दूसरे के प्रति अविश्वास रखने के लिए बँधे हुए हैं। वे भले ही एक-दूसरे पर अविश्वास रखें, परंतु हम सबका विश्वास करेंगे। जैसा कि गौड़पाद ने कहा था—

'परस्पर विरुद्धयन् तैरयं न विरुध्यते।'

आप द्वैती हैं, इसलिए एक-दूसरे का विरोध भले ही करें, परंतु हम अद्वैती हैं, इसलिए हमारा आपसे विरोध नहीं है। आप सब हमारे पेट में हैं। यह जो

गौडपाद ने कहा, उस तरह से हमको मन मे सोचना चाहिए। तब हमारे विचारों के लिए बहुत अनुकूलता होगी। शायद हम ही अपने विचारों के लिए पूरे अनुकूल साबित न हो। अगर हम अविश्वास से आरभ करेंगे, तो चारो तरफ अनुकूलता होते हुए भी हम ही अपने विचारों के लिए प्रतिकूल साबित होंगे। इस पर आप जरा सोचें। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आप लोगों के मन मे जो कुछ भिन्न विचार रहा है, उसका मैं आदर करता हूँ। उसकी कदर करता हूँ। इसलिए मेरे इन सुझावों का असर होना चाहिए, ऐसी अपेक्षा मेरे मन मे नहीं है। परंतु इसका चिंतन होना चाहिए ऐसी अपेक्षा है।

और एक बात कहकर मैं इस भाषण को समाप्त करूँगा। निरी हिंसा, कानून और करुणा ये तीन चीजें पुराने जमाने से लोगों के सामने रही हैं। एक तरफ केवल हिंसा और दूसरी तरफ संपूर्ण करुणा के बीच में यह कानून खडा है। कानून के मूल में जो विचार है, वह अहिंसक है। इस बात की तरफ मैं इस समय आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। अपने हिंदुस्तान के ही नहीं, सारी मानव-जाति के जो कानून हैं, उनकी बात मैं करता हूँ। कानून क्या कहता है? कहता है कि दस गुनहगार छूट जायें तो भी हर्ज नहीं है, लेकिन एक बेगुनाह को भी सजा नहीं मिलनी चाहिए। यह कानून का एक बड़ा भारी उसूल है। गुनहगार को 'बेनिफिट आफ डाउट' संदेह का लाभ दिया जाता है। एक शख्स ने खून किया है। लेकिन कागज पर जो सबूत आये हैं, उनमे एक डिग्री शका के लिए गुजाइश है। निन्यानवे बातें सही हैं। लेकिन एक जगह शका के लिए गुजाइश है। एक प्रतिशत प्रमाण में कसर है, तो भी उसको फाँसी की सजा नहीं देते। यह जो सिद्धान्त कानून के पीछे है, वे मानव की अहिंसा के लिए जो निष्ठा है, उसीके कारण हैं। मनुष्य के बनाये हुए कानूनों के मूल मे जो श्रद्धा है, वह अहिंसा की श्रद्धा है। इसलिए कानून की भी अगर आपको कोई मदद मिलती है, तो आपको उससे परहेज नहीं करना चाहिए। हिंसा को हम जिस श्रेणी मे डालते हैं, उस श्रेणी में कानून को डालना नहीं चाहिए। कई कानून ऐसे हैं, जो गलत हैं। कई कानून ऐसे हैं, जो हिंसा मूलक हैं। ऐसे कई कानून हिंदुस्तान मे और विदेशों में आज भी मौजूद हैं। लेकिन फिर भी कानून के मूल में जो श्रद्धा पडी है, वह अहिंसा की है। इसलिए अगर कोई अच्छी चीज कानून कर रहा है, आपको मदद दे रहा है, तो यह न कहिये

कि यह कानूनी मदद है, हमको नहीं चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि अब तो भूदान ऐक्ट बन गया है, ग्रामदान ऐक्ट बन रहा है, अब तो सरकार की ही बात चलेगी। हमारे आंदोलन पर कानून की मुहर लग गयी, तो मानो वह कुछ कलंकित हो गया। तो क्या इस तरह कानून से हमारी अहिंसा में कोई कमी आती है। यह अहिंसा में कमी नहीं आ रही है, बल्कि अहिंसा का आक्रमण हो रहा है। यह भी हमारे ध्यान में नहीं आ रहा है। जमीन पर समुद्र का आक्रमण हो रहा है। मिट्टी खिसक-खिसककर पानी में मिल रही है। आक्रमण के कारण उस मिट्टी का रंग जरा पानी मे लग रहा है, तो समुद्र समझता है कि जमीन का ही मुझ पर आक्रमण हो रहा है। क्या हम भी ऐसा समझेंगे?

मद्रास की असेम्बली में ग्रामदान का जो बिल पास हुआ है, उसका इतिहास बड़ा अद्भुत है। मद्रास की असेम्बली में एक बहुत कट्टर विरोधी पक्ष है, द्रविड़ मुन्नेत्र कजगम्। हिन्दुस्तान मे दूसरी जगह जितने पक्ष हैं, वे सब तो वहाँ है ही। उनके अलावा वहाँ यह एक परिशिष्ट पक्ष है। इन ५-६ साल मे जो बिल आये, उन पर ऐसा विवाद होता था जैसा मानो कोई लड़ाई हो रही हो। सभा-भवन लड़ाई का मैदान बन गया था। लेकिन अखबार का संवाददाता लिखता है, बड़े आश्चर्य के साथ कि जहाँ आपका भूदान और ग्रामदान का बिल आया, वहाँ एक शान्ति छा गयी। मानो सब लोग किसी ऋषि के आश्रम में बैठे हों। सब लोगों ने एक मत से उसको सम्मति दे दी। क्या आप समझते हैं कि यह घटना कुछ दिशा नहीं दिखाती कि दुनिया का विचार किधर जा रहा है? क्या हम इस कुल दिखावे को ही वंचना समझें और मिथ्या समझें। इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि कानून आज आपको अनुकूल हो रहा है, तो उसके साथ असहयोग करने में आप अपने ही पाँव पर कुल्हाड़ी चलाते हैं।

पंढरपुर,
२८-५-'५८

परिशिष्ट : २

प्रदर्शनी का उद्घाटन

[विनोबा]

सर्वोदय-समाज के सम्मेलन के साथ खादी-ग्रामोद्योगो का यह जो प्रदर्शन हो रहा है, वह बहुत ही लाभदायी है। इस काम से मेरा सम्बन्ध करीब चालीस साल से है। इसलिए इसका उद्घाटन करने मे मुझे कोई संकोच नहीं होता, बल्कि उत्साह और आनन्द होता है। आप जानते हैं कि जितने भी काम दुनिया में होते हैं, अर्थात् उत्पादन के उद्योग पाँच उँगलियों से होते हैं और ग्रामोद्योगों में तो पाँच उँगलियाँ ही प्रधान होती हैं। उनकी मदद मे उपकरण तो आते हैं, लेकिन वे उपकरण के नाते ही आते हैं। यह जो करण और उपकरण का विवेक है, वही ग्रामोद्योग और यन्त्रोद्योग का विवेक है। ग्रामोद्योगों में करण प्रधान होते हैं और उपकरण गौण होते हैं। आँख प्रधान होती है, चश्मा गौण होता है। हाथ प्रधान होता है, औजार गौण होता है। पाँव प्रधान होता है, सायकल गौण होती है। जहाँ पर उपकरण ही प्रधान रहता है, वह यंत्रोद्योग है। वैज्ञानिक युग मे कुछ काम यान्त्रिक तौर पर होना लाजमी है। उद्योग उपकरण प्रधान हो जाय, तो भी करण के विना काम नहीं चलेगा। जहाँ हमको दूर के नक्षत्र देखने हैं, वहाँ दूरवीन प्रधान हो जायगी। लेकिन आँख से ज्यादा योग्यता उसकी नहीं हो सकती। अगर आँख ही न हो, तो दूरवीन काम नही आयगी। दूरवीन के विना आँख सारे तारों को देख नहीं सकती। परन्तु इसलिए उपकरण का महत्त्व बढ़ जाय, तो भी मूलकरण का महत्त्व कायम ही रहता है। ग्रामोद्योगों में उपकरण बहुत गौण होते है और यन्त्रोद्योगों में उपकरण ही महत्त्व पाते हैं।

भारत जैसे विशाल देश मे और इस विज्ञान के जमाने मे यह आग्रह रखना कि हर काम यन्त्रोद्योगों से ही होना चाहिए या हर काम ग्रामोद्योगों से ही होना चाहिए, आग्रह मात्र रहेगा। सत्य का आग्रह वह नहीं होगा। सत्याग्रह तो यही होगा कि हम समझें कि इस देश मे कुछ काम तो यन्त्रोद्योगों से होना

अनिवार्य है और कुछ काम ग्रामोद्योगों के द्वारा होना अनिवार्य है, यंत्रोद्योग और ग्रामोद्योग में विवेक करें और दोनों की उचित व्यवस्था करें। दोनो के क्षेत्र हम बाँट दे—इतना-इतना क्षेत्र ग्रामोद्योगों के लिए खुला रहनाचाहिए, इतना-इतना क्षेत्र यंत्रोद्योगों के लिए खुला रहना चाहिए और अमुक इतना क्षेत्र ऐसा भी होगा कि जिसमे दोनों का कुछ दखल रहेगा। लेकिन उनमें प्रति-योगिता नहीं रहेगी। इस प्रकार के क्षेत्रों का विभाजन करके ही भारत जैसा विशाल देश इस विज्ञान-युग मे आगे बढ़ सकता है, उत्पादन को बढ़ा सकता है, याने चीजों की कमी को दूर कर सकता है। बेकारी की दृष्टि मे अगर हम सोचे, तो इस देश के बहुत सारे विचारक जिनको हम मानते हैं, ऐसे विचारक अब इस विचार के करीब-करीब आ रहे हैं। यह सर्वोदय-विचार की बहुत बड़ी विशेषता है कि इस विचार ने भिन्न-भिन्न अर्थशास्त्रज्ञों को एक-दूसरे के नजदीक लाया है और सबको उसने एक प्लेटफार्म पर खड़ा कर दिया है।

अब इस देश मे बहुत ज्यादा आर्थिक विवाद नहीं रहा है। कांग्रेस पार्टी राजनीति पर सोचनेवाली और अर्थशास्त्र पर सोचनेवाली एक पार्टी है। उन्होंने वेलफेअर स्टेट (कल्याण राज्य) की कल्पना अपने सामने रखी है। दूसरी सोशलिस्ट, पी० एस० पी० आदि पार्टियां हैं, जो समाजवादी अर्थ-रचना करना चाहती हैं। तीसरी कम्युनिस्ट पार्टी है। यही तीन मुख्य पार्टियाँ हैं, जो कि अर्थशास्त्र के विषय पर कुछ-न-कुछ चिंतन करती हैं। सर्वोदय भी एक जीवन-विचार होने के नाते अर्थशास्त्र पर भी सोचता है, समाज-शास्त्र पर भी सोचता है और मुख्यतया लोक-जीवन की दृष्टि से हर विषय का चिंतन करता है। बहुत खुशी की बात है कि जहाँ तक इस देश के प्लानिंग का सवाल है, ये बहुत सारे राजनीतिक पक्ष बहुत नजदीक आ गये हैं। उनको नजदीक लाने का श्रेय किसको है, यह तो मैं नहीं जानता। अरे, यह जानने की कोशिश क्यों करते हो? यह जो प्रकाश दिखाई दे रहा है, किस दीपक का है? वह महान् दीपक तो दूसरा ही है। वह इतना बड़ा दीपक प्रकट हुआ है, सूर्यनारायण। अब उसके सामने क्या होगा इन छोटे-छोटे दीपकों का? इसलिए इसका श्रेय न तो हमारा है, न आपका है। हम नहीं कह सकते किसका है। भारत की अपनी समस्याएँ हैं। इन समस्याओं का जो गंभीरता से प्रामाणिक चिंतन करेंगे, उन सबको वे समस्याएँ नजदीक लाती हैं। और उनके

बीच के मतभेद जो पुस्तक-पठन से बहुत ज्यादा पैदा होते हैं, वे जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं। इस वास्ते इसका श्रेय अगर किसी चीज को है, तो विज्ञान-युग को है। भारत की अपनी विशेषताओं को और भारत की अपनी समस्याओं को ही इसका श्रेय है। लेकिन, फिर भी अगर मैं नम्रतापूर्वक यह दावा करूँ कि इसका कुछ श्रेय सर्वोदय-विचार को भी है, तो शायद वह गलत नहीं होगा। याने सर्वोदय-विचार इन सब चिंतन करनेवालों को, जो भिन्न-भिन्न ढग से चिंतन करते हैं, एक प्लेटफार्म पर लाने में यशस्वी हुआ है। और वह जो एक बहुत बडी घटना येलवाल में हुई थी, उसके बाद नजदीक-नजदीक आने की यह प्रक्रिया एक-दूसरे के चिंतन मे जो फर्क हैं उन फर्कों को समझने की और मिटाने की यह जो प्रक्रिया है और भी अधिक वेग से चलने लगी है यह कहने में मुझे खुशी होती है।

अब इस विषय में बहुत ज्यादा विवाद नही रहा है। कुछ तफसील की बातें, कुछ एफसेस, इस बात पर जोर देना है या उस बात पर जोर देना है ऐसा कुछ एफसेस का फर्क रह गया है। और इतने बडे देश मे वह जरूर रहेगा। लेकिन मैंने कहा था कि ग्रामोद्योगों में विशेषतया पाँच उँगलियों का महत्त्व है। तो वह पाँच उँगलियाँ कौन-सी हैं, यह हमको जरा समझ लेना चाहिए। मैं कहना चाहता हूँ कि एक उँगली, जिसे हम संशोधक कहते हैं वह वर्ग है। अगर शोधक-वर्ग खडा न हो, तो फिर ग्रामोद्योग बढ़ नही सकता है। आपने देखा कि तकली के भी शोध हुए, चरखे के शोध हुए, फिर पिंजन के भी शोध हुए। बुनाई-चुनाई के शोध हुए। ऐसा होते-होते बुनाई के भी कुछ शोध हुए। अब अम्बर का शोध हुआ और इस तरह शोध की यह प्रक्रिया चलती ही रही है। एक बहुत बडी चेतना देश को मिली है, जिसके कारण एक शोधक-वर्ग बरसों से ग्रामोद्योगों के, खादी आदि के शोधों में लगा है। यह शोधक-वर्ग बढ़ना चाहिए। उसकी बुद्धि दिन-ब-दिन तेज होनी चाहिए। परिस्थिति के साथ सम्पर्क रखकर कौन-से शोध उपयुक्त होंगे और उन शोधों की क्या मर्यादा होगी, यह सब सोच करके शोध हमेशा जारी रहने चाहिए। यह हमारी अँगुली महत्त्व की है, इसके बिना काम नहीं हो सकता है। दूसरी एक उँगली है, सेवक-वर्ग। यह सेवक-वर्ग चालीस साल से कुछ-न-कुछ सेवा करता ही आया है। लेकिन वह सेवा नाकाफी रही है।

इतने बडे छत्तीस-सैंतीस करोड लोगों की सेवा के लिए एक मुट्ठीभर सेवक काम करते हों, यह पर्याप्त नहीं है। बहुत-से सेवक चाहिए। मेरी तो माँग है कि कम-से-कम पाँच हजार आदमियों के लिए एक तो सेवक चाहिए ही। इस तरह से मैं करीब एक लाख सेवकों की माँग करता हूँ। यह बहुत ज्यादा माँग नहीं है। मैं समझता हूँ कि बहुत ही छोटी-सी यह मेरी माँग है, इस काम की व्यापकता के खयाल से। ऐसा एक सेवक-वर्ग इसके लिए चाहिए जिसके हृदय में करुणा हो। जैसे शोधकों की बुद्धि में तेजस्विता चाहिए और जमाना पहचानने का अक्ल चाहिए, उसी तरह सेवकों के हृदय में करुणा चाहिए। वह करुणा से ओतप्रोत हों, तो उनको कुछ थोडा-सा, जिसको गुजरात में 'पेटियुं' है कहते हैं, (पेट के लिए थोडा कुछ) खाने के लिए मिलेगा। परंतु वह थोडा ही मिलेगा। ज्यादा नहीं मिल सकता। जब तक कि इस देश की जनता का जीवन-मान ऊँचा उठाने में हम समर्थ नहीं हो रहे हैं, तब तक हमारे सेवकों को एकादशी और द्वादशी के बीच रहना पड़ेगा। यह एकादशी और द्वादशी के बीच की जो हालत है, वह अपने देश के लिए कुछ साल रहनेवाली है। हम चाहते जरूर हैं कि अच्छी द्वादशी संपन्न हो, लेकिन फिर भी उसमें जरा समय लगनेवाला है।

इस बीच में जो कुछ सेवकों को मिलता है थोडा-सा, उस पर उन्हें प्रसन्न रहना पडेगा। वह प्रसन्नता कहाँ से आयेगी? उसका झरना, उसका मूलस्रोत, उसका उद्गमस्थान कहाँ है? करुणा में है। अगर हमारे हृदय में करुणा भरी हो, तो जो कुछ थोड़ा हमको मिलता है, उसको खाते हुए हमको प्रसन्नता होगी कि शायद दुनिया में इतना खाने का भी हमको अधिकार नहीं था, पर हमने खा लिया है, क्योंकि दुनिया में ऐसे लोग पड़े हैं, जिनको इतना भी हासिल नहीं है। इस वास्ते खाते हुए भी हृदय में करुणा रहेगी और जो कुछ मिला हो, उससे प्रसन्नता होगी। यह हमारे लिए कम नहीं है। खैर! ऐसे सेवापरायण, करुणा-प्रधान सेवकों का वर्ग दूसरी अँगुली है।

उसकी तीसरी अँगुली है, विचार-प्रचार। यह खादी और यह ग्रामोद्योग एक विचार है। यह खादी सिर्फ कपडा नहीं है। आपने देखा है, शराब पीने की चाल हिन्दुस्तान में कितनी जल्दी से बढी है, और बीडी-सिगरेट कितनी जल्दी से बढी है? तरह-तरह के विज्ञापन होते हैं। बिल्कुल लेटेस्ट जो आज मैंने पढ़ा,

वह मैं आपको सुनाता हूँ। वडा विचित्र है। इससे भी विचित्र और कई पढे है। लेकिन आज बीडी के लिए विज्ञापन पढा 'वीर शिवाजी वीडी'। अब हम क्या कहे? सत तुकाराम वीडी और सत ज्ञानेश्वर वीडी ही देखना वाकी रह गया है। इतनी सारी विज्ञापनवाजी चलती है। और बीडी फैल ही रही है। खैर, उससे भी अधिक तीव्रगति से खादी फैल सकती है। अगर उसके पीछे जो विचार है, वह लोगो के ध्यान में आये, इसलिए विचार-प्रचारको की एक सेना हमारे पास होनी चाहिए। खादी के मूल में अहिसा है। बिना अहिंसा के खादी और ग्रामोद्योगो का समर्थन करने का कोई जरिया नही। अगर देश यह जरूरत महसूस करे कि हमारे देश में युद्ध-सामग्री वढानी है, सारे देश को एक फौजी ढग से तैयार करना है, तो जिन धन्धो से वार-प्रोटेक्शन होगा याने युद्ध की परिस्थिति मे संरक्षण होगा, वे ही धन्धे चलेंगे। मुझे कबूल करना चाहिए कि खादी-ग्रामोद्योगो मे युद्ध-सरक्षण की कोई योजना नहीं है। लेकिन यह समझने की वात है कि खादी ग्रामोद्योगो मे शाति-रक्षण की पूर्ण योजना है। अगर दुनिया जरूरत महसूस करती है युद्ध की अपेक्षा शाति की, तो खादी और ग्रामोद्योगों की जरूरत महसूस करेगी और इसको एक सरक्षण के साधन के रूप मे मानेगी। दुनिया की आज की स्थिति मे अगर युद्धों से अपने देश को बचाना है और युद्ध की हालत में भी अपने देश की रक्षा करनी है, अर्थात् किसी भी हालत में हिन्दुस्तान के ग्रामीणों की रक्षा करनी है, उनका वचाव करना है, युद्ध को टालना है तो भी, और युद्ध के शुरु होने पर हिन्दुस्तान के देहातों का वचाव करना है तो भी, दोनों स्थितियों मे एक सरक्षण की योजना के तौर पर और शाति-संरक्षण के उपाय के तौर इसका महत्त्व मानें तभी खादी और ग्रामोद्योगो के लिए आशा है, अन्यथा नहीं है।

इसलिए विचार-प्रचारकों की सेना चाहिए। और उन विचार-प्रचारको के मूलभूत विचारो में एक विचार यह भी होना चाहिए कि हम यह ग्रामोद्योग और खादी इसलिए चाहते हैं कि हम शाति चाहते हैं और हम शाति इसलिए चाहते हैं कि विज्ञान के जमाने मे शाति अनिवार्य है। इस तरह खादी और ग्रामोद्योगों का विज्ञान के साथ वहुत अच्छी तरह से मेल है। विज्ञान को यंत्रों के साथ जोड़ना विचारों की उलझन करना है। इसमें विचार की सफाई नहीं है। यंत्र एक वात

है और विज्ञान दूसरी बात है। विज्ञान का आप जिस तरह से उपयोग करना चाहते हैं, वैसा कर सकते हैं। विज्ञान को किस दिशा में मोडना चाहिए, यह आत्मज्ञान बतलाता है। आत्मज्ञान आदेश करेगा और तदनुसार विज्ञान काम करेगा। किन-किन यंत्रों का आविष्कार करना चाहिए, इस विषय में विज्ञान सोचेगा। विज्ञान छोटे यंत्रों को भी बढ़ावा दे सकता है और बड़े यंत्रों को भी बढ़ावा दे सकता है। एक छोटी घड़ी बनाने के लिए जितनी वैज्ञानिकता की जरूरत है, वह कम नहीं है। इस वास्ते विज्ञान का बड़े-बड़े यंत्रों के साथ अनिवार्य सम्बन्ध जोड़ना नहीं चाहिए। बड़े-बड़े यंत्रों का भी स्थान है, यह मैं पहले ही कह चुका हूं।

इसलिए हमारे ग्रामोद्योग और खादी के कामों के लिए विचार-प्रचारकों की सेना एक महत्त्व की अँगुली है। इस प्रकार तीन अँगुलियां मैंने बतायीं। अब और दो अँगुलियां रह जाती हैं। एक अँगुली है, जिसे आप शासन और सत्ता कहते हैं, सरकार वह एक अँगुली है। आप देखते हैं कि इस काम में कुछ-न-कुछ सरकार की मदद होती है। वह अँगुली भी ठीक से काम करे और तय करे कि भारत का आयोजन किस प्रकार से करना है ? मुझे यह कहने में खुशी है कि जो हिचकिचाहट पांच-छह साल पहले थी, वह आज नहीं है और विचारों में जो मिश्रता पहले थी, उतनी आज नहीं रही है। कुछ विचारों की सफाई तो हुई ही है। पूरी हो गयी है, ऐसा तो मैं नहीं कह सकता। ऐसा मैं समझता नहीं हूं। लेकिन सरकार के विचारों की कुछ सफाई हो गयी है, ऐसा मैं देखता हूं। इसलिए वह अँगुली कुछ-न-कुछ काम कर रही है, कुछ मदद दे रही है। अधिक मदद वह दे सकती है, लेकिन उसके विचारों की सफाई जितनी होगी, उतनी ही मदद हासिल होगी।

पांचवीं अँगुली, जिसको मैं सबसे बड़ा महत्त्व देता हूं, वह है जनता। इस जनता को तैयार करने का काम पिछले सात साल से मैं सतत कर रहा हूं। यह आप लोगों को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि मैं क्या कह रहा हूं। खादी गांव में बने और गांव में न खपे, बम्बई में खपे, मद्रास में खपे, पूना में खपे। बम्बई, मद्रास, पूना के लोगों का तो कर्तव्य है कि देहात की चीजें वे खरीदें। और जो भर-भर के पाया उसका कुछ अंश देहात में वापस लौटायें। यह तो उनका कर्तव्य है ही। लेकिन उतने में काम नहीं होगा। स्वयं जनता को संकल्पपूर्वक इस काम को उठाना चाहिए। इसको

जनता के संकल्प का संरक्षण देना है। दुनिया मे कोई भी उद्योग विना सरक्षण के नहीं वढा है। उसको या तो सरकारी कानून का सरक्षण चाहिए, जिससे उसके खिलाफ जो चीजें खडी होती हैं, उनको रोका जाय। या फिर जनता का संरक्षण चाहिए, सम्मति चाहिए। मतलव सरक्षण चाहिए। दोनों तरफ से सरक्षण मिलता है, तो वहुत ही अच्छा है। लोगों की सम्मति का संरक्षण खादी-ग्रामोद्योगों को मिले, इसलिए जो कोशिश हो रही है, उस कोशिश का नाम है ग्रामदान। यह आप लोगों को अच्छी तरह समझना चाहिए। आप देखेंगे शायद—मैंने पूरा देखा नहीं—यहाँ प्रदर्शनी में खादी-ग्रामोद्योगों के मडपों मे, भूदान-ग्रामदान का मडप भी एकाध होगा। वह क्यों यहाँ है? इसलिए कि ग्रामदान वह वुनियाद डालता है, जिस पर खादी-ग्रामोद्योग की इमारत खडी होती है। ग्रामदान में ग्राम-संकल्प होता है कि हमारे गाँव का सारा आयोजन-नियोजन हम ही करनेवाले हैं। हमको सरकार से जो मदद मिलनेवाली है, वह अवश्य मिले और वाहर की जनता से भी मिले। परन्तु इसका पूरा आयोजन हम ही करनेवाले हैं संकल्पपूर्वक, इस चीज को ग्राम-स्वराज्य का एक अंग समझकर। जैसे देश के स्वराज्य के लिए—मेरे शब्द जरा कुछ कठोर मालूम होंगे, लेकिन उसकी कठोरता छोड दीजिये, उनके भीतर जो तत्त्व है, जो सार है, वह ले लीजिये—जैसे देश के स्वराज्य के लिए परदेशी माल पर वहिष्कार डाला गया था और स्वदेशी माल को उत्तेजन दिया गया था, उसी तरह ग्रामस्वराज्य के लिए जो कच्चा माल गाँव मे मौजूद है और जिसका पक्का माल गाँव में हो सकता है और जिसकी ग्रामवासियो को जरूरत है, उस प्रकार का माल वाहर से नहीं खरीदेंगे। अपने देश के होते हुए भी ऐसे ग्रामोणेतर उद्योग-धन्धों का वहिष्कार हमें करना पडेगा। मैंने कहा कि इस शब्द मे जरा कठोरता है, लेकिन वहिष्कार शब्द मैंने वह जो पुराना आन्दोलन चला, उसमे से नही लिया। अगर उसमे से ही वह शब्द आया होता, तो मैं उससे भिन्न ही शब्द इस्तेमाल करता। लेकिन यह शब्द मेरा पुराना शब्द है, अपने वाप की इस्टेट, अपनी वपौती है। स्पर्शान् कृत्वा वहिर् वाह्यान् चक्षुः चातरे भ्रुवो। भगवद्गीता ने वहिष्कार शब्द दिया। यह जो वाह्य स्पर्श है उसका वहिष्कार होना चाहिए। वह गीता मे इतना प्रकट नही है। स्पर्शान कृत्वा वहि, वहिष्कृत्वा। याने वहिष्कार करके। यह शब्द मैंने भगवद्गीता मे पाया। उस आशय को स्पष्ट प्रकट करने के वास्ते भगवद्-

गीता ने कहा है कि विषयों का बहिष्कार करो। यह बहुत पुराना शब्द है। जो चीजें हमारी ही हैं, फिर भी जो हमारे जीवन पर हमला करती हैं, उन चीजों को जीवन से बाहर रखो। बहिष्कार का मतलब उनको बाहर से भी हटाओ, यह तो नहीं है। बाहर उनका स्थान है। 'स्पर्शान कृत्वा बहिर्बाह्यान्'—विषयों का स्थान बाहर जरूर है। फिर भी उनको मन में स्थान नहीं देना है। इसलिए गीता ने कहा कि उनका बहिष्कार करो, उन्हें बाहर रखो। वैसे ही ग्रामीणों की तरफ से भी जो माल ग्राम में बन सकता है, ऐसे बाहर से आनेवाले माल पर बहिष्कार होना चाहिए। इस प्रकार ग्राम के आयात-निर्यात का नियंत्रण करने का अधिकार हरएक ग्रामदानी गाँव को होना चाहिए। ग्रामदानी गाँव का कम-से-कम अगर कोई अर्थ है, तो यह है।

पंढरपुर,
२८-५-'५८

परिशिष्ट : ३

सार्वजनिक प्रवचन

[विनोबा]

आज की यह सभा पंढरपुर निवासियों के लिए है। इसलिए आज मैं मराठी में बोलनेवाला हूँ। पंढरपुर के लोग हिंदी भी समझ सकते हैं, यह आशा तो मुझे है ही। फिर भी आज का अपना व्याख्यान मैं मराठी में ही देनेवाला हूँ। कल से और छह दिन मैं यहाँ हूँ। परन्तु हम सब लोग सर्वोदय-सम्मेलन के लिए आये हैं। इसलिए हम लोगों में से जिन्हें हिन्दी आती है, उनके व्याख्यान हिन्दी में होंगे। परन्तु आज का यह व्याख्यान मैं मराठी में दे रहा हूँ।

इस वर्ष अखिल भारत सर्वोदय-सम्मेलन महाराष्ट्र में करने का जब निश्चय हुआ, तो यह चर्चा चली कि वह किस जगह हो? उस वक्त पंढरपुर के लिए आग्रह मैंने ही किया। दूसरे कई स्थानों के नाम आये थे। परन्तु, यदि पंढरपुर में सम्मेलन हो सके, तो दूसरी जगह जाने के लिए मेरा चित्त तैयार नहीं था। परमेश्वर की कृपा इस समूचे देश पर और समस्त मानव-जाति पर है। इसलिए

इस देश में और अन्यत्र भी उसने समय-समय पर असंख्य सत्पुरुष भेजे और उनके उपदेशों से तथा सिखावन से हमारा यह मानव-समूह मानवता के रास्ते पर जैसे-तैसे चलता रह सका। अब इस विज्ञान-युग मे मनुष्य के हाथ मे कुछ ऐसे भयानक शस्त्रास्त्र आ गये हैं कि उन शस्त्रास्त्रों के कारण यह भय पैदा हो गया है कि क्या सारी मानव-जाति का संहार होगा ? इस समय आध्यात्मिकता की आवश्यकता इहलोक के जीवन के लिए भी पैदा हो गयी है। पारलौकिक दृष्टि से आध्यात्मिकता की आवश्यकता होती है, आत्मा की व्यक्तिगत उन्नति की दृष्टि से आध्यात्मिकता की आवश्यकता होती है, मुक्ति के लिए प्रयत्न करनेवाले साधकों को आध्यात्मिकता की आवश्यकता होती है। जो सारी बातें पुराने युग में थी वे आज भी शेष हैं। परन्तु, उनके अलावा अब ऐसी स्थिति आयी है कि इहलोक का जीवन बिताने के लिए ही आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। अर्थात् यह आज की भौतिक आवश्यकता है। इस युग में आध्यात्मिक ज्ञान को एक विलक्षण समर्थन मिलने-वाला है। ऐसी स्थिति मे यदि पढरपुर ही हमको नहीं बचायेगा, तो कौन बचायेगा ? महाराष्ट्र में अगर पढरपुर हमे शक्ति नहीं देगा, तो कौन देगा ? यह विचार मेरे मन मे आता है। इसलिए मैंने यह जगह पसन्द की है। मै नही मानता कि यह एक हिन्दुओं का तीर्थस्थान है। मै इसे एक आध्यात्मिक तीर्थ-क्षेत्र मानता हूँ। अध्यात्मविद्या का अधिकार हिन्दुओं को है, मुसलमानों को है, ईसाइयों को है—मानव मात्र को है। वह सबकी आवश्यकता है, इसलिए मैंने हिन्दुओं के तीर्थ-क्षेत्र के नाते इस स्थान को पसंद नही किया है, बल्कि इस दृष्टि से पसंद किया है कि जिस आध्यात्मिकता की आवश्यकता मानव-जाति को है, उस आध्यात्मिकता का महाराष्ट्र के अन्तर्गत यह आदि-पीठ है। मेरे सामने ही पाडुरंग के देवालय का यह शिखर खड़ा है। मुझे दिखाई दे रहा है। इस पढरपुर में मैं आज ६२ वर्ष की आयु में आया हूँ। परन्तु जो कोई यह समझता होगा कि इतने दिन तक मैं यहाँ से गैरहाजिर था, उसे मेरे जीवन का कोई पता भी नही लगेगा। जब से मैंने होश सम्हाला है तब से, उस समय से आज तक मै पढरपुर में था, ऐसा मेरा दावा है। इसलिए इस स्थान को छोडकर दूसरा कोई स्थान मेरे चित्त में समा नहीं सकता था। सभी जगह परमेश्वर का निवास है, इस दृष्टि से सभी स्थान मेरे लिए तीर्थस्थान हैं और इसीलिए मैं गाँव-गाँव मे घूम रहा

हूँ। यह समझकर चलने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि उन छोटे-छोटे गाँवों के लोगों के दर्शन विठोबा के ही दर्शन है। इसलिए जब हमारी भूदान-यात्रा में हमसे प्रश्न पूछते है कि आपकी यात्रा कहाँ जा रही है, तो हम कहते हैं कि हमारी यात्रा जनतारूपी विठोबा के दर्शनों को जा रही है। जो जनता गाँव-गाँव में बसी है, उसकी सेवा के लिए और उसके दर्शनों के लिए। हमारा तीर्थ-क्षेत्र पंढरपुर ही नहीं है, रामेश्वर ही नहीं है, मक्का और यरुशलम् ही नहीं है, किन्तु प्रत्येक गाँव और प्रत्येक घर हमारा तीर्थस्थान है। वहाँ जो नर-नारी-बालक रहते हैं, वे सब हमारे देवता है। यह हमें तुकाराम महाराज ने सिखाया है। उनका उपदेश हम छुटपन से ही रटते आये है।

"नर-नारी-बाळें अवघा नारायण, ऐसें माझें मन करी देवा।"

(हे देव, मेरा मन ऐसा बना दे कि मेरे लिए नर-नारी-बालक सब नारायण बन जाय।)

तो, इस प्रकार की उत्कंठा से हम यहाँ आये। और हमें इस बात का बड़ा आनंद हुआ कि जिस स्थान में हमारा निवास रखा गया है, उसी स्थान में हमारे परमप्रिय मित्र, जो अब कैलासवासी हो गये, साने गुरुजी ने इसी पंढरपुर में उपवास किये। १९४२ के आंदोलन के सिलसिले में ३५ महीने मैं जेल में था। उसके बाद बाहर आने पर मेरे जो व्याख्यान हुए, उनमें से एक व्याख्यान में यह समझाते हुए कि यदि हम स्वराज्य चाहते है, तो उसके लिए जो कुछ करना पड़ेगा, वह सब हमें करना चाहिए। मैंने कहा : पंढरपुर मंदिर जैसा मंदिर भी यदि हम अस्पृश्यों के लिए नहीं खोल सकते, तो स्वराज्य-प्राप्ति का हमें क्या अधिकार है? यह देवता यात्रा के समय भोजन करना भी भूल जाता है। मुझसे यहाँ के पुजारियों ने कहा कि यात्रा के वक्त लोगों के दर्शनों के लिए विठोबा का नित्य कार्यक्रम भी बंद हो जाता है, अर्थात् दर्शनार्थी लोग तो कितनी संख्या में उपवास करके यहाँ आते ही है, परन्तु यहाँ तो भगवान भी भक्तों के दर्शन के लिए भोजन नहीं करते।

क्या कहूँ आपसे? एक बार भगवान् से भेंट करने उद्धव आये। कहने लगे : हम मिलना चाहते हैं भगवान् से। कृष्ण से भेंट करना चाहते है। उद्धव और माधव दोनों छुटपन से दोस्त ही थे। द्वारपालों ने कहा कि इस समय भगवान्

पूजा में बैठे हैं, इसलिए अभी थोडी देर आपको ठहरना होगा। भगवान् समाचार पाते ही त्वरित पूजा-कार्य से निवृत्त होकर जल्दी से उद्धव से मिलने आये। उद्धव भगवान् के सामने बैठे। कुशल-प्रश्न शुरु हुए। भगवान् ने पूछा उद्धव, तुम किसलिए मुझसे मिलने आये हो? उद्धव ने कहा वह तो बाद मे बतलाऊँगा। परन्तु मुझे यह बतलाइये कि आप किसकी पूजा कर रहे थे? हम तो भगवान् की पूजा करते है। आप किसकी पूजा करते हैं? इन लोगो ने मुझसे कहा कि आप पूजा में बैठे हैं। भगवान् बोले उद्धव तुझे क्या बतलाऊँ? मै तेरी पूजा कर रहा था। उद्धव माधव की पूजा करता है और माधव उद्धव की पूजा करता है। इस प्रकार जो देवता दासानुदास बन गया, उसके दर्शन भी हम करने नहीं देते। तो फिर हमे स्वराज्य का क्या अधिकार है? लोकमान्य ने कहा कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। परन्तु हमारे ऐसे आचरण से उनकी बात ठहरेगी? यह बात उस एक व्याख्यान मे मै कह गया। साने गुरुजी ने वह वाक्य उठा लिया और उन्होने घोषित किया जब तक यह मदिर हरिजनो के लिए खुल न जायगा, तब तक मै उपवास करूँगा। लोगो ने उनसे कहा कि अगर आप इतना उग्र उपाय करनेवाले हैं, तो कम-से-कम छह महीने लोगों मे इसका प्रचार कीजिये। तब उन्होने छह महीनों के लिए वह उपवास स्थगित किया। छह महीने तक सिर्फ इसी एक बात को लेकर उन्होने सारे महाराष्ट्र की खाक छानी। इतना परिश्रम किया कि उनका शरीर केवल अस्थिपजर रह गया। बाद मे उस महापुरुष ने जहाँ मुझे ठहराया गया है, उस स्थान मे बैठकर भगवान् के द्वार पर धरना दिया। एक बार नामदेव ने भी ऐसा ही धरना दिया था। ऐसी किंवदती है कि एक बार उसे भी मदिर मे जाने से रोका था। मुझे मालूम नही किस कारण से रोका था? परन्तु उस बेचारे को दरवाजे से लौटा दिया था। तब उसने कहा :

पतित-पावन नाम ऐकोनि आलो मी दारा।
पतित-पावन न होसि म्हणोनि जातो माघारा॥

(तेरा पतित-पावन नाम सुनकर मै द्वार पर आया। तू पतित-पावन नही है, इसलिए लौट रहा हूँ।)

उस वक्त नामदेव लौटकर चला गया। बाद मे उसकी भक्ति के कारण उसे

भगवान् के द्वार पर जगह मिली। साने गुरुजी इस जगह धरना देकर बैठ गये और अन्त में मंदिर खुल गया, हरिजनों के लिए। यह सब आप जानते ही हैं। साने गुरुजी का और हमारा ऐसा प्रेम का नाता था कि उससे अधिक प्रेम का नाता कैसा होता है, मैं नहीं जानता। हम दोनों में इतनी हार्दिकता थी कि उनके स्मरण से ही मेरी आँखों में आँसू आते हैं।

हम दोनों छह महीने तक धूलिया के जेल में एकत्र थे। उस वक्त गीता पर मेरे व्याख्यान होते थे। उन व्याख्यानों को साने गुरुजी ने लिख लिया। सारे भाषण ज्यों-के-त्यों ठीक-ठीक लिख लिए। वे बड़ी फुर्ती से लिखते थे। वे ही भाषण अब सारे भारत की सारी भाषाओं में 'गीता-प्रवचन' के नाम से दिये गये हैं। लाखों लोग उनका पठन आज करते हैं। लाखों लोग उन्हें पढ़ते हैं। भक्ति-मार्ग सीखते हैं। हृदय-शुद्धि की दीक्षा लेते हैं। इसका श्रेय मेरा नहीं है। इसका श्रेय साने गुरुजी का है। मैंने समूची गीता पर दो-चार बार व्याख्यान दिये। लेकिन उस समय कोई लिख लेनेवाला व्यक्ति नहीं था। परन्तु धूलिया की जेल में मैंने गीता पर जो व्याख्यान दिये, उन्हें लिखने के लिए साने गुरुजी थे। इसलिए सारे भारतवर्ष को उनका वह प्रसाद मिला। जेल में चाहे जब इस जेल से उस जेल में तबादला कर देते थे। बीच में ही मुझे अगर दूसरे जेल में भेज देते, तो व्याख्यान समाप्त हो जाते। साने गुरुजी का तबादला हो जाता, तो व्याख्यानों का लिख लेनेवाला कोई न रहता। परन्तु उनका भी तबादला नहीं हुआ और मेरा भी तबादला नहीं हुआ, इसलिए वे व्याख्यान पूरे हो गये और सारे भारत में अब पहुँच गये। मेरा और उनका संबंध इतना आत्मीयता का था। आज भी जब मैं महाराष्ट्र में घूम रहा हूँ, तब जिनके समर्थन का बल मुझे प्राप्त है और मैं नहीं समझता कि मुझसे अधिक समर्थन का बल लेकर भारतवर्ष में कोई घूमता होगा, उस समर्थन के बल में एक बल साने गुरुजी के समर्थन का है। आगे चलकर गांधीजी की हत्या के बाद साने गुरुजी ने मुझे एक पत्र लिखा और एक भाषण में सार्वजनिक रूप से माँग की कि "विनोबाजी कम-से-कम अब तो आइये, महाराष्ट्र में आपकी आवश्यकता है। छोड़िये, आप अपने उस आश्रम को और मठ को। २५-३० वर्ष तक आपने अपने को बन्द कर लिया है। मैं मानता हूँ कि

आप बहुत बडी सेवा कर रहे हैं। आप ध्यान-धारणा कर रहे हैं, यह भी मुझे स्वीकार है। परन्तु कम-से-कम अब तो आइये।" यह कहकर उन्होंने मुझे पुकारा। परन्तु जैसा कि हमारे एक मित्र ने कहा, यह पत्थर नही पसीजा। मुझे कोई प्रेरणा नहीं हुई। उस समय साने गुरुजी को मैंने जवाब दिया था कि मेरे पैर में चक्कर का चिह्न है। किसी-न-किसी दिन मेरा परिभ्रमण का समय आयेगा। वह समय आते ही भगवान् मुझे सूचित करेगा। फिर उसके बाद मेरे कदमों को कोई भी नहीं रोक सकेगा। भगवान् ही रोकना चाहे, तो बात अलग है। वह चाहे जब रोक सकता है। लेकिन दूसरा कोई भी रोक न सकेगा। यह मैंने उन्हे लिखा था। आगे चलकर मेरे घूमने का समय आया। जब मै तेलगाना मे घूम रहा था, उस वक्त मुझे ईश्वर का इगित मिला। ईश्वर का संकेत मिला। यह ईश्वर का ही संकेत है, ऐसा निश्चित रूप से जानकर मैंने दूसरे ही दिन से यात्रा शुरु कर दी। तो आप क्या समझते हैं कि मैंने अपने भरोसे यात्रा शुरु कर दी? कौन-सी शक्ति थी मेरे पास? कोई सस्था थी? या कोई सेवक वर्ग सिद्ध था? मैं क्या कोई नेता था, जो मेरा अधिकार किसी पर चलता था या क्या मेरे पास कुछ भी नही। परतु इसे पाडुरंग की आज्ञा समझकर मैं काम मे लग गया। और तब से लगातार घूमता हुआ आज फिर इस प्रात में आया हूँ। आज पढरपुर के देवता के सामने खडा हूँ।

इस बीच बिहार मे हम लोग वैद्यनाथधाम गये थे। वहाँ कुछ मित्रों ने हमसे कहा आप हरिजनों को साथ लेकर मन्दिरों मे जाइये। हमने कहा, मंदिर के मालिकों की इजाजत होगी, तो ले जायेगे। सरकार ने तो घोषित कर ही दिया था कि कानून के मुताबिक अस्पृश्यो का मदिर-प्रवेश होना ही चाहिए। तो भी मैंने कहा मदिर के मालिक कहेगे तभी जाऊँगा, अन्यथा नही जाऊँगा। मै मंदिर के देवता का भक्त हूँ। देव-पूजा मे मेरी श्रद्धा है। फिर भी सर्वत्र परमेश्वर के दर्शन करने का अभ्यास मुझे है। इसलिए यह सभव नहीं था कि वहाँ के लोगो की रजामदी के सिवा मै मदिर मे जाता। शायद मुझे इजाजत देने से इन्कार करने मे उन्हे कुछ सकोच हुआ। मन से तो वे इन्कार करना चाहते थे। लेकिन शायद सरकारी कानून का डर उन्हे लगा। परतु यह बात मेरे ध्यान में नहीं आयी। उन्होंने

मुझसे कहा : हां, आप आ सकते है। तदनुसार मेरे साथ जो लोग थे, उन्हे लेकर मै दर्शनों के लिए गया। साथियों मे कुछ हरिजन भी थे और दूसरे भी कुछ लोग थे। वहां पहुंचते ही वहां के लोगो ने हमको तडातड़ मारना शुरू कर दिया। पांच-छह मिनट तक वे हम पर प्रहार ही करते रहे। वे सारे प्रहार मुझ पर थे, मुझ अकेले पर। परतु हमारे सारे साथियों ने हाथ ऊपर-ऊपर उठाकर मेरे बदले मार खायी। किसीने जवाब नहीं दिया। मेरे साथ ऐसे तगडे आदमी थे कि अगर वे जवाब देना चाहते, तो दे सकते थे। इतने तगडे आदमी थे और इतने-बहुत आदमी थे। शक्ति और सख्या मे वे कम न थे। परतु साथियों ने बिल्कुल शातिपूर्वक मार खायी। मेरे ऊपर अपने हाथ रखकर मुझे बचाया। मुझ पर जो प्रहार हो रहे थे, उन्होंने झेल लिये। परन्तु आखिर परमेश्वर किसीको थोड़ा-सा प्रसाद दिये बिना कैसे छोडेगा ? एक व्यक्ति का प्रहार मेरे बांये कान मे लगा। उसे बचाने के लिए भी एक व्यक्ति ने बीच मे अपना हाथ डाला। इसलिए जोर की चोट नहीं लगी। अगर जोर की चोट लगती, तो कह नहीं सकता क्या हुआ होता। परतु जितनी चोट लगी, उससे मेरा यह कान बहरा हो गया। वैद्यनाथधाम के देवता का कृपाप्रसाद मुझे प्राप्त हुआ। उसके पूर्व भी यह कान कम सुनता था। ऐसी बात नहीं है कि पहले अच्छा सुनता रहा हो और उस दिन से बहरा हो गया। कान कमजोर तो हो ही गया था। परंतु थोड़ा बहुत सुनता था। उस चोट के बाद कान मे जो आवाज शुरू हुई, वह नाक और कान मे चार-पांच दिन तक चलती रही। मैंने कोई दवा-दारू नही की। सोचा यह परमेश्वर का प्रहार है। इस पर औषध नहीं होता। और जब मैं अपने पडाव पर लौटा, तो इतने आनद मे था कि मै आपसे कह नहीं सकता। अकथनीय आनद था वह। मैंने कहा कि मै तो ईश्वर के दर्शनों के लिए गया था, लेकिन मुझे ईश्वर का स्पर्श भी मिला। इस प्रकार भक्ति और प्रेम के कारण मुझे वह मार रुचिकर मालूम हुई। मेरे साथियो ने मुझसे कहा : गाधीजी जब कहते थे कि मार सहना चाहिए, तो भी मन में हमे गुस्सा आता था। लेकिन अबकी बार मन मे भी हमें क्रोध नहीं आया। रामदेवबाबू ने यह मुझसे कहा। मार खानेवालों मे मुख्य वे ही थे। अधिक-से-अधिक मार उन्हे पड़ी। और यहां एक लडकी बैठी है, है यहां ? अपनी कुसुम, क्या वह यहां है ? हां, यह देखिये बैठी है। इसकी छाती पर जबरदस्त मार मारी गयी। उसके अनन्तर

दस, पन्द्रह दिन अस्पताल मे थी। मारनेवालों ने यह भी खयाल नहीं किया कि एक महिला पर इस तरह हाथ नही उठाना चाहिए, धर्मरक्षण के नाम पर। उसके बाद मैने एक वक्तव्य में कहा कि मेरी यह इच्छा बिलकुल नही है कि इन लोगो को कोई सजा हो। मेरी तरफ से सब तरह से उन्हे क्षमा है। यह वक्तव्य देकर मै वहो से चला गया। मेरी तो भूदान-यात्रा चल रही थी। इससे आगे का इतिहास नही बतलाता। आगे चलकर बिहार के मुख्य मत्री श्रीबाबू वहाँ गये, हरिजनो के लिए वह मदिर खुल गया इत्यादि, इत्यादि।

बिहार के बाद हमारी भूदान-यात्रा उडीसा मे चली। उडीसा से जब यात्रा हुई, तो हम जगन्नाथपुरी गये। जैसा अब यहाँ सम्मेलन हो रहा है, वैसा उस वक्त जगन्नाथपुरी मे हुआ था। परन्तु वहाँ का किस्सा सुनाने से पहले वैद्यनाथधाम का थोडा-सा किस्सा रह गया है, जो अभी याद आया, उसे पहले सुना देता हूँ। जब मै अपने पड़ाव पर लौटा, तो लोगो ने मुझे बतलाया था कि यहाँ महात्मा गाधी पर भी इसी तरह का प्रहार हुआ था। महात्मा गाधी जब वहाँ गये थे, तब उनके यात्री-पथक पर भी ऐसा ही प्रहार हुआ था और वे मन्दिर-प्रवेश नहीं कर सके थे। मैंने सोचा, मै बहुत श्रेष्ठ-संगति मे हूँ, इतने से ही मुझे संतोष हो रहा था। इतने में मेरा सतोप बढ़ाने के लिए और एक व्यक्ति ने मुझे यह बात सुनायी कि गाधीजी के ३० वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द को भी वहाँ ऐसी ही मार पडी थी। तब मैंने कहा कि यदि भगवान् मेरी गणना गाधी और दयानन्द की तालिका में कर रहे हैं, तो उनका बहुत बडा वर-प्रसाद मुझे मिला है। यह सोचकर मैं बिलकुल प्रसन्नचित्त से वहाँ से रवाना हुआ।

अब जगन्नाथपुरी का किस्सा। वहाँ हमारी मन्दिर मे जाने की इच्छा थी। मन्दिर मे देवदर्शन करने की इच्छा हमारी रहती ही है। क्योकि मूर्ति में मेरी श्रद्धा है। मेरे कुछ मित्र है जो कहते है, यह क्या तुम मूर्ति मे श्रद्धा रखते हो! यह कैसा निपट भोलापन है! मैं कहता हूँ मेरा वह भोलापन जाता नही है। मेरे लिए वह भोलापन भलप्पन ही है। मूर्ति के दर्शनो से मेरी ऑखे छलकने लगती हैं और नामदेव से जिस तरह मूर्ति बोलती थी, उसी तरह मुझसे भी बोलती है। मुझे यह अनुभव होता है।

यहाँ में आपसे एक मजे की बात कहता हूं। धूलिया मे मेरे जो गीता-प्रवचन हुए, उनमे बारहवें अध्याय पर एक व्याख्यान है। उसमे कहा गया है कि कोई सगुण भक्त होते हैं, कोई निर्गुण भक्त होते हैं। भरत भगवान का निर्गुण भक्त था। वह भगवान् की सेवा करता था। वनवास मे उनके साथ नहीं गया। परन्तु अयोध्या मे रहकर ही उसने भगवान की भक्ति की। दूर रहकर भक्ति की। उसके बाद उस प्रवचन मे एक वाक्य आया है। आप उसे पढ़कर देखिये। आपमे से बहुत से लोगो ने पढ़ा भी होगा। मेरी ऐसी इच्छा है कि इस पढरपुर मे एक भी स्त्री-पुरुष ऐसा न रहे, जिसने 'गीता प्रवचन' न पढा हो और बार बार न पढा हो। मेरा आग्रह है कि हरएक के घर मे मेरी वह पुस्तक हो। मेरी और कोई चीज पढ़ें या न पढें, सुने या न सुनें, परन्तु वह पुस्तक अवश्य पढ़िये। मेरा आपसे निवेदन है।

हाँ, तो भरत और राम का वर्णन करने के बाद उस प्रवचन मे आगे मैने कहा है कि क्या कोई कुशल चित्रकार ऐसा सुन्दर चित्र खींचेगा, जिसमे दो भाई एक-दूसरे से मिल रहे है। दोनो के केश बढ़े हुए हैं। दोनो तपस्या से कृश हो गये हैं और दोनों एक-दूसरे का आलिंगन कर रहे हैं। देखकर लोगों को शका होती है कि इनमे से अरण्य से लौटा हुआ कौन है और अयोध्या मे रहनेवाला कौन है? समझ मे नहीं आता। उनमे से एक कुछ ऊंचा है, दूसरा कुछ ठिगना है। इतने से ही पहचान सकते हैं कि यह छोटा भाई भरत है और वह बडा भाई राम है। यों उन्हें देखकर हो पहचान नहीं सकते। ऐसा चित्र अगर कोई चित्रकार खींचे, तो वह कितना मधुर होगा? इस आशय के उद्‌गार उस व्याख्यान में है। उसके बाद मैं पवनार मे रहने के लिए गया। उससे पहले हम लोग नालवाडी मे रहते थे। पवनार में आश्रम के लिए जगह बनायी। वहाँ पहले खेत थे। हम सब लोग जब खेत मे खोद रहे थे, तो खोदते-खोदते मेरा हाथ एक बडे पत्थर में लगा। चारो तरफ से मैं खोदने लगा, तो मालूम हुआ कि बड़ा पत्थर है। मुझसे ऐसा बल नहीं था कि मैं अपने हाथो से उसे बाहर निकालता। तब मैंने अपने मित्रों से कहा . यहाँ बडा भारी पत्थर है, इसे तुम खोदकर निकालो। मैं दूसरी तरफ खोदता हूँ। तब उन मित्रों ने उस पत्थर को निकाला। तो क्या देखते है कि उस पर भरत और राम के मिलाप का चित्र खुदा हुआ है। मेरे मन की यह

वासना धूलिया जेल में १९३२ में बारहवें अध्याय के प्रवचन में व्यक्त हुई थी। तदनुसार १९४६ में पवनार में जमीन खोदने के समय मूर्ति निकली। मैं जैसी मूर्ति चाहता था, जैसे चित्र की आकाक्षा मैंने की थी, वैसी ही वह मूर्ति है। आज भी लोग वहाँ जाकर उसे देख सकते हैं। वाकाटक वंश के जमाने की बहुत सुन्दर मूर्ति है। इतिहासवेत्ताओं ने उसे देखकर यह निर्णय किया है कि मूर्ति १४ सौ वर्ष पूर्व की होगी। ऐसी मूर्ति जब मेरे पास आयी, तो उसे पत्थर समझकर एक तरफ रख दूँ? ऐसा पत्थर मै स्वयं नहीं था। इसलिए मैंने उस मूर्ति की प्रस्थापना की अपने हाथ से। उत्तम मूर्ति है। सिर्फ पैर एक तरफ से थोडा-सा खंडित हो गया है। शेष सारी मूर्ति साबित है। उसमे रामचन्द्रजी हैं, भरत से गले मिल रहे हैं। लक्ष्मण एक तरफ खडे हैं। सीतामाई हैं। कुछ लोग मंगल गीत गा रहे हैं। हनुमानजी एक कोने मे सिमटकर खड़े हैं। शत्रुघ्न से भेंट अभी नहीं हुई है। इस भेंट के बाद शत्रुघ्न से भेंट होनेवाली है। इस तरह का वह चित्र है। उस मूर्ति की प्रतिष्ठापना मैंने की और जब तक मैं पवनार मे रहा तब तक उस मूर्ति के सामने बैठकर एकनाथ, तुकाराम प्रभृति के भजन मैंने वहाँ प्रेम से गाये हैं। मेरे मित्र मुझसे कहने लगे, मूर्ति पूजा का यह खब्त तुमने क्यों शुरू किया? उन्हे आश्चर्य हुआ कि इस विज्ञान-युग मे मैं मूर्ति-पूजा चला रहा हूँ। एक ने मुझसे पूछ ही लिया। मैंने कहा कि मूर्ति खोजने के लिए मैं कहीं गया नहीं था। मैंने उसे किसी शिल्पकार से बनवाया भी नहीं है। उसके लिए कुछ खर्च नहीं किया। परन्तु खेत खोदते हुए यदृच्छा से मुझे जो मूर्ति मिली, उसे पत्थर समझकर मैं दूर रखूँ, इतनी मुझमे, क्या कहूँ—सद्‍बुद्धि कहूँ या दुर्बुद्धि कहूँ—आप जो कह लीजिये, मुझमें वह नहीं है।

यह सब मैंने इसलिए बतलाया कि मेरी मूर्ति मे किस प्रकार की श्रद्धा है, यह आप जान लें। मेरे साथ जगन्नाथपुरी में जो लोग थे, उनमें एक फ्रासीसी महिला भी थी। उसको साथ लेकर जब मैं जगन्नाथजी के दर्शनों को चला और मन्दिर मे पहुँचा, तो उन्होंने कहा कि फ्रासीसी महिला मन्दिर में नहीं जा सकेगी। तब मैं वहाँ से वापस हुआ। तत्पश्चात् वहाँ तीन दिन तक मेरे व्याख्यान इसी विषय पर हुए। हरिजनों को हमने प्रवेश दिया, इतना पर्याप्त नहीं है। जिसकी-जिसकी श्रद्धा

हो और जिसकी-जिसकी इच्छा हो अर्थात् श्रद्धायुक्त इच्छा हो उस व्यक्ति मात्र का, प्राणिमात्र का प्रवेश होना चाहिए। तभी हिन्दूधर्म का जो व्यापक विचार है, उसे हम समझ सकेंगे।

परंतु, वहाँ भी मुझे एक किस्सा सुनने को मिला। पहले भी मैंने सुना था। गुरु नानकसाहब पंजाब से कन्याकुमारी की यात्रा करते-करते जगन्नाथजी गये थे। उन्हें भी उस मंदिर में प्रवेश नहीं मिला था। उनके पांच सौ वर्ष पश्चात् मैं गया। मुझे भी प्रवेश नहीं मिला। मैंने सोचा, ठीक ही है। महापुरुषों की गैल जा रहा हूं। ऐसे महापुरुषों का मार्ग खोजते हुए भगवन्नाम-संकीर्तन करते चलना है। सोचा, चलो गुरु नानक के पीछे चलकर इस वृत्ति की साधना करें। नानकसाहब को जब मंदिर में जाने नहीं दिया, तो मंदिर के बाहर खड़े होकर उन्होंने एक आरती बनायी। पंजाब के जो भाई यहाँ होंगे, वे आपको बतलायेंगे। वह आरती सिक्खों के नित्य पाठ में है। रात को सोने से पहले वे उस आरती का पाठ करते हैं।

'गगन दे थार रविचन्द दीपक बने'

(आकाश की थाली में सूरज और चांद के दीपक जल रहे हैं।)

इस तरह बहुत भव्य आरती हो रही है, भगवान् जगन्नाथजी की। वह जगन्नाथ कुछ मंदिर में छिपा हुआ नहीं है। इस विशाल विश्व-मंदिर में वह सब जगह छा रहा है। उसकी यह भव्य आरती हो रही है। इस प्रकार की अत्यंत रमणीय आरती नानक ने जगन्नाथपुरी में मंदिर के सामने खड़े होकर गायी है, ऐसी गाथा है।

इसके बाद मैं तमिलनाड़ में गया। वहाँ अनेक मंदिरों में मेरा प्रवेश हुआ था। क्योंकि मेरे साथ अन्यधर्मीय लोग नहीं थे। मैं ऐसा आग्रह नहीं रखता कि जब कोई साथ न हो, तब भी पूछूं कि क्या आप अन्यधर्मियों को भीतर जाने देंगे? उनको अगर आप न जाने देते हो, तो मैं भी नहीं जाऊँगा, ऐसा मैं नहीं करता। जब मेरे साथ कोई अन्यधर्मीय लोग नहीं होते, तो मैं इतना ही पूछता हूं कि आप हरिजनों को तो जाने देते हैं न? तो बस, इतना काफी है। यह कहकर मैं भीतर जाता हूं। तमिलनाड में यही हुआ।

फिर मैं केरल में गया। वहाँ गुरुवायूर नाम का प्रसिद्ध मंदिर है। इतना प्रसिद्ध मानो वह केरल का पंढरपुर ही है। कई वर्ष पूर्व वहाँ केळप्पन ने उपवास किया था। वे केळप्पन यहाँ सर्वोदय-सम्मेलन के लिए आये हैं। उनके उपवास में गाधीजी ने भाग लिया था। गाधीजी ने केळप्पन से कहा—तुम उपवास मत करो। तुम्हारे वदले मैं करूँगा। यह कहकर गाधीजी ने उस उपवास को अपने ऊपर ओढ़ लिया। उसके बाद वह मदिर हरिजनों के लिए खोल दिया गया है। मैं जव वहाँ गया, तो मेरे साथ कुछ ईसाई साथी थे। मैंने पूछा—इनके सहित मुझे जाने दोगे? उन्होंने कहा—इनको लेकर नहीं जाने देंगे। लेकिन अगर आप भीतर आयेंगे, तो हमें अत्यंत आनन्द होगा और न आयेंगे, तो हमें बहुत दु ख होगा। तो मैंने कहा—मै विवश हूँ। मैं नहीं समझता कि अपने साथ आये हुए ईसाई मित्रो को छोडकर, मंदिर में जाकर मै देव-दर्शन कर सकूगा। वहाँ मुझे देवता के दर्शन नहीं होंगे। इसलिए मैं नहीं आता। यह हुआ गुरुवायूर का किस्सा।

ये दो घटनाएँ दो वर्ष के भीतर हुईं। इससे ऐसा जान पडता है कि दो वर्ष में कुछ हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ। परंतु वहाँ मुझे नहीं जाने दिया गया, इसके लिए मलयालम् समाचार-पत्रों में लगातार प्रखर आलोचना हुई। प्रचण्ड लोकमत इस घटना के खिलाफ था। केवल एक-दो समाचार-पत्रों ने मेरी टीका की और कहा कि अन्यधर्मियों को ले जाने का आग्रह रखना गलत है। बाकी के बीस-पच्चीस समाचार-पत्रों ने यह कहा कि मेरा विचार उचित था और मुझे न जाने देने में वडी भूल हुई। हिन्दूधर्म पर वडा आघात हुआ। मैंने सोचा कि लोकमत तो इतनी प्रगति कर चुका है।

अव इसके वाद मैं आपको एक आनन्द की कहानी सुनाना चाहता हूँ। बाद मे हमारी भूदान-यात्रा कर्नाटक पहुँची। वहाँ के गोकर्णमहाबळेश्वर में फिर वही प्रसंग आया। वहाँ हमारे साथ सलीम नाम का एक मुसलमान था। वड़ा प्रेमालु, वडा भावुक। हमने मदिर के मालिकों से और पुजारियों से पूछा—क्या आप हमे आने देंगे? हमारे साथ इस प्रकार का एक व्यक्ति है। उन्होंने कहा—आपके यहाँ आने में कुछ भी आपत्ति नहीं है। आप उस व्यक्ति को लेकर आ सकते हैं। यह एक आनन्ददायक समाचार शायद आप तक पहुँचा नहीं होगा। इसलिए वतला रहा हूँ। गोकर्णमहाबळेश्वर मंदिर मे हम गये और उन लोगों ने हमे प्रवेश करने

दिया, तो भी वह देवता भ्रष्ट नहीं हुआ। गोकर्णमहाबळेश्वर कोई छोटा तीर्थक्षेत्र नहीं है। जिस प्रकार यह पटरपुर एक अखिल भारतीय तीर्थक्षेत्र है, उसी प्रकार का एक तीर्थक्षेत्र वह है।

इससे पूर्व एक और घटना हुई थी। उसे आपको बतलाना मैं भूल गया। महादेवी ने याद दिलायी है। मेलकोटे मे रामानुजाचार्य का एक मदिर है, जिसमें रामानुजाचार्य १५ साल तक रहे थे। उस मदिर मे भी हमे अपने सारे साथियों सहित प्रवेश करने दिया था। हमारे साथियों मे कुछ ईसाई थे। रामानुज एक अत्यत उदार आचार्य हो गये। उन्होंने जगदुद्धार का प्रचण्ड कार्य किया है। कबीर, रामानन्द और तुलसी-दास—ये सब रामानुज की शिष्य परपरा के है, यह तो आप जानते ही होंगे। यह आनन्द का विषय है कि मेलकोटे मे उन्होंने हमें प्रवेश दिया। मेलकोटे सारे दक्षिण भारत का प्रसिद्ध स्थान है। उसके पश्चात् गोकर्ण महाबळेश्वर में हमको प्रवेश दिया गया, वह भी अखिल भारत में प्रसिद्ध मदिर है।

अब जब हम पंढरपुर आने लगे, तो कुछ लोगों ने यह बात फैलाने की कोशिश की कि अब यह शख्स यहाँ आ रहा है, धर्मभ्रष्ट लोगों को लेकर आ रहा है और उनके साथ अब मदिर में घुसनेवाला है। वे बेचारे मेरी भक्ति क्या जाने? वहाँ जाने से मुझे अगर किसीने मुमानियत की, तो मै क्यों जाऊँ वहाँ? क्या वहीं भगवान् बद होकर पड़ा हुआ है? ऐसा मैं नहीं मानता। परतु मैं मूर्ति मे और मदिर मे भी ईश्वर का निवास मानता हूँ, जहाँ असंख्य सत्पुरुष गये हुए हैं, उसके लिए मेरी श्रद्धा कभी कम नहीं होगी। मेरी श्रद्धा उस पत्थर में इसीलिए है कि उसके दर्शनों के लिए असख्य सत्पुरुष जाते रहे हैं और उन्होंने अपना पुण्य उस जगह संचित किया है। इसलिए उसके प्रति मुझे श्रद्धा है। अन्यथा वहाँ जाकर क्या करना है? तुकाराम ने कहा ही है

"तीर्थी पाणी आणी धोंडा, देव सज्जनी रोकडा,।"

(तीर्थ मे जाकर क्या मिला? पत्थर और पानी। और है क्या वहाँ? भगवान् भक्त सज्जनों मे है।) सज्जनो के दर्शन और भेंट करता हुआ मैं घूम ही रहा हूँ। मेरी असख्य संतों से भेंट हुई है। मुझे अपने जीवन मे महापुरुषों की सगति का लाभ हुआ है। तो मैं जबरदस्ती वहा क्यों जाऊँगा? कैसे जाऊँगा? सत्याग्रह की मेरी रीति ऐसी नहीं है। मेरा यही सत्याग्रह है कि जहाँ मनाही होगी, वहाँ मैं नहीं जाऊँगा।

यहाँ आने से पहले रास्ते में पुंडलीक के मंदिर के लोग आये। उन्होंने कहा कि हमारे मंदिर मे आप अवश्य आइये। आपके परिवार मे जो व्यक्ति हैं, वे अन्य-धर्माय भले ही हों, फिर भी वे भक्त हैं। उन्हे लेकर आप अवश्य आइये। मैंने कहा ऐसा एक पत्र आप मुझे लिखकर दीजिये। मेरा आपके शब्दों मे विश्वास अवश्य है, परतु लिखकर इसलिए माँग रहा हूँ कि ऐसे ही प्रकरण मे वैद्यनाथधाम मे मुझे मार पडी थी। उन्होंने भी कहा था कि हमारी अनुमति है। परतु मुझे पता नहीं, क्या उन्होने सरकार के डर से वैसा कह दिया था, सरकारी कानून के भय से। इसलिए आप मुझे लिखकर दीजिए। उन्होने मुझे जो पत्र लिखकर दिया, वह मेरे पास यहाँ है। उसके बाद दूसरे या तीसरे दिन, अब मैं भूल रहा हूँ, रुक्मिणी के भक्त मेरे पास आये। उन्होंने कहा : रुक्मिणी माता का मदिर आपके लिए खुला है। आप आइये, अपने परिवार के साथ आइये। मैंने उनसे भी कहा रुक्मिणी ने भगवान् के लिए पत्रिका दी थी। आप मुझे रुक्मिणी माता के दर्शनों के लिए एक पत्रिका लिख दीजिये। उन्होने मुझे पत्र लिख दिया।

इन दो स्थानों की अनुमति आने के बाद मैंने सोचा, अरे यह विठोवा कौन है? यह तो दासों का दास है। जब पुडलीक मेरे हाथों में आ गया, तो यह कैसे बचेगा? लेकिन इसके बाद भी अगर वह बचकर ही रहनेवाला हो, तो मैं क्या करूँ? मैं पुंडलीक के दर्शनों के लिए जाऊँगा।

"पुडलिका परब्रह्म आलेगा।"

(पुंडलीक के लिए परब्रह्म आया रे)

फिर मुझे वहाँ अब परब्रह्म ही दिखाई देगा। अब मुझे कौन-सा दूसरा ब्रह्म चाहिए? परब्रह्म से बडा भी दूसरा ब्रह्म कही है? पुंडलीक के कारण ही पंढरपुर है। नहीं तो पढरपुर को कौन पूछता है? इस देवता को यहाँ कौन लाया? पुडलीक लाया। मेरे मित्रो! पुडलीक के लिए मेरी जो श्रद्धा और भक्ति है, उसे गीता-प्रवचन में देखिये। दूसरे अध्याय मे स्थितप्रज्ञ का वर्णन करते हुए मैंने कहा है कि मैं नहीं जानता कि कौन-कौन स्थितप्रज्ञ हो गये? परन्तु मेरे सामने स्थितप्रज्ञ की मूर्ति के रूप मे पुडलीक की मूर्ति खडी है। जब यह निश्चित हो गया कि उस पुडलीक से मैं भेंट कर सकूँगा और उसके बाद रुक्मिणी माता से, तब मैंने सोचा कि

चावी तो मेरे हाथ मे आ ही गयी है। अब ताला लगा रहने दो विट्ठल मंदिर में, क्या हानि है ? यह मैंने विनोद मे कहा। अब मुझे आपको बतलाने में आनद होता है कि अभी यह भाषण करते हुए विट्ठल मदिर की ओर से मुझे एक चिट्ठी आयी है कि आप विट्ठल मदिर मे आइये। वह चिट्ठी मै पढ़ता हूँ, आप सुनिये।

मेरे मित्रो! यह सारा पत्र पढ़कर मेरा हृदय स्नेह-विह्वल हो गया है। आप पढरपुर निवासियो ने और इन बढवे लोगो ने मुझे जीत लिया है। आपने मुझे गुलाम बना लिया। इस पत्र के केवल एक शब्द मे मुझे सशोधन करना है। उन्होंने मुझे महासंत और महाभागवत कहा है। यह यथार्थ नही है। मुझे ऐसी इच्छा और तड़पन अवश्य है कि परमेश्वर के चरणों मे मैं लोट जाऊँ और इस देह के बाद दूसरी गति मुझे न मिले। इसी तीव्र उत्कठा मे मेरा सारा काम चल रहा है। यह भूदान और ग्रामदान परमेश्वर की सेवा के सिवा दूसरी किसी इच्छा से मै नही करता परंतु फिर भी मै महाभागवत नही हू और महासत नही हू। आप सबके आशीर्वाद से और इन वैष्णवो के भक्ति, प्रेम के वश मे कल प्रभात में साढ़े चार बजे अपने स्थान से रवाना होऊँगा और पुडलीक के मंदिर मे, रुक्मिणी माता के मदिर मे और पाडुरग के मदिर में तीनों जगह भगवान से भेट करूँगा।

मेरे मित्रो! अधिक कुछ कहने की जरूरत नही है और अधिक कहने की शक्ति भी अब मुझमे नहीं है। फिर भी एक बात कहता हूँ कि यह जो आग्रह मै रखता हूँ, वह यदि मैं न रखू, तो ससार मे हिन्दू-धर्म की साख नहीं रहेगी, इतना ही कहता हूँ। मुसल्मानों ने अपनी मसजिदों मे, ईसाइयो ने अपने गिरजों मे, सिक्खों ने अपने गुरुद्वारों में कई जगह अत्यत प्रेम से मेरा स्वागत किया है। अजमेर का दरगाह भारत का मक्का माना जाता है। वहाँ दस हजार मुसलमानों की जमात मे १९४७ मे उन्होंने मुझे बुलाया था और वहाँ उस दरगाह में बैठकर हमने अपनी 'स्थितप्रज्ञस्य का भाषा' वाली गीता-प्रार्थना की। उनकी नमाज मे मै बैठा हूँ। उसके बाद उनके रिवाज के मुताबिक वहाँ जितने मुसलमान थे, वे सारे मेरा हाथ चूमकर वहाँ से गये। उन दस हजार मुसलमानों मे से प्रत्येक इस प्रकार आकर हाथ चूमकर गया। इसमे कोई घटा-सवा घटा व्यतीत हुआ। इतना उनका प्रेम मुझे मिला है। क्यों कोई प्रेम नहीं करेगा ? जिस मनुष्य के हृदय मे प्रेम ही भरा हो, उसको कौन प्रेम नहीं करेगा ? ऐसा ही प्रेम मुझे ईसाइयों

की मंडली मे और बौद्धों से मिला है। जापान के कुछ स्नेही मेरे साथ हैं। बौद्ध हैं वे। हमने बौद्धो के प्रेम के कारण बोधगया मे समन्वय आश्रम खोला है और घोषित किया है कि हमे वेदान्त तथा बौद्ध-मत का समन्वय करना है। बौद्ध लोग भी बड़े प्रेम से कहते हैं कि बुद्ध ने जो धर्मचक्र प्रवर्तन किया था, उसीको बाबा की यात्रा आगे चला रही है। इस प्रकार मुझे बौद्धों का आशीर्वाद मिला है, मुसलमानों का मिला है, हिन्दुओं का तो है ही। जब मैं केरल मे गया था, तो वहाँ चार अलग-अलग तरह के गिरजे हैं। ईसाइयों के चार पथ है। वहाँ के चारों गिरजाघरो के मुख्य बिशप लोगों ने एक पत्रक प्रकाशित किया था कि विनोबा जो काम कर रहा है, वह हजरत ईसा का ही काम है। इसलिए सभी गिरजे उनको सहकार दे। इस प्रकार आपके धर्म के एक व्यक्ति का स्वागत जब सर्वधर्मीय करते हैं, तो मैं किस मुँह से कहूँ कि मै अकेला इस मदिर मे जाऊँगा और "मुसलमानो तुम्हारी इच्छा हो, तो भी मत आओ" मैं कैसे यह कहूँ? जिसे इच्छा ही नहीं होगी, वह आयेगा ही क्यों? जिसकी मूर्ति मे श्रद्धा न हो, उसे नहीं आना चाहिए। परतु जिसे भक्ति है, भाव है, उसे क्यो प्रतिबंध हो। कबीर का नाम इस पंढरपुर मे है या नहीं? आप कबीर के भजन गाते हैं कि नही?

"कबीराचे मागी विणू लागे मूल उठविले कुंभाराचे।"

(कबीर के साथ करघे पर बुनाई की। कुम्हार के बेटे को जिलाया।)

तो कौन था वह कबीर? शेख महमूद कौन था? भागवतों में कभी ऐसा भेद हुआ है? यह अपने महाराष्ट्र की घटनाएँ हैं। तुकाराम ने लिख रखा है कि मुझे चार साथी मिले। चार खिलाडी साथी मिले। कौन-कौन से? ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ और कबीर।

फिर अब किस मुँह से कहूँ कि मैं अकेला मंदिर मे जाऊँगा। हरिजनो को जाने देते हैं। परंतु हरिजनो के साथ मैं चला जाऊँ और बौद्ध मेरे साथ हो, तो प्रवेश नहीं मिलेगा। मुसलमान आये, ईसाई आये, तो प्रवेश नहीं मिलेगा। क्या यह मुझे शोभा देगा? क्या इससे हिन्दू-धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ेगी? यह सब विचार आप करें। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि यह विचार आपको जँचा है। आपने मुझे पत्र लिखकर भेजा है। इस तरह भारत के सारे हिन्दू-धर्म-मंदिरो के

दरवाजे, हृदय के दरवाजे खोल दिये। यह मेरा विश्वास है, यह जो भूदान-ग्रामदान-यज्ञ चल रहा है, वह समूचे विश्व के लोगों को आकर्षित कर रहा है। इस यात्रा में बीस-पचीस भिन्न-भिन्न देशों के लोग आये हुए हैं। इस भावना से आये हैं कि भारत में एक बहुत उज्ज्वल तेजोमय ज्योति प्रकट हो रही है। उसकी हम सब लोगों को आवश्यकता है। ऐसी भावना से विदेशों के लोग यहाँ आते हैं। उनको छोड़कर मैं मंदिर में जाऊं, तो क्या वह मुझे शोभा देगा ? शोभा नहीं देगा। इसीलिए मेरा आग्रह है। अन्यथा मुझे किसी पर आक्रमण नहीं करना है। यह चीज मेरे जीवन में है ही नहीं। वह मेरा शील नहीं है। वह अहिंसा नहीं है। वह संतों की सिखावन नहीं है। मैं बहुत हर्षित हो रहा हूँ। कल परमेश्वर ने अपने मंदिर में मुझे बुलाया है। मैं बड़ी उत्कंठा से जाकर विठोबा के दर्शन करूँगा और मुझे जो पुण्य मिलेगा, उससे मुझे आशा है कि इस देश में बहुत आनन्द फैलेगा।

अब मेरे मित्रो ! मेरी बात समाप्त हो चुकी है। अब हम पाँच मिनट भगवान की प्रार्थना करेंगे।

पंढरपुर,
२९-५-'५८

परिशिष्ट : ४

हिन्दी-प्रेमी-सम्मेलन

[विनोबा]

[सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर पंढरपुर में महाराष्ट्रप्रान्तीय हिन्दी-प्रेमी-सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन में विनोबा का प्रवचन हुआ। शुरू में महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ और विद्वान् महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार का प्रास्ताविक भाषण हुआ।]

श्री विनोबा :

आदरणीय पोतदारजी ने काम के अहवाल पेश किये। उस सिलसिले में उन्होंने कहा कि हिन्दी की प्रगति से किसी भाषा को क्षति नहीं पहुँचेगी। बात बिल्कुल ठीक है। हिन्दुस्तान के लिए यह बहुत बड़े गौरव का विषय है कि इस देश में बहुत-सी

भाषाएँ हैं। योरोप मे भाषा-भेद से राष्ट्र-भेद पैदा हो गये हैं। भाषा के आधार पर वहाँ ८.लग-अलग राष्ट्र खडे हो गये। भारतवर्ष इतना विशाल देश है, लेकिन यहाँ भाषा के आधार पर राष्ट्र नही बने। भारत एक राष्ट्र है, इसलिए यहाँ भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों के लिए आपस के व्यवहार की एक राष्ट्रीय भाषा का विकास सुलभ होना चाहिए। वह राष्ट्र-भाषा हिन्दी ही हो सकती है। इसका कारण यह नहीं है कि दूसरी भाषाओं से हिन्दी अधिक समृद्ध है। बल्कि कारण यह है कि दूसरी भाषाओ की अपेक्षा यह ज्यादा सुभीते की भाषा है। अलग-अलग भाषाएँ बोलनेवालों की जबान पर आपस के व्यवहार में वह सहज रूप से अपने-आप आती है। ऐसी राष्ट्र-भाषा सहज ही सारी भाषाओं की मदद से श्रीमान् बनेगी। हम सब मिलकर उसके वैभव को बढ़ायेंगे। दुनिया मे जो भाषाएँ फैल गयी हैं, उसके लिए अलग-अलग कारण रहे हैं। कुछ भाषाओ मे विज्ञान विशेष है। विज्ञान-प्रेमी उन भाषाओ की कद्र करते हैं। कुछ भाषाओं का साहित्य समृद्ध है, उसके कारण उनका गौरव बढ़ा है। कुछ भाषाओं का प्रचार व्यापार के कारण हुआ, परन्तु अब दुनिया के लोग वही भाषा सीखेंगे, जो भाषा शान्ति का वाहन बनकर आयेगी। जिसके सीखने से शान्ति की राह मिलेगी। आज दुनिया को शान्ति की जरूरत है। भिन्न-भिन्न देशों के लोगों में लड़ाई के बदले प्रेम का व्यवहार जिस भाषा के द्वारा कायम होगा, वही । ५जा त की प्रियभाषा होगी। चाहे फिर उस भाषा मे साहित्य का ऐश्वर्य कम हो। इस दृष्टि से हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है। उसकी शब्दसम्पत्ति साहित्य की दृष्टि से समृद्ध हो या न हो, परन्तु भारत की विविध भाषाओं की शब्दसम्पत्ति हिन्दी को समृद्ध करेगी। यह शब्द-सग्रह प्रेम और एकता के आधार पर होगा। जो भाषा भारत में शान्ति की राह दिखायेगी, वह भारतवर्ष मे जगत् को शान्ति की राह दिखाने की शक्ति प्रकट करेगी।

चार-छह महीने पहले एक विचार प्रकट किया कि शान्ति की राह अख्तियार करने के लिए हिन्दुस्तान या इंग्लैण्ड में से कोई एक देश तैयार होगा। दोनो तैयार हो सकते हैं, फिर भी उनमें से एक अग्रसर होगा। मेरे साथ यह जर्मन लडकी हेमा घूम रही है। वह सोचती है कि शायद जर्मनी भी कदम बढ़ाये। जापान भी अहिंसा के आधार पर उठकर खडा हो सकता है, लेकिन दुनिया को सबसे अधिक आशा

रखने का अधिकार भारत से है। यदि भारत शान्ति के आधार पर जीवन का निर्माण आरम्भ करे, तो हिन्दी सीखनेवाले हर जगह मिलेंगे।

इंग्लैण्ड से कई बातों में तीव्र मतभेद होते हुए भी हिन्दुस्तान प्रेम के लिए कॉमनवेल्थ में रहा है। इंगलिस्तान में अक्ल हो, तो उस प्रेम की वह कद्र करेगा और इंगलिस्तान में दूसरी भाषा के तौर पर हिन्दी को स्वीकार करेगा। मेरी यह बात सुनकर हमारे साथी डोनाल्ड ग्रूम खुश हुए। कहने लगे, यदि इंग्लैण्ड यह बात पकड़े, तो शान्ति की ताकत बढ़ेगी। इग्लैण्ड सोचेगा कि हिन्दुस्तान यदि प्रेम से अँग्रेजी सीख रहा है, तो हम भी प्रेम के खातिर हिन्दी सीखें। पहले हमने अँग्रेजी जबर्दस्ती उसके माथे पर थोप दी थी, अब वह अपनी इच्छा से सीख रहा है, इसलिए हमको भी अपनी इच्छा से हिन्दी सीखनी चाहिए। अगर सचमुच ऐसा हुआ, तो योरोप-एशिया में मित्रता की कड़ी कायम होगी। एक-दूसरे के लिए विश्वास बढ़ेगा।

आप हिन्दी-प्रेमी लोग अपने को भाषा का प्रचारक न समझें। भाषा कोई प्रचार की वस्तु नहीं है, वह तो व्यवहार का साधन है। आप यह समझें कि हिन्दी के जरिए एक विशेष सन्देश हमको दुनिया में पहुँचाना है। आप सन्देश-वाहक बनें, विचार के वाहक बनें। हिन्दुस्तान का कोई भी आदमी अगर विदेश जाय, तो वहाँ उसकी भाषा हिन्दी ही समझी जायेगी। वह केवल हिन्दुस्तान की राज्य-भाषा नहीं मानी जायेगी। उसके द्वारा भारत का विशिष्ट विचार दुनिया में फैलेगा। लोक भाषा का आधार लोक-नीति है। लोक-नीति शान्ति का विशेष दर्शन है। हिन्दी के द्वारा वह मूल विचार दुनिया में फैलेगा। लोकनीति का आधार आत्मशक्ति है, जिसे हम करुणा और प्रेम की शक्ति कहते हैं। अति प्राचीन काल से आज तक सन्तों ने, ज्ञानियों ने, वृद्ध पुरुषों ने हमें यही समझाया है। आज दुनिया के कान उस सन्देश को सुनने के लिए लालायित हैं, इसीलिए गाधी-विचार का आज इतना आवाहन हो रहा है। दुनिया चाहती है कि हम उन साधनों से छुटकारा पायें, जो भस्मासुर की तरह हमें जला रहे हैं। उस सन्देश की भाषा हिन्दी होगी, इसलिए आप अपने को हिन्दी-भाषा के विद्यार्थी नहीं, प्रेम-भाषा के विद्यार्थी समझें।

हिन्दी सचमुच प्रेम की भाषा है। उसमें प्रेम है और विनय है। ताकत का घमण्ड नहीं है। उसकी नम्रता की कोई हद नहीं। मेरा ही उदाहरण लीजिये।

मेरी तो बिल्कुल प्रीवेसिक हिन्दी है। शिशुवर्ग का विद्यार्थी हूँ। जहाँ शब्द नहीं सूझ पडता, वहाँ सस्कृत की शरण लेता हूँ। लेकिन हिन्दी-भाषियों ने कितनी सहन-शक्ति विकसित की है। मेरे बारे मे कहते हैं कि इसकी भी एक शैली है और इनाम भी दे देते हैं। जो लचीली और सहनशील भाषा होती है, वह श्रीमान् होने की क्षमता रखती है।

अंग्रेजी भी लचीली है। कॉलेज में मैंने 'किंग्स इग्लिश' पुस्तक पढ़ी थी। उसमे बड़े-बड़े ग्रथकारो की गलतियों के उदाहरण दिये हैं। मैंने सोचा, जब इतने बडे ग्रथकार गलतियाँ करते हैं, तो गलतियाँ करने का मेरा अधिकार सिद्ध ही है। स्वामी दयानन्दजी ने जो हिन्दी लिखी, वह एक प्रकार की गुजराती ही थी। एक विचार यह भी बार-बार प्रकट किया जाता है कि सस्कृत ही राष्ट्रभाषा बने। मैं भी मानता हूँ कि राष्ट्रभाषा सुसस्कृत याने सुलभ सस्कृति होगी। बहुत-से शब्द सस्कृत के होंगे। क्रियापद और सज्ञा के रूप (सुबन्त और तिङन्त) हिन्दी के रहेंगे। सस्कृत भाषा की झझटों और खटपटों का आग्रह रखने की कोई जरूरत नहीं है।

सस्कृत भाषा के शब्दों की टकसाल बहुत बड़ी है। काशी मे भिन्न भाषीय संस्कृति के पंडित एकत्र रहने लगे। आपस में वे संस्कृत में बोलते थे। सवाल यह कि लिखित व्यवहार किस लिपि मे हो। हिन्दी-भाषियों ने और मराठी-षियों ने नागरी-लिपि को स्वीकार किया। मराठी के लिए भी उन्होंने नागरी-लिपि चलायी। महाराष्ट्र के लोगों की दीर्घदशिता का यह परिचायक है। इससे मराठी बालकों को बडी आसानी हो गयी। मराठी बोलनेवाला बालक एक लिपि सीखकर दो भाषाएँ पढ सकता है। इसका श्रेय उसके दीर्घदर्शी पूर्वजो को है। जिन्हे केवल एक भाषा आती है, वे एकाक्ष लोग हैं। आप लोगों को कम-से-कम दो आँखें तो हैं। आपका कार्य अभिनन्दनीय और धन्यवाद के योग्य है।

पंढरपुर,
२९-५-'५८

परिशिष्ट : ४

अखिल भारत दलितवर्ग-संघ

[विनोबा]

स्वराज्य-प्राप्ति के दस वर्ष पूरे हुए हैं। अस्पृश्य समाज का काम हमारे देश में स्वराज्य-प्राप्ति से बहुत पहले शुरू हो गया था। स्वराज्य शब्द १९०६ में दादा भाई नौरोजी ने दिया। उसके बाद दूसरों ने उस शब्द को अपना लिया। गांधीजी ने भी हिन्द-स्वराज्य नाम की पुस्तक लिखी। स्वराज्य के लिए आन्दोलन हुए। अस्पृश्यता-निवारण का काम महाराष्ट्र में सत्तर वर्ष पहले महात्मा ज्योतिराव फुले ने किया। बंगाल में राजा राममोहन राय ने भी अस्पृश्यता-निवारण के लिए बहुत कोशिश की। इन सब प्रयत्नों का उद्देश्य यह था कि हरिजनों की उन्नति हो, उनमें और सवर्णों में किसी प्रकार का फर्क न रहे। स्वराज्य के लिए प्रयत्न किया गया, वह सफल हुआ। स्वराज्य मिल गया, फिर भी अस्पृश्यता-निवारण का काम चल ही रहा है। स्वराज्य में भी यह बड़ा विकट प्रश्न माना गया है, क्योंकि यह हमारे शरीर की भीतरी बीमारी है। स्वराज्य में बाहरी बीमारियाँ मिट गयीं, परन्तु भीतरी रोग दुरुस्त नहीं हुआ। अन्तस्थ रोगों के लिए सूक्ष्म उपचार की आवश्यकता होती है। वह उपचार नहीं किया गया, इसलिए इस बीमारी को दूर करने में इतनी देर लग रही है। अब हमें यह लगन होनी चाहिए कि आइन्दा हरिजन और परिजन का भेद ही न रहे। मानव मात्र एक ही है, इसलिए यह जो भेद है, उसमें कोई अर्थ नहीं है। कहा गया है कि मनुष्य-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। वह दुर्लभ नरजन्म जिन्हें प्राप्त हुआ, उन सबको हमें एक ही श्रेणी का मानना चाहिए। स्वराज्य में तो यह भेद बिलकुल मिट जाना चाहिए।

इस भेद को मिटाने का एक उपाय मेरी समझ में आता है। जब खाना-शुमारी (मरदुमशुमारी) होती है, तब अक्सर यह सवाल पैदा होता है। अगर उसे पैदा ही न होने दें, तो क्या होगा? गाँव में जाकर यह सवाल ही न पूछें कि ब्राह्मण कितने हैं, चमार कितने हैं, महार कितने हैं। अगर कोई ऐसा सवाल पूछे, तो

उमका उत्तर ही न दें। उससे कहे कि मेरी आँखें और नाक देखो और उस पर से मेरी जाति का निश्चय करो। कहते है कि सूक्ष्म दृष्टिवाले लोग आँखें और नाक देखकर मनुष्य की जाति का निर्णय कर सकते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि चीनी और जापानी लोगों को आँख, नाक पर से पहचान सकते है। उनकी आँखे और नाक बिल्कुल विचित्र ढग के होते हैं। इसलिए हम कहते हैं कि ऐसे प्रश्न हमसे मत पूछिये, फिर हमारी आँख, नाक देखकर भलेही निर्णय कीजिये।

परंतु किसे अस्पृश्य कहे और किसे स्पृश्य कहे, यह सब किसलिए? किसी जमाने मे यह कहा जाता था कि जो गरीब है, उसे भी होटल मे जाने का अधिकार होना चाहिए। होटलों और मुसाफिरखानों मे घोडों के लिए भी प्रवेश है, तो मनुष्यों के लिए क्यों न हो? हमारे देश में पुराने जमाने में कुछ हरिजन, हम हरिजन नहीं हैं यह कहकर होटलो में जाते थे। अब वह जमाना नहीं रहा। समय बदल गया है। अब कोई झूठ बोलता हो या न बोलता हो, किसीसे उसकी जाति नहीं पूछना चाहिए। सबको होटलों में प्रवेश होना चाहिए। जो लोग मासाहार नहीं करते, उनके लिए अलग प्रबन्ध भले ही हो, परन्तु यह वाहियात सवाल किसीसे नहीं करना चाहिए कि तुम किस जाति के हो। कोई पूछे, तो इतना उत्तर काफी होना चाहिए कि हम मानव जाति के हैं और मराठी बोलते हैं। मेरी राय मे यह उपाय सबसे अधिक परिणामकारी होगा। गाँव मे किसीके घर में आग लग जाय, तो क्या ब्राह्मण यह कहकर कि यह हरिजन का मकान है, आग बुझाने नहीं जायगा और क्या हरिजन इसलिए आग बुझाने नहीं जायगा कि मकान ब्राह्मण का है। जिसकी जाति हमे पसन्द हो, उसीकी जान बचाने की नीति हम अपनाने लगे, तो इस युग मे हम कहीं के नहीं रहेंगे और मानवता से वचित होंगे।

हमारा समाज अनेक दुखो का शिकार है। शिक्षण के क्षेत्र मे निरक्षरता भी है और अस्पृश्यता भी है। अब ऐसा प्रस्ताव होना चाहिए कि अलग-अलग जातियों के लिए छात्रावास नहीं चलेंगे। हम यदि एक अस्पताल यहाँ खोलें, तो हम यह नहीं कहेंगे कि तुम हरिजन हो इसलिए तुम्हे दवा नहीं मिलेगी। तुम्हे हम नहीं छुएँगे। हम तो इतना ही जानते हैं कि कोई किसी भी जाति का हो, उसकी सेवा करनी है और उसका रोग दूर करना है। स्टेशन पर टिकट खरीदते समय हमसे कोई हमारी जाति नहीं पूछता। जाति की जरूरत ही कहाँ पड़ती है। ले-देकर

ब्याह के समय सवाल पैदा होता है। हमारे घर मे विवाह-योग्य कन्या है, तो उसे जिस घर में देना हो, उस घर के लोग कैसे है यह हम देखेंगे। उन लोगों का खान-पान, रहन-सहन, चाल-चलन का तरीका अलग हो, तो सारे सस्कार और जीवन-पद्धति में फर्क पड़ जाता है। जो लोग मास नही खाते, वे इतना ही देखे कि क्या जहाँ लड़की देनी है, उस घर के लोग मास खाते है। मासाहारी परिवार मे लड़की न दे। क्योंकि सस्कारों मे भेद हो जाता है। इतना काफी है। खादी-वाले यह भी देखने लगते है कि जिस कुटुम्ब मे लड़की देनी है, उस कुटुम्ब के लोग खादी पहनते है। या नही इसकी बिल्कुल जरूरत नहीं है। मान लीजिये कि लड़का खादी नहीं पहनता, फिर भी सम्भव है कि घर में खादीधारी लड़की के आने पर वह खादी पहनने लगे। इस तरह से समान सस्कार कायम हो सकते है। समान सस्कार खोजना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है।

कुछ लोगों को जाति पूछने का शौक होता है और कुछ लोगों को कुण्डली देखने का शौक होता है। जन्म की घडी देखकर उस वक्त कौन-सा ग्रह कहाँ था? गुरु कहाँ था? मगल कहाँ था? देखने की क्या जरूरत? उस नक्षत्र मे लाखों लोगों का जन्म हुआ होगा। कुछ लोग तो पूर्व जन्म का पता भी लगाना चाहते हैं कि पिछले जन्म मे यह गदहा था या घोडा? जिन्हे शौक होता है, वे यह भी देखते हैं। जिसने भृगुसहिता लिखी, उसने हरएक नक्षत्र मे जन्म लेनेवाले मनुष्यों के विषय मे लिखा है, परन्तु इसके बाद भी फर्क रह ही जाता है। एक ही नक्षत्र में मेरे जन्म के साथ-साथ कुछ घोडे और गधे भी पैदा हुए होंगे। गधा, गधा रह जाता है और मैं मनुष्य का मनुष्य रह जाता हूँ। इस फर्क को कोई नक्षत्र नहीं मिटा सकता। गधे का नसीब उसके हाथ में नहीं है। मेरा नसीब मेरे हाथ मे है। इसलिए कुण्डली का भरोसा नहीं करना चाहिए। तुकाराम ने एक विलक्षण बात कही है। जो लोग सगुन बताना जानते हैं, भूत, भविष्य, वर्तमान बतलाते है, वे मुझसे तो देखे भी नहीं जाते। जो तुकाराम सर्वत्र परमेश्वर देखता था, भूत मात्र को भगवन्त मानता था, उस तुकाराम ने भविष्य बतलाने-वालों के विषय मे ऐसी करारी बात कही है—सुनता हूँ कि राशि भविष्य की बदौलत आज के समाचार-पत्रों की खपत बढ़ गयी है। तुकाराम की सिखावन देखिए और इन समाचार-पत्रों की सिखावन देखिये।

मतलब यह कि कुण्डली मे भी सार नहीं है और जातिभेद में भी सार नहीं है। समान संस्कार अवश्य देखने चाहिए। दो व्यक्तियों में समान संस्कार न हो, तो उनके सम्बन्ध से लाभ नही होता। दोनों मे विरोध पैदा होता है। इसलिए आप सब यह निश्चय कीजिये कि अब जाति के विचार हम अपने मन मे नहीं आने देंगे। पुराने जमाने में वर्ण-व्यवस्था थी, परन्तु वर्ण-व्यवस्था और जातिभेद मे तनिक भी सम्बन्ध नही है। वर्ण-व्यवस्था उस जमाने मे गुण विकास के लिए थी, परन्तु अब उसकी जगह जातिभेद आ गये हैं। वर्ण-व्यवस्था भावनात्मक थी। वह जाति पर आधार नहीं रखती थी, इसलिए गाधीजी ने कहा कि जातिभेद का निर्मूलन करना चाहिए। विवाह के समय जातिभेद का विचार बिल्कुल नहीं किया जाय और दूसरा उपाय यह कि हम किसीकी जाति न पूछें और हमसे कोई हमारी जाति पूछे, तो उसका उत्तर न दें।

पंढरपुर,
२९-५-'५८

परिशिष्ट : ६

सामाजिक समाधि : आज के युग की माँग

[विनोबा]

आज प्रात काल मैंने जो दृश्य देखा, उसे मैं जीवनभर भूल नही सकता, उसकी इतनी गहरी छाप मेरे हृदय पर पड गयी है। वहाँ विठोबा के सामने खड़े रहते हुए मुझे जो अनुभव हुआ, उसे मै शब्दों मे व्यक्त नहीं कर सकता।

वहाँ के व्याख्यान में मैंने कहा था कि "आज मुझे जो दान मिला और मुझ पर जो उपकार किया गया, उससे अधिक श्रेष्ठ दान और अधिक उपकार आज तक किसीने मुझ पर नहीं किया। अभी महाराष्ट्र में करीब चार महीने मेरी यात्रा चलेगी। उस बीच मुझे कोई कितनी ही जमीन दे या न दे, कोई मुझे ग्रामदान दे या न दे, लेकिन आज जो दान दिया, उसे देकर महाराष्ट्र ने अधिक-से-अधिक जितना देना सम्भव था, दे डाला।" कल के व्याख्यान में मैंने जो बातें कही, उनकी पुनरुक्ति

आज नहीं कर सकता । लेकिन आज यह जो घटना घटी, मेरी दृष्टि में सर्वोदय के इतिहास मे यह अभूतपूर्व घटना है । आज एम० आर० ए० वाले मेरे पास आये थे । उनसे मैंने कहा कि आज पंढरपुरवालों ने नैतिक शस्त्रागार अत्यन्त सुदृढ़ कर दिया है ।

सर्वोदय द्वारा 'विश्व मानुष' की प्रतिज्ञा पूरी करें

भारत मे जो एक परम्परा है, उसी परम्परा से भारत का आज एक 'मिशन' (पुनीत उद्देश्य) है । दुनिया के नक्शे पर स्वतन्त्र भारत पहले आया और विश्व को एक करने के लिए उसके जिम्मे कुछ कर्तव्य है । उस कर्तव्य को निभाने की सामर्थ्य उसमे आनी चाहिए । आज जैसी घटनाओं से वह सामर्थ्य प्राप्त होगी । हिन्दुस्तान मे अनेक पंथ, धर्म और भाषाएँ बाहर से आयीं । कुछ यहाँ के भी थे । उन सबको भारत ने आत्मसात् कर लिया, सबका भरण किया, इसलिए उसका 'भारत' नाम 'भरणात् भारतम्' सार्थक हुआ । उसका यह कार्य विश्वभर में फैलना चाहिए, यह काम उसके जिम्मे है । इसीलिए मैंने कई बार कहा है कि अब 'जय-हिन्द' का, 'जय-भारत' का नारा भी छोटा पड़नेवाला है । अब तो ऋग्वेद की 'विश्व मानुष' भावना के अनुसार ही उसे व्यापक बनाना होगा । यह काम भारत को 'सर्वोदय' द्वारा करना है ।

तब का अनुराग आज साकार

बिहार के वैद्यनाथधाम में, मंदिर-प्रवेश के समय हम लोगों पर मार पड़ी । उस दिन की मार में हम लोगों ने भगवत्-स्पर्श का अनुभव किया था । सबसे अधिक मार बिहार के रामदेव बाबू पर पड़ी थी । लेकिन उन्होंने कहा था : "गाधीजी मार सहने को कहते, तो हम लोग सह तो- लेते थे, पर भीतर से गुस्सा अवश्य आता था । लेकिन इस बार तनिक भी गुस्सा नहीं आया ।" इस तरह उस दिन जो अनुराग प्रकट हुआ, आज यहाँ वह साकार रूप में प्रतिफलित हो उठा है । उस समय की वह उत्कट भावना कि—"जगन्नाथ सचमुच जगत् का नाथ बने", कृष्ण वन्दे जगद्गुरुम्—"भगवान् कृष्ण सचमुच जगद्गुरु बनें और यह भारत राष्ट्र सचमुच विश्व का भरण, सेवा करनेवाला बने"—आज सफल हुई ।

भगवान् की करुणा का प्रत्यक्ष दर्शन

हमारे इस पंढरी के राजा ने, हमारे पिता ने बच्चों की शर्त पर हमें भेंट दी ।

इससे अधिक करुणा, प्रेम और वात्सल्य क्या हो सकता है ? अपनी शर्त पर भगवान् भक्त से मिले, तो इसमें कोई आश्चर्य नही। उसने आपनी शर्त घोषित ही कर दी है कि जिसकी प्रज्ञा स्थिर होगी, उसीसे मैं मिलूंगा, वही मेरा दर्शन कर पायेगा। लेकिन आज भगवान् ने मुझे अपनी इस शर्त पर नहीं, मेरी शर्त पर दर्शन दिये। इसलिए उसके परम कारुण्य का मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया।

मेरा विश्वास है कि महाराष्ट्र ने जिम भगवत्-धर्म की नींव डाली और जिसका उत्तम आदर्श पुण्डलीक ने अपने आचरण द्वारा खडा कर दिया, वही भागवत्-धर्म सारा विश्व व्याप्त कर लेने की क्षमता रखता है। उसका उज्ज्वल रूप आज से प्रकाशित होगा और वह हम लोगों के समग्र जीवन का स्पर्श करेगा।

पुंडलीक की सन्निधि मे

आज सुवह मदिर मे जो घटना घटी, उससे सवका हृदय भर आया। पहले जव मैं पुडलीक के पास गया, ता वहां मैंने यह कह ही डाला कि "पुडलीक का दर्शन हो जाने के वाद अव देव-दर्शन मेरी मुट्ठी मे आ गया है, क्योंकि पुडलीक की यह महिमा ही है—"पुडलीकाच्या भेटी, परब्रह्म आले गा। चरणी वाहे भीमा, उद्धरी जगा।" उसने परमेश्वर को यहाँ वुलाया। पुडलीक अपने सेवा-कार्य में मगन रहा। उससे मिलने प्रत्यक्ष ईश्वर आया, तो उसने एक ईंट फेंककर कहा कि "यहाँ खड़ा रह, मेरी सेवा पूरी होने के वाद तेरा दर्शन करूँगा।" इस तरह जैसे पुंडलीक भगवान् से कह पाया, वैसे ही मैं भी कह सकता था कि "भगवन्, मुझे आपका दर्शन न मिल पाये, तो भी हर्ज नहीं। मुझे तेरे दर्शन के लिए फुर्सत नहीं। यह मैं चला हिन्दुस्तान मे अपने आगे के काम के लिए। वह काम पूरा होने के बाद फुर्सत से तेरा दर्शन करूँगा।" पुडलीक के दर्शन के समय मेरे मुंह से वरवस ये उद्गार निकल ही पडे।

ब्रह्म-विद्या के प्रकाशन मे भी अलग माधुरी

श्री रामानुजाचार्य की कहानी सभी जानते ही होंगे। उन्होंने अपने गुरु के मन्त्र को जग-जाहिर करने के लिए खुद नरक भोगना भी पसंद किया और देशभर घूमकर उसका खुला उपदेश दिया। तव तक ब्रह्म-विद्या गुप्त रखने की हमारे यहाँ

की एक दृष्टि थी। वह गलत थी, ऐसा मैं नहीं कहता। उसमें भी कुछ सार था। ब्रह्म-विद्या बाजार में बेचने के लिए लाने पर उसका कुछ मूल्य नहीं होगा, इसलिए उसे गुप्त रखने में ही मिठास है। लेकिन उसे प्रकट करने की मिठास भी अलग ही है। हमारे यहाँ ज्ञानदेव और एकनाथ ने वही किया। जैसे हिन्दुस्तान भर रामानुज ने ब्रह्म-विद्या के दरवाजे खोल दिये, वैसे ही ज्ञानदेव ने भी यहाँ ब्रह्मविद्या की सपन्नता कर दी। "इये मराठिचिये नगरी, ब्रह्मविद्येचा सुकाळ।" उन्होंने ही आगे कहा है, "गुरु शिष्याचिये एकांती"—याने जो ज्ञान गुरु के मुख से एकांत में शिष्य को प्राप्त होता है, वही (ज्ञान) भक्त सारे विश्व को मेघ की तरह गर्जना करके बाँटते हैं। उन दिनों ब्रह्म विश्व को दूर रखकर कहीं जा छिपा था, लुप्त हो गया था। वह ध्यान से ही हाथ लगने की स्थिति में पहुँच गया था। लेकिन ज्ञानदेव ने वह रहस्य सबके सामने प्रकट कर दिया। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव ने यह जो महान् पराक्रम किया, रामानुज और चैतन्य ने वही देशभर में किया। वे जहाँ-जहाँ गये, ज्ञान ही बाँटते गये। स्त्रियों, नन्हे बच्चों और साधारण जनता—सबको ज्ञान बाँटते गये, इसीलिए ऐसी भावना है कि चैतन्य भगवान् कृष्ण के अवतार ही हुए हैं, क्योंकि उनमें प्रेम साकार उतरा हुआ था।

यह जो प्रेम का धर्म संतों ने हमें सिखलाया, हमें अब उसे ही आगे बढ़ाना है। क्योंकि यह उस काल की जिन मर्यादाओं से बँध गया था, वे आज नहीं रहीं। इसीलिए आज हम दो कदम आगे बढ़ेंगे, संतों द्वारा सिखलाये ज्ञान को पहचानेंगे, उसे नया रूप देंगे और सारी दुनिया के सामने रखेंगे। यह इच्छा इस युग के अनुरूप ही है। अब वैदिक धर्म को नया रूप प्राप्त होनेवाला है।

अब भक्ति का रूपान्तर सर्वोदय में होगा

अब भक्ति का रूपान्तर सर्वोदय में होगा। 'समं सर्वेषु भूतेषु' इस भक्ति को अब 'पराभक्ति' नहीं रखना है, उसे 'सामान्या भक्ति' बनाना है। किसी एक को ही समाधि में यह अनुभव होता है कि ये भूतमात्र मेरे सखा हैं, सारे भेद मिथ्या हैं, वे मिटने चाहिए। किन्तु आज यही अनुभव सबको होना चाहिए। दूसरे शब्दों में अब सामाजिक समाधि सधनी चाहिए। परमात्मा मेरे मुह से बहुत बड़ी बातें कहलवा रहा है। तीन साल पहले बंगाल की यात्रा में मैं एक ऐसी जगह पहुचा, जहाँ रामकृष्ण परमहंस की पहली समाधि लगी थी। तालाब के किनारे

उसी जगह बैठकर मैंने कहा था कि "रामकृष्ण को जो समाधि लगी थी, उसे अब हमें सामाजिक बनाना है।" यह भी ज्ञानदेव ने कह दिया है—"बुद्धिचे वैभव अन्य नाहिं दूजे।"—एकत्व का अनुभव सबको होना चाहिए।

साम्ययोग : पहले शिखर, अब नींव

विज्ञान के युग मे साम्ययोग भी सिर्फ समाधि में अनुभव करने की चीज नहीं रही, बल्कि सारे समाज मे अनुभव करने की बात बन गयी है। साम्ययोग पहले शिखर था, पर अब 'नींव' बन गया है। अब हमें साम्ययोग के आधार पर अपना जीवन बनाना चाहिए। यही विज्ञान-युग की मॉगें हैं, आवश्यकता है। इसीलिए आज हम जैसे साधारण लोगो को भी ऐसे काम करने की प्रेरणा हो रही है। इससे हमारे पूर्वज 'शाबाश' कहकर हमारी पीठ ठोकेंगे।

सर्वश्रेष्ठ भक्त का लक्षण : पूर्ण निर्भयता

हम पीछे कह चुके हैं कि हमें भक्ति का रूपान्तर सर्वोदय मे करना है। भक्ति का मूलमत्र देनेवाला प्रह्लाद है। नारद उसका गुरु है, फिर भी महाभक्तों की सूचि में प्रह्लाद का नाम पहले आता है और नारद का उसके बाद। इसका कारण यह है कि जब भयानक रूप धारण कर नरसिंहावतार प्रकट हुआ, तो भगवान् की चिर-परिचित लक्ष्मी भी घबरा उठी और नारद की जो वीणा क्षणभर रुकती नही थी, वह भी रुक गयी और नारद भी घबरा उठा। फिर भी प्रह्लाद निर्भयता के साथ नरसिंहावतार के सामने खडा होकर कहने लगा—'नाहं बिभेमि'—मैं तुमसे नहीं डरता। उसने भगवान् के रूप के समक्ष जो निर्भयता दिखलायी, उसी कारण वह सर्वश्रेष्ठ भक्त माना गया। दुष्ट रूप के सामने बहुतों ने निर्भयता दिखलायी थी। व्याधा वाल्मीकि के सामने नारद थोड़े ही डिगनेवाला था। लेकिन भगवान् के रूप के सामने तो वह क्षणभर घबरा ही गया। इसीलिए निर्भयता की कसौटी पर प्रह्लाद पहला उतरा।

इसके बाद प्रह्लाद ने भगवान् से वर मॉगा—

"प्रायेण देवमुनय स्वविमुक्तिकामा।
मौन चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठा॥
नैनान् विहाय कृपणान् विमुमुक्षुरेक।"

'पहले अपनी मुक्ति की कामना करनेवाले देव और मुनि काफी हो गये, जो

जंगल में जाकर मौन साधना किया करते थे। लेकिन उनमें परार्थनिष्ठा नहीं थी। लेकिन मैं अकेला इन सब कृपणजनों को छोड़ मुक्त होना नहीं चाहता।' यह कितनी कड़ी आलोचना प्रह्लाद ने की कि उन मुनियों के पीछे स्वार्थ लगा हुआ था, परार्थ नहीं। 'मैं अकेला मुक्त होना नहीं चाहता।' संस्कृत साहित्य का यह सर्वश्रेष्ठ उद्‌गार है। 'मुझे अकेले को मोक्ष नहीं चाहिए।' इस कहने में उसने कितना अधिक कवि हृदय उँडेल दिया था!

'मेरा' मिटने पर ही मोक्ष

वास्तव में मोक्ष अकेले पाने की वस्तु नहीं है। जो समझता है कि मोक्ष अकेले हथियाने का वस्तु है, मोक्ष उसके हाथ से निकल जाता है। 'मैं' आते ही 'मोक्ष' भाग जाता है। 'मेरा मोक्ष', यह वाक्य ही व्याहत है, गलत है। 'मेरा' मिटने पर ही मोक्ष मिलता है।

यह विषय हम सबके लिए चिंतन और आचरण करने के लिए भी है। मुख्य बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि अब से हमें अपना जीवन बदलना होगा। आज पंढरपुर में जो घटना घटी, उसीकी नींव पर हमें अपना जीवन निर्माण करना होगा। इसलिए जीवन के आर्थिक, सामाजिक आदि नाना भेदों को हम नष्ट कर दें। आज की घटना आपके जीवन की नींव है, यह समझकर आप बरताव करेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूँ। आप लोगों ने मुझ पर अत्यन्त उपकार किये हैं, इसलिए आप लोगों को जितना धन्यवाद दिया जाय, कम ही होगा।

पंढरपुर, २९-५-'५८

परिशिष्ट : ७

साहित्य-प्रदर्शनी के उद्‌घाटन के समय

साहित्य के प्रकाशन में मुझे हमेशा बहुत उत्साह होता है और साहित्य देवता पर मुझे श्रद्धा भी है। परन्तु इस विषय में मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह शान्ति के सिवा कभी नहीं कह सकूँगा। यह असंभव है कि जो शब्द मेरी जबान से लोग सुनना चाहें, उन्हें मैं बिना शान्ति के बोल सकूँ। अशान्ति के वातावरण में बोलने की मुझे आदत नहीं है। जिस तरह का जीवन मेरा रहा है, उसकी यह एक

मर्यादा है। जब पूर्ण ध्यान होता है, तभी मुझे कुछ सूझता है, नहीं तो सूझता ही नहीं।

मैंने कहा कि साहित्य देवता के लिए मेरे मन में बहुत श्रद्धा है। एक पुराना संस्मरण मुझे याद आता है। बचपन में मेरे जीवन के पहले दस साल एक देहात में बीते। उसके बाद के दस साल बडौदा जैसे शहरों मे गये। उसके बाद इधर उधर कुछ घूमता रहा। आखिर गाधीजी के पास पहुँचा। आगे की बात यहाँ कहने का प्रयोजन नहीं। पहले दस साल में जब हम कोंकण के एक देहात में रहते थे, तब हमारे पिताजी वहाँ नहीं रहते थे। वे बडौदा मे रहते थे। कुछ अध्ययन के सिलसिले में और पीछे काम के सिलसिले में। लेकिन वे अक्सर दीवाली के दिनो में घर पर आ जाते थे। मेरी माँ ने मुझसे कह रखा था कि अब तेरे पिताजी आनेवाले हैं और वे तेरे लिए कुछ 'खाऊ' लायेंगे। बच्चों के लिए जो मेवा-मिठाई लायी जाती है, उसे मराठी मे 'खाऊ' कहते हैं। माँ ने मुझसे कहा कि दीवाली के मौके पर तेरे लिए मेवा-मिठाई आयेगी। मैं उसके इन्तजार मे था। बिलकुल छुटपन की बात है। जब कि मेरी पढाई का अभी आरभ ही हुआ था। उन दिनों गाँव में स्कूल तो थे नहीं। घर पर ही मेरे चाचा कुछ क, का, कि, की मुझे पढाते थे। दिवाली पर पिताजी आये। उनके पास मैं पहुँचा। फौरन उन्होंने अपनी मिठाई निकालकर मुझे दे दी, जिसकी इन्तजार में मैं था। अक्सर हम ह समझते हैं कि लड्डू जैसी कोई गोल-गोल मिठाई होगी। लेकिन उन्होंने जो चीज मुझे दी, वह गोल तो थी नही, चपटी थी। मैंने उस पाकेट को देखा। मैंने सोचा, कुछ विशेष प्रकार की मिठाई होगी। बरफी का कोई लंबा-चौडा टुकडा होगा। लेकिन पिताजी ने मेरे हाथ मे दो किताबें रख दीं। उन्हे लेकर हम माँ के पास पहुँचे। जब माँ के सामने किताबें रखीं, तो माँ बोली—बेटा, तेरे पिताजी ने आज तुझे जो मिठाई दी, उससे बढ़कर और कोई मिठाई नहीं हो सकती। मुझे याद है कि वे रामायण और भागवत् की कहानियाँ थीं। कितनी मर्तबा मैंने उन किताबों को पढा, लेकिन माँ का यह वाक्य कभी नही भूला कि इससे बढ़कर कोई मिठाई हो ही नही सकती। उस वाक्य ने मुझे इतना पकड रखा है कि आज भी मुझे कोई मिठाई उतनी मीठी नहीं मालूम होती, जितनी कोई सुन्दर किताब मालूम होती।

भगवान् की वैसे तो अनन्त शक्तियाँ हैं, पर साहित्य में उन शक्तियों की केवल एक कला ही प्रकट हुई है। भगवान् की शक्ति की यह कला कवियों और साहित्यिकों को प्रेरित करती है। कवि और साहित्यिक ही वह शक्ति जानते हैं। दूसरों को उसका दर्शन नहीं है। मुहम्मद पैगम्बर के लिए कहा गया है कि जब वे समाधि में लीन हो जाते थे, तब पसीना-पसीना हो जाते थे। उनके नजदीक के लोग भी बिलकुल घबरा जाते थे। यह कैसा घोर तप हो रहा है? इससे कितनी तकलीफ हो रही है? लेकिन वह चीज 'वही' थी, जिसे अरबी में 'वही' कहते हैं। वही माने पुस्तक नहीं, किताब नहीं, वही उस चीज को कहते हैं, जो परमेश्वर का सन्देश मनुष्य के पास पहुँचाती है। उसमें यत्रणा (टार्चर) होती है, घोर वेदना होती है। जब वह परमेश्वर का सन्देश मनुष्य के हृदय पर सवार होता है, तब बहुत ही तीव्र वेदना होती है, जिसकी उपमा प्रसूति-वेदना से दे सकते हैं। प्रसूति में बहनों को जो वेदना होती है, उससे यह वेदना बहुत ज्यादा होती है। यह तो मैं अपने अनुभव से ही कह सकता हूँ। कुछ ऐसा महसूस होता है कि हम अपने को बिलकुल खो रहे हैं। कोई चीज हम पर हावी हो रही है। ऐसी कोई चीज जिसे हम टाल नहीं सकते, टालना चाहते हैं। ऐसा लगता है कि टले तो अच्छा है, लेकिन वह टल नहीं सकती, टाली नहीं जा सकती। ऐसी वेदना के अन्त में जो दर्शन होता है, वह लोगों को चखने को मिलता है। लोगों को इतना ही मालूम होता है। वेदना तो लोगों को मालूम नहीं होती। उसे तो कवि और साहित्यिक ही जानते हैं।

कवि शब्द से मेरे अर्थ में दो-चार कड़ियाँ जोड़ देनेवाला नहीं। कवि क्रान्तदर्शी होता है। जिसको उस पार का दर्शन होता है, वह कवि है। इस पार को देखनेवाली ये दो आँखें हैं। यह तो इन दो आँखों का बड़ा उपकार है ही। यह सारी सजी हुई दुनिया हमारे सामने पेश करती हैं, दुनिया की रौनक दिखाती हैं। सृष्टि का सौन्दर्य हम इन्हीं दो आँखों से ग्रहण करते हैं। लेकिन ये दो आँखें गुनहगार भी हैं। इन दो आँखों से परे एक तीसरी चीज भी है, जो इनकी बदौलत छिप जाती है। इस खूबसूरत दुनिया से एक और भी निहायत खूबसूरत दुनिया है, जिसको ये दो आँखें छिपा रखती हैं। इन आँखों की वहाँ पहुँच नहीं है। इनके कारण मनुष्य इस दुनिया की ओर आकर्षित नहीं होता। लेकिन जब तीसरी आँख

खुल जाती है, तब उस दुनिया का दर्शन होता है। दुनिया के सर्वसाधारण व्यवहारों के पीछे उनके अन्दर और उनकी तह में जो ताकतें काम करती हैं, उनका दर्शन होता है। उसमें से काव्य-स्फूर्ति होती है। साहित्य की स्फूर्ति होती है। इसीलिए मेरी बहुत श्रद्धा साहित्यिकों पर है।

मुझसे पूछा जाता है कि परमेश्वर के अलावा इस दुनिया को बनानेवाला और कौन-कौन है? कोई समझते हैं कि राजनैतिक पुरुषों ने दुनिया बनायी। बडे-बड़े इतिहास लिखे जाते हैं कि बाबर आया और उसने फलाना-फलाना काम किया। क्लाइव आया, उसने यह किया, वह किया। सफहे के सफहे लंबे-चौडे इतिहास लिखे जाते हैं। इतिहास के नाम से ये कहानियाँ चल पडती हैं। स्कूलों में बच्चों से रटायी जाती हैं। लेकिन समाज-जीवन में बाबर का कोई पता नहीं। क्लाइव का कोई हिसाब नहीं।

दुनिया को बनानेवाली तीन ताकतें हैं। विज्ञान, आत्मज्ञान और साहित्य।

वैज्ञानिक दुनिया के जीवन को रूप देता है। आज मेरे सामने यह लाउड-स्पीकर खड़ा है, इसलिए शाति से सब सुन रहे हैं। अगर यह नहीं होता, तो मेरी आवाज उतने लोगों के पास नहीं पहुँचती। मुझे दर्शन और प्रणाम करके निकल जाना पडता या छोटी जमात में बोलना पडता। आज इतनी बडी जमात शाति से सुन रही है। इससे दस गुनी होती, तो भी सुन सकती है, इसकी कल्पना पहले के लोगों को हो ही नहीं सकती थी। दस-बीस मनुष्य साथ बैठकर जो शाति से श्रवण और कीर्तन होता है, उतनी ही शाति से लाखों मनुष्यों का कीर्तन, श्रवण, चिंतन, मनन एक साथ बैठकर हो सकता है। इसका कोई खयाल हमारे पूर्वजों को हो सकता था? पूर्वजों की क्या बात? हमारे ही छुटपन मे वही वक्ता दुनिया में काम देता था, जो स्वयं लाउड-स्पीकर होता था। बहुत बडी आवाज मे बोलनेवाले कौन थे, ऐसा ढूँढना पडता था। फलाना वक्ता दस हजार लोगों को अपनी आवाज सुना सकता है। बस! वह जीत गया! किसीकी आवाज दो हजार तक ही पहुँच सकती है, तो वह हार गया। मेरी आवाज तो जवानी में भी, बहुत जोर करने पर भी डेढ हजार से आगे नहीं पहुँचती थी। उन दिनों अपना गला बहुत ऊँचा चढ़े, यह एक विद्या लोगों को सीखनी पडती थी। लेकिन अब यह लाउड-स्पीकर आ गया। इससे केवल जीवन में स्थूल-परिवर्तन नहीं होता है। मानसिक परिवर्तन

भी होता है। प्रिंटिंग प्रेस (छापाखाने) के कारण विज्ञान का कितनी आसानी से प्रचार हो सकता है, इसका कोई खयाल हमारे पूर्वजो को नहीं रहा होगा। करोड़ों की तादाद मे पुस्तकें निकलती है, खपती हैं, बिकती है और कुछ पड़ी भी रह जाती है। यह ठीक है कि गलत बातों का भी उससे प्रचार हो सकता है, वह बात अलग है। परतु जीवन को बदलनेवाली चीजें विज्ञान से पैदा होती हैं और वैज्ञानिकों ने जीवन को आकार दिया है, इसमे शक नहीं है। अग्नि की खोज के बाद सारे ऋषिगण भक्तिभाव से अग्नि के गीत गाने लगे। ये गीत वेदों मे आते है। अब शायद अणुशक्ति के गीत गानेवाले ऋषिगण पैदा होंगे। आज तो वह सहार करने के लिए आयी है। सहारक के रूप मे हमारे सामने खड़ी है। लेकिन उसका शिव रूप भी है। केवल रुद्र रूप ही नहीं है। जब वह शिव रूप में प्रकट होगी, तब दुनिया के जीवन को बदलेगी।

दूसरी ताकत जो जीवन को आकार देती है, वह है आत्मज्ञान। आत्मज्ञानी दुनिया मे जहाँ जहाँ पैदा हुए, उनकी बदौलत जीवन पूरा-का-पूरा बदल गया। ईसामसीह आये। गौतम बुद्ध आये। लाओत्से आये। मुहम्मद पैगम्बर आये। नामदेव आये। तुलसीदास आये। माणिक्यवाचकर आये। जगह-जगह ऐसे महात्मा आये। ऐसे एक-एक शख्स के आगमन से लोगो के जीवन का स्वरूप बदल गया। लोगों के जीवन का स्वरूप बदलनेवाली यह दूसरी ताकत है।

दुनिया को बनाने में तीसरी ताकत है साहित्य की। वाल्मीकि आये। व्यास आये। दाटे आये। होमर आये। शेक्सपियर आये। रवीन्द्रनाथ आये। ऐसे लोग दुनिया मे आये और दुनिया को ऐसी चीज देकर गये, जो सदा के लिए जीवन को समृद्ध बना दें। दुनिया को उन्होंने ऐसी विचार-शक्ति दी, जिससे दुनिया का जीवन बदला। दुनिया मे जो बड़ी-बड़ी क्रातियाँ हुईं, उनके पीछे ऐसे विचारकों के विचार थे। ऐसे साहित्यिकों का साहित्य था जिन्होंने पथदर्शन किया था। दुनिया को जब शाति की जरूरत हुई, तो शाति का विचार उन्होंने दिया। जब उत्साह की जरूरत हुई, तब उत्साह दिया। जब आशा की जरूरत हुई, तब आशा दी। जिस समय समाज को जिस चीज की जरूरत थी, वह चीज उन्होंने समाज को दी।

इन तीन ताकतों ने आज तक दुनिया बनायी। इसके आगे भी जीवन के

ढाँचे को स्वतंत्र रूप देनेवाली ये ही तीन ताकतें हो सकती हैं—विज्ञान, आत्मज्ञान और वाक्शक्ति जिसे वाणी कहते हैं। विज्ञान से जीवन का स्थूल रूप बदलता है और वह मनुष्य के मन पर असर करनेवाली परिस्थितियाँ पैदा कर देता है। लेकिन वह सीधे मन पर असर नहीं करता। वाणी विज्ञान से आगे जाकर हृदय पर ही सीधा प्रहार करती है। वह हृदय तक पहुँच जाती है। आत्मज्ञान अंदर प्रकाश डालता है। विज्ञान बाहर से प्रकाश डालता है, आत्मज्ञान भीतर से प्रकाश करता है। इन दोनों के बीच वाणी पुल का काम करती है। वह दोनों किनारों का संयोग कराती है और दोनों तरफ रोशनी डालती है।

"राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिर हुँ जो चाहसि उजियार॥"

अगर तू अन्दर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है, प्रकाश चाहता है, तो यह रामनामरूपी मणिदीप जिह्वारूपी देहरी द्वार पर रख ले। इस द्वार पर दिया जलाते ही बाहर और भीतर दोनों तरफ प्रकाश फैल जाता है। इतना उपकार वाणी करती है। यह मनुष्य को अप्रतिम देन मिली है भगवान से। जानवरों को कहाँ मिली है? कम-से-कम हम नहीं जानते। शायद जानवरों की भी भाषा हो। सुनते हैं कि सुलेमान जानवरों की भाषा जानता था। कहते हैं कि वह चींटियों की भी भाषा जानता था। चींटियों की भी भाषा होगी। उनमें भी बुद्धि होगी। लेकिन हम नहीं जानते। जहाँ तक हम जानते हैं, यह वाणी की देन मनुष्य की शक्ति है। वह बड़ी भारी शक्ति है। इस शक्ति का जहाँ दुरुपयोग होता है, वहाँ समाज गिरता है। जहाँ उसका सदुपयोग होता है, वहाँ समाज आगे बढ़ता है। ऋग्वेद में कहा है

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्रधीरा मनसा वाचमक्रत।"

हम अनाज छानते हैं, तो उसमें से ठोस बीज ले लेते हैं और जो ऊपर का छिलका, कचरा होता है, उसे फेंक देते हैं। वैसे जिस समाज में वाणी की छानबीन होती है, वहाँ लक्ष्मी रहती है। 'सक्तुमिव तितउना पवन्त पुनन्त' माने साफ करते हैं, पावन करते हैं। 'सक्तु' याने अनाज। 'तितउना' याने छलनी से छाना जाता है। उसी तरह से 'यत्रधीरा वाचमक्रत' याने ज्ञानी पुरुष मननपूर्वक वाणी की छानबीन करते हैं और उत्तम, पावन, पवित्र, शुद्ध, निर्मल, स्वच्छ, खालिस शब्द ढूँढ निकालते हैं,

उस शब्द का प्रयोग करते हैं। उस समाज में लक्ष्मी रहती है। बहुतों का यह खयाल है कि सरस्वती और लक्ष्मी का विरोध है। बिलकुल इससे उल्टी बात ऋग्वेद ने कही है। यह कहना कितनी अज्ञान की बात है कि लक्ष्मी और सरस्वती का वैर है। वाणी तो संयोजन-शक्ति है। वह तो अदर की दुनिया और बाहर की दुनिया को, आत्मज्ञान और विज्ञान को जोडनेवाली कडी है। दुनिया में जितनी शक्तियाँ मौजूद हैं, उन सब शक्तियों को जोडनेवाली अगर कोई कडी है, तो वह वाणी है। उसका किसीके साथ वैर कैसे हो सकता है? तो लक्ष्मी के साथ सरस्वती का वैर, श्री के साथ वाणी का वैर बतलाना छोटे दिमाग की बात है। उसमें सूक्ष्म दृष्टि नहीं है। वेद ने जो कहा है, उसमें सूक्ष्म दृष्टि है। 'तत्र लक्ष्मी निहिता।' वहाँ लक्ष्मी छिपी हुई रहती है। निहित रहती है। वाणी सूक्ष्म शक्ति है। इसलिए उसके भीतर दूसरी शक्तियाँ छिपी हुई रहती हैं। मेरा बहुत ही भरोसा है वाणी पर। निरतर बोलता ही रहता हूँ। सुनता भी जाता हूँ। जितना बोलता हूँ, उससे बहुत ज्यादा सुनता हूँ। इसीमें वाणी की महिमा है। जो मैं बोलता हूँ, उसीमें वाणी की महिमा है और जो दूसरों की बात सुनता हूँ, तो उसमें क्या वाणी की महिमा नहीं है? उसमें भी वाणी की महिमा है। श्रवण और कीर्तन दोनों मिलकर वाणी बनता है। जितना बोले, उससे कम-से-कम दुगुना तो सुनना ही चाहिए। क्योंकि ईश्वर ने हमें एक जीभ दी और दो कान दिये। अभी यह सीधी गणित की बात है। एक साधारण गणिती भी कहेगा कि कितना बोलना चाहिए और कितना सुनना चाहिए। खैर, यह तो स्थूल गणित हुआ। जरा और गहराई से सोचिये। दो कान तो दिये, लेकिन उनका काम एक ही दिया और जिह्वा एक दी, लेकिन उसको काम दो दिये। रसना, रसग्रहण करने का काम भी दिया है और वाणी, बोलने का काम भी दिया है। तो अब गणित लगाओ, दो कानों को मिलकर एक ही काम और अकेली जिह्वा के दो काम! इस तरह जिह्वा में काम बढ़ गया। इसलिए चौगुना सुनना चाहिए। सुनने में भी महिमा तो वाणी की ही है। जो बोलने में महिमा है, वही सुनने में भी। तो मैं सुनता बहुत हूँ और बोलता भी बहुत हूँ। लोग पूछते हैं कि फिर बोलते क्यों हो? बचपन से अब तक बोलते ही चले आये हो। कोई मनुष्य मिले, उसके साथ बोलता हूँ और कोई न मिले, तो भी वाणी चलती ही रहती है। पहले खूब कठ खोलकर गाता रहता था।

रोज गाता था। आजकल तो मेरा गाना कम हो गया है। आजकल वोलता हूँ। लेकिन एक जमाना था, जब सुननेवाले बहुत मिलते थे। मेरे अपने ही दो कान सुनते थे। मेरा गला वडे शौक से उन्हे सुनाता था। परिणाम यह हुआ कि संतो से असंख्य भजन कठस्थ हो गये हैं। कितना उनका अनुग्रह हुआ है, मैं कह नहीं सकता।

इसलिए जब लोग पूछते हैं कि इतना बोलते क्यों हो, तो मैं कहता हूँ, जप के लिए बोलता हूँ, उपदेश के लिए नहीं। उपदेश के लिए आज्ञा की तौर पर श्रुति बोलती है। वह ईश्वर की वाणी है। अधिकार से आज्ञा देने का उसका अधिकार है। लेकिन मै जप के लिए बोलता हूँ, केवल प्रचार के लिए नहीं बोल्ता। जनता के सामने बार-बार उसी विचार का उच्चारण करता हूँ। उसमें से आप कितना लेते हैं, आप जाने। आप ले या न ले, बार-बार जप करने से मेरा विचार दृढ होता है, मेरी भक्ति की दृढ़ता बढ़ती है। मनु महाराज ने एक बडा ही सुदर वाक्य लिख रखा है :

"जपेनैव तु संसिद्ध्येत् ब्राह्मणो नाऽत्र संशय।
कुर्यात् अन्यत् न वा कुर्यात्।'

ब्रह्मण याने क्या? ब्रह्मण है मत्र। इसीलिए ब्राह्मण और कुछ करे या न करे, सिर्फ जप ही करे, तो उसे जप से ही सिद्धि मिलेगी। सब प्रकार की सिद्धियाँ उसे जप से ही प्राप्त होंगी। यह मनु महाराज का आशय है। यह जो मुझे भूदान-ग्रामदान मिले हैं, ये तो आप लोगों ने हासिल किये हैं। आप जगह-जगह गये, लोगों को समझाया और ग्रामदान ले आये। उसका श्रेय आपको है। लेकिन मुझे श्रेय क्यों मिल रहा है? इसलिए कि मैने उसका जप किया है। जब यज्ञ, दान और तप की चर्चा चली कि कहा गया—जो अपने श्रम से देगा, पेट काटकर देगा, वह यज्ञ होगा। जो आपको अपनी बची हुई चीज में से देगा, उसका दान होगा। भूदान-यज्ञ में यज्ञ और दान तो हैं, लेकिन तप कहाँ है? यह पूछा गया, तो मै कहता हूँ, यह जो हजारों कार्यकर्ता सारे देश मे घूमते हैं, यही तप है। कभी-कभी उनके खाने-पीने का भी इंतजाम नहीं होता। जब निधि-मुक्ति हो गयी, तो मैं अपने कार्यकर्ताओं को तेलुगू का भजन सुनाता रहा

'निधि सुखमा? राम सन्निधि सुखमा?'
(निधि मे सुख है? या राम की सन्निधि मे सुख है?)

त्यागराज का भजन है। कार्यकर्ताओं से पूछा क्या भाई निधि चाहते हो या

राममणिथि चाहते हो ? इस तरह हमने ऐसी सारी युक्तियाँ ढूंढ निकालीं, जिनसे हमारा तप बढ़े और कार्यकर्ताओं को आज से कल ज्यादा तकलीफ हो, कल से परसों ज्यादा तकलीफ हो। इस तरह यह तप हो रहा है। लेकिन मैं सोचता हूं कि मैं क्या कर रहा हूं! मेरा न यज्ञ है, न दान है, न तप है। मेरा तो जप ही है। मैं देखता हूं कि जप में बहुत शक्ति भरी है। इसका दर्शन मुझे हुआ है।

लेकिन, हमारे कार्य में इस पहलू की तरफ योग्य ध्यान नहीं दिया गया है, इसलिए मैं बहुत असंतुष्ट हूं। हमने अपने कार्य में जान-बूझकर नहीं, लेकिन अनजान में वाणी की उपेक्षा की है, सरस्वती की उपेक्षा की है। मैं सरस्वती की उपेक्षा विचारपूर्वक कह रहा हूं। हिन्दी में जिसे प्रचार कह रहे हैं, वह मैं नहीं चाहता। मैं प्रकाश चाहता हूं। यह बिल्कुल ही स्वतंत्र शब्द है। अपने हिन्दुस्तान का खास शब्द है। अंग्रेजी में एक शब्द है 'प्रोपेगाडा'। यह बिल्कुल ऊपर-ऊपर की चीज है। दूसरा शब्द है, 'पब्लिसिटी'। 'पब्लिसिटी' भी मैं नहीं चाहता। मैं प्रकाश कहता हूं। सिख जानते हैं प्रकाश का अर्थ। उनके यहां वह एक विशेष विधि है। सुबह उठते हैं। अपनी सारी प्रातर्विधियां समाप्त करने के बाद स्नान करते हैं। फिर घर में पूजा के लिए जो एक स्थान होता है, वहां जाते हैं। वहां 'ग्रंथ-साहब' याने गुरु-ग्रंथ रखा होता है। उसको सहज खोलते हैं। जो पन्ना सहज खुल जाता है, उसे पढ़कर देखते हैं कि आज मुझे क्या प्रकाश मिला। इस विधि को वे प्रकाश कहते हैं।

तो मैं प्रकाश चाहता हूं। मैं यह नहीं चाहता कि हमारे काम की तारीफ बढ़ा-चढ़ाकर लोगों के सामने की जाय। मैं यह भी नहीं चाहता कि हमारे काम की हर छोटी-बड़ी चीज बार-बार सब तरफ बतलायी जाय। लेकिन इस कार्य के पीछे जो विचार हैं, वे बहुत ही मजबूत, गहरे और व्यापक हैं। उन विचारों का प्रकाश हम अपने व्यवहार और प्रयोगों से बढ़ायें। शुद्ध विचार लोगों को समझायें। तीन विशेषण मैंने लगाये। मजबूत, गहरे और व्यापक। मैं समझता हूं कि अधिक-से-अधिक गहरे, व्यापक और मजबूत विचार इस वक्त हमको उपलब्ध हुए हैं। हमारे आगे जो लोग आयेंगे उनको इससे भी अधिक मजबूत, गहरे और व्यापक विचार उपलब्ध हो सकेंगे। हमको जो विचार उपलब्ध हुए हैं, वे भी विश्व-व्यापक विचार हैं। आत्मा की गहराई तक जानेवाले विचार हैं। आज तक के तत्त्वज्ञानी और

सन्त जितनी गहराई तक गये, उससे अधिक गहराई में हमको जाना होगा। तभी सर्वोदय-विचार का यथार्थ दर्शन होगा। मजबूत विचार वह है, जो कि विज्ञान, युक्ति और व्यवहार की कसौटी पर खरे ही उतरेंगे। पुराने जमाने में धर्म के नाम पर ऐसी कई बातें की गयीं, जो विज्ञान के सामने टिकती ही नहीं हैं। टूट जाती हैं। लेकिन युक्ति चाहे जितनी कैंची चलाये, विज्ञान चाहे जितनी कसौटी लगाये, तो भी कभी न टूटे न फटे ऐसी मजबूत चीज इस विचार में पडी है।

यह जो मजबूत, गहरा और व्यापक विचार है, उसका अध्ययन, मनन और प्रकाशन होना चाहिए। इसके लिए जरा नम्र होकर हमें साहित्यिकों के पास पहुँचना चाहिए। जो सच्चे साहित्यिक होते है, वे किसीके हुक्म के कायल नहीं होते। किसीका आदेश नहीं उठाते। परन्तु किसी सद्‌विचार की उपेक्षा भी नहीं कर सकते। जो विचार उनकी बुद्धि या हृदय स्वीकार न करे, उसे वे किसीको आज्ञा से शिरोधार्य नहीं मानेंगे। यह दुर्भाग्य की बात है—इन दिनो साहित्यिक और वैज्ञानिक कहलानेवाले ऐसे कई व्यक्ति समाज में हैं, जो कि 'टु आर्डर' काम करते हैं। हुक्म बजा लाते है। कई अखबार ऐसे हैं, जिनके मालिक दूसरे होते हैं और सपादक दूसरे होते हैं। सपादकों को मालिको के इशारे पर चलना पडता है। फिर भी उनमे इतनी सत्यनिष्ठा होती है कि वे बेचारे कहते हैं कि क्या करें? इस लेख मे जो विचार है, वह हमारा नहीं है। फिर भी हमें उसे बडी सजधज के साथ लोगों के सामने रखना पडा था। हमारे अखबार की जो कपनी है, उसके लिए लिखना पडा। वैज्ञानिक कहते हैं—यह जो खोजें हो रही हैं, वे दुनिया की भलाई के लिए नही हैं। लेकिन, फिर भी हम ये खोजें कर रहे हैं, हम बँधे हुए हैं। हमें जैसी आज्ञा होती है, वैसा करना होता है। वैज्ञानिक अगर अपनी बुद्धि को बेचना बद कर देंगे, साहित्यिकों के नाम से जो लोग आज दुनिया के सामने आये हैं, वे अपनी वाणी को बेचना बद कर देंगे, तो दुनिया का रूप बदल जायगा। स्वार्थी वैज्ञानिकों ने अपनी बुद्धि बेचकर और नकली साहित्यिकों ने अपनी वाणी बेचकर सारी दुनिया को खतरे में डाल रखा है। जो प्रामाणिक वैज्ञानिक है और स्वतत्र साहित्यिक है, वह आत्मज्ञानी की तरह अत्यत स्वाधीन होता है। वह कभी अपने को बेच नही सकता। दुनिया चाहे उसकी माने या न माने, इसकी वह परवाह

नहीं करता। वह इस विषय में अत्यंत सुरक्षित मनुष्य है। इसीलिए तुलसीदासजी ने कहा है

'स वाग्विसर्गो जनताअघ विप्लवो'

जो वाग्विसर्ग—यह भागवत् की भाषा है, जनता अघविप्लव होगा, याने जो वाक्समूह जनता के पापों को धोनेवाला होगा, वही साहित्य कहलानेवाला होगा। भागवत् ने साहित्य की ऐसी व्याख्या की। कितना ऊँचा आदर्श इन्होंने हमारे सामने रखा। जनता के पापों को जो शब्द धोयेगा, वही सारस्वत होगा। वाणी का सार वाङ्मय है। उसमें सब आयेगा। वाणीमात्र वाङ्मय है। कुत्ता भौंकता है, वह भी वाङ्मय ही है। लेकिन उसका अर्थ निकालनेवाला उपनिषद् का मंत्रद्रष्टा ऋषि होता है, तो कुत्ते के भौंकने में से भी वह साहित्य निकालता है, सारस्वत निकालता है। साहित्य याने जीवन के सहित सतत ठहरनेवाली वस्तु। जिन्दगी का जो सबल है, वही साहित्य है। वह आपको निरन्तर अपने साथ रखने योग्य मालूम होगा। सदा के लिए आपको मिलता ही रहेगा। वही साहित्य है। जनता के पापों को धोनेवाला सरस्वती की कृपा से जो शब्द निकलेगा, वह वाग्विसर्ग सारस्वत है।

वाङ्मय में सारी वाणी आयेगी। वाणी जिसका उच्चारण करती है, वह वाङ्मय है। जैसा कि मैंने कहा, उसमें कुत्ते का भौंकना भी आयेगा। एक दफा एक कुत्ता भोंक रहा था या दस कुत्ते भौंक रहे थे। वह आवाज एक ऋषि ने सुनी। ऋषि था ध्यानी। वह बोला—सिर्फ मैं ही ॐकार का जप नहीं कर रहा हूँ। ये कुत्ते भी ओंकार का जप कर रहे हैं—ॐ ॐ ॐ। ॐ अदाम 'ॐ पिबाम ॐ हमको खाना चाहिए 'ॐ हमको पीना चाहिए। ऐसा ऋषि ने उसमें से सारस्वत निकाला। यह ऋषि की खूबी है। ऐसे ऋषि को द्रष्टा कहते हैं। इसीका नाम दर्शन है। मेरे प्यारे भाइयो! हमारा यह समाज जिन विचारों पर खड़ा है, वे विचार अत्यन्त मजबूत हैं, अत्यन्त गहरे हैं और अत्यन्त व्यापक हैं। लेकिन उन विचारों का हमारा दर्शन गहरा नहीं है, व्यापक नहीं है और मजबूत नहीं है। इसीलिए सात साल के बाद भी हम रास्ता टटोल रहे हैं, ढूँढ रहे हैं।

हमको नम्रता के साथ साहित्यिकों के पास पहुँचना चाहिए। अपनी चीज उनके सामने खोलकर रखनी चाहिए और कहना चाहिए कि आप तटस्थ पुरुष हैं।

हमारी गलती कहाँ है, आप साफ बताइये। कहाँ हम ठीक रास्ते पर हैं, सो भी बताइये। हमें मार्ग-दर्शन दीजिये। मुझे यह कहने में खुशी होती है कि जहाँ-जहाँ मैं साहित्यिकों के पास पहुँचा हूँ, वहाँ उन सारे साहित्यिकों ने सर्वोदय का गौरव ही किया है। यही विचार दुनिया को बचानेवाला है। इसमें अमृततत्त्व है, यह कहकर उन्होंने इस विचार का स्वागत किया है। मैसूर के पुट्टप्पा ने सर्वोदय, सर्वोदय का गीत लिखा है। वे मैसूर के बडे कवि हैं, जो रामायण में भी सर्वोदय-विचार की झाँकी दिखाते है। अभी मैं कर्नाटक से आया हूँ। इसलिए वहाँ की बातें कर रहा हूँ। लेकिन मैं बगाल, तमिलनाड, केरल, उत्कल सभी जगह के साहित्यिकों से मिला हूँ। अभी एक जगह महाराष्ट्र के भी कुछ साहित्यिकों से मिला हूँ। मैंने देखा कि सारे के-सारे साहित्यकारों ने कहा कि आज दुनिया को वैफल्य से बचाने-वाली अगर कोई चीज है, तो वह यही सर्वोदय-विचार है। आज कितना विशाल वैफल्य छाया हुआ है? उससे बचानेवाली यही छोटी-सी चिनगारी है। छोटी-सी ही है, लेकिन यही दुनिया को बचायेगी ऐसा वे कहते हैं। हमारे पीछे बहुत बल है। मैं चाहूँगा कि हमारे सारे कार्यकर्ता अध्ययन की उपेक्षा न करें। इस विचार की पुस्तके स्वय बार-बार पढ़ें। लोगों के सामने यह चीज रखें और सरस्वती की उपासना करे।

सर्व-सेवा-संघ के प्रकाशनों में एक चीज और है, जिसकी तरफ मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। आज देश के लिए यह बहुत बडी आवश्यकता है कि सारे हिन्दुस्तान को एकत्र करनेवाली जितनी ताक्तें हो सकती हैं, उनको हम ढूँढे और देश को एक बनायें। इसकी इतनी आवश्यकता पहले कभी मालूम नहीं होती थी, जितनी कि आज मालूम हो रही है। हिन्दुस्तान को छिन्न-विच्छिन्न करनेवाली ताक्तें जोर पकड़ रही हैं। वे अनेक नामो से प्रकट होती हैं। धर्म के नाम से प्रकट होती हैं। भाषा के नाम से प्रकट होती हैं। प्रान्त के नाम से प्रकट होती हैं। पंथ के नाम से प्रकट होती हैं। पक्ष के नाम से प्रकट होती हैं। विचार सम्प्रदाय के नाम से प्रकट होती हैं। ऐसे अनेकविध नाम लेकर देश को छिन्न-भिन्न करनेवाली ये ताकतें प्रकट हो रही हैं। इसलिए इस वक्त सबको जोडनेवाली जितनी ताकतें खड़ी हो सकती हैं, उतनी जुटानी चाहिए।

सारे देश को एक करनेवाली एक ताकत यह है कि सारे प्रान्तों के लिए सबकी

बोली की तौर पर एक जबान हो और सबकी लिपि की तौर पर एक लिपि हो। इसमें दूसरी जबानों का, दूसरी लिपियों का निषेध नहीं है। वे भी चलेंगी। लेकिन एक जबान ऐसी हो, जिसे सब जानते हैं और एक लिपि ऐसी हो, जिसे सब पढ़ सकते हैं, तो सारे देश को एकत्र रखनेवाली वह बहुत बड़ी चीज होगी। विविध भावनाओं को और भाषाओं को खिलने का पूरा-पूरा अवसर मिलेगा।

फिर भी मैं यहाँ सारे देश के लिए एक जबान के बारे में ज्यादा कुछ नहीं कह रहा हूँ। क्योंकि मैं उसी जबान में बोल रहा हूँ। इसलिए अब उसके बाबत कुछ कहने की जरूरत नहीं। लेकिन सारी भाषाओं के लिए एक लिपि चलाने की बहुत आवश्यकता है। वह नागरी लिपि हो। ऐसा होगा, तो देश के लोग एक-दूसरे की भाषाएँ आसानी से सीख सकेंगे। इससे भाषाओं का सम्पर्क बढ़ेगा। यह चीज प्रेम से ही चलानी है, प्रेम के लिए ही चलानी है। सर्वोदय में तो प्रेम के सिवा दूसरा रास्ता है नहीं। मेरा तो यह मानना है कि सारे देश में अगर एक नागरी-लिपि चल पड़ी, तो वह लिपि सारे एशिया में चल सकती है। यह एक बहुत बड़ी आशा मुझे है। किसी पर कोई चीज लादने की कोई बात ही नहीं है। न इस देश के प्रान्तों पर, न एशिया पर और न दुनिया में दूसरी किसी जगह पर। लादने का तो नाम ही नहीं। परन्तु आशा इसलिए हुई कि मैंने जापानी भाषा का दो-तीन महीने तक कुछ अध्ययन किया। उससे जापानी भाषा की रचना का कुछ खयाल मुझे हुआ। चीनी भाषा का तो और भी कम परिचय है। लेकिन उसकी वाक्य-रचना का कुछ खयाल मुझे आ गया है। इन दोनों भाषाओं की रचना हिन्दुस्तान की भाषाओं की रचना के समान है। खास करके दक्षिण की भाषाओं के समान है। वहाँ 'प्रिपोजिशन' की जगह 'पोस्ट पोजिशन' होता है। शब्दयोगी प्रत्यय पहले लगने के बदले बाद में लगते हैं। अंकगणित के अंक भी हमारे समान ही हैं। ८, ९, १० के बाद दस-एक, बीस-एक, तीस-एक ऐसे अंक आते हैं। कर्ता, कर्म, क्रियापद की जो रचना हमारे यहाँ चलती है, वैसी ही वहाँ पर है। शब्दों के उच्चारण में जैसा कि फर्क यहाँ की भाषाओं में होता है, उसी तरह वहाँ की भाषाओं में होता है। 'निहो' की जगह 'निप्पो' कहा जा सकता है। कन्नड़ में ऐसा होता है। 'ह' की जगह 'प' हो जाता है और 'प' का 'ह' हो जाता है। 'हालु', 'पालु'। अंग्रेजी में लिखने की लिपि में जो 'पी' लिखी जाती है, उसका नीचे

का हिस्सा काट दें, तो आसानी से 'हिच' बन जाता है। उस लिपि में प और ह में जो साम्य है, वह जापानी भाषा मे मिलता है। मैं यहाँ उसका विस्तार करना नहीं चाहता। भाषा-शास्त्र पर मुझे व्याख्यान नहीं देना है। मैं कहना यह चाहता था कि कुछ भाषाओं के लिए लिपियाँ ही नहीं हैं और जापानी तथा चीनी भाषाओं की लिपियाँ बहुत कठिन हैं। उनकी लिपियाँ चित्र-लिपियाँ हैं। वे एक वैज्ञानिक लिपि की तालाश मे हैं। उन्होंने कुछ खोज की है, लेकिन वह समाधानकारक नहीं है। शायद रोमन-लिपि भी सोची जा सकती है और सोची गयी है। मैं भी मानता हूँ कि रोमन-लिपि मे कई गुण हैं। परन्तु हिन्दुस्तान के साथ चीन और जापान का सम्बन्ध बढ़नेवाला है। उन भाषाओं की रचना के साथ हमारी भाषाओं की रचना का साम्य मैं देख रहा हूँ। इसलिए हम सारे भारत के लोग यदि प्रेम-पूर्वक और विवेक-पूर्वक नागरी-लिपि का स्वीकार करें, तो मुझे उम्मीद है कि नागरी-लिपि के जरिये चीनी और जापानी भाषाओं के साहित्य भी अपनी भाषाओं मे ला सकेंगे। वह लिपि पूर्व एशिया को एक सूत्र मे बाँधने का काम देगी। लेकिन यह सब आगे की बातें हैं। वे भविष्य के हाथ में हैं। परन्तु हमको इस दिशा में कोशिश करनी चाहिए। ऐसे प्रयत्न का आरंभ सर्व-सेवा-सघ ने किया। उसकी तरफ मैं आपका ध्यान दिला रहा हूँ।

मेरा सुझाव था कि 'गीता-प्रवचन' के जो अनुवाद भिन्न-भिन्न भाषाओं में हुए, उनका एक संस्करण नागरी-लिपि में भी हो। सर्व-सेवा-संघ ने मेरा सुझाव पसद किया। तदनुसार तेलुगू, पंजाबी, उडिया और गुजराती—इन चार भाषाओं के 'गीता-प्रवचन' नागरी-लिपि में प्रकाशित हुए हैं। मराठी और हिन्दी तो नागरी मे ही लिखी जाती हैं, उनका सवाल नहीं। जो भाषाएँ नागरी से भिन्न लिपि में लिखी जाती हैं, उनकी अपनी लिपियों मे तो 'गीता-प्रवचन' छपे ही हैं। वे हजारों की तादाद से छपे हैं। नागरी-लिपि मे उतनी तादाद में नहीं छपेंगे। लेकिन कुछ थोड़े से ही नागरी-लिपि मे छपे, तो घर बैठे हम एक-दूसरे की भाषाओं का अध्ययन कर सकते हैं। मेरी सिफारिश है कि जो गैर पंजाबी और गैर तेलुगू लोग हैं, वे नागरी-लिपि मे छपे हुए तेलुगू और पंजाबी 'गीता-प्रवचन' जरूर खरीदें। समझ न सकें, तो भी पढ़ें। दो-चार-दस मिनट अपनी आँख उन अक्षरों पर से घुमाये। इससे मालूम होगा कि हमारी भाषाओं मे कितना साम्य है। इससे परस्पर प्रेम पैदा

होगा। जरा-सी मेहनत करेंगे, तो आप देखेंगे कि कम-से-कम उत्तर हिन्दुस्तान की भाषाएँ तो दो-चार-पाँच दिन में ही सीख सकते हैं। नागरी-लिपि का यह उपकार होगा। तेलुगू का 'गीता-प्रवचन' आप देखने लगेंगे, तो आपको आश्चर्य होगा कि मराठी की अपेक्षा अधिक संस्कृत शब्द उसमें है। मराठी तो संस्कृत से ही पैदा हुई मानी जाती है। तेलुगू संस्कृत से पैदा हुई नहीं मानी जाती है। लेकिन मराठी की अपेक्षा तेलुगू में संस्कृत शब्द अधिक हैं। इस तरह नागरी-लिपि के आधार से दूसरी भाषाएँ सीखने में आपको आसानी होगी। मैं सिफारिश करता हूँ कि कुछ किताबें अनेक भाषाओं में, परंतु नागरी लिपि में ही निकालें। इस प्रकार का उपक्रम सर्व-सेवा-संघ ने किया।

पंढरपुर,
३०-५-'५८

परिशिष्ट : ८

: अ :

बिहार ग्राम-स्वराज्य का नमूना पेश करे*

[विनोबा]

बहुत खुशी होती है कि हमें बिहारवालों का फिर से दर्शन हो रहा है। वहाँ हम दो साल रहे, लेकिन उसका स्मरण हम जिन्दगी भर नहीं भूलेंगे। बिहार की कीमत वहाँ हम जब थे, तब जितनी महसूस करते थे, उससे बहुत ज्यादा अब महसूस करते हैं। बिहार की जो शक्ति है, वह अपनी ही शक्ति है। उसके कारणों पर मैंने बहुत सोचा, तो सिवा इसके कोई कारण नहीं मिला कि बुद्ध और महावीर वहाँ हुए। इसी कारण उस प्रान्त में सामुदायिक परिवार बने हुए हैं और इसीसे कुछ ताकत और कार्यकर्ता मिलते हैं।

बिहार की अध्यात्म-शक्ति

बिहार में जो काम हुआ, उसका ठीक मूल्यमापन नहीं हुआ है। हिन्दुस्तान के दूसरे प्रान्तों को यह मालूम भी नहीं हुआ कि बिहार में क्या काम हुआ है

---

* बिहार के कार्यकर्ताओं के बीच।

और जो कुछ भी हुआ है, उसका स्थायी मूल्य क्या है। हम जानते हैं कि वहाँ जो भी काम हुआ है, उसका बहुत स्थायी मूल्य है। अहिंसा में मूल्य ऊपर से दीख नहीं पड़ते हैं। वे गहरे जाते हैं। वहाँ के कार्य का मूल्य गहरा गया है, इसका एक नमूना हमारे सामने लक्ष्मीबाबू ने पेश किया। उनके जाने के बाद उनकी महत्ता का खयाल सबको, बिहारवालों को और दूसरे प्रान्तवालों को भी आ रहा है। वे सतत घूमते रहे। अपनी कृति का परिणाम क्या आता है, इसकी पर्वाह उन्होंने नहीं की। हरएक के साथ प्रेम-सम्बन्ध रखकर आखिर तक काम करते-करते चन्द घंटों मे वे चले गये। हमारे सामने एक मिसाल आयी, लेकिन ईश्वर-कृपा से बिहार में यह एक ही मिसाल नहीं है। ऐसी अनेक मिसालें हैं और अनेक होनेवाली हैं। इसीलिए मुझे बिहार की अध्यात्म-शक्ति मे बहुत बडी श्रद्धा है। गाधीजी को भी वैसा ही अनुभव आया और हमें भी वही अनुभव आया, जिसने पुराने अनुभव को पक्का बनाया।

हम अगले साल गर्मी के दिनों तक कश्मीर पहुँच जाना चाहते हैं। बीच में महाराष्ट्र का कुछ हिस्सा, गुजरात, राजस्थान और पजाब होकर हम कश्मीर पहुँचेगे और अगले मई तक हम फिर से पजाब में आ जायेंगे। करीब एक साल के बाद हमारे और बिहार के बीच में एक छोटा-सा उत्तर प्रदेश रह जाता है। वह कभी भी पार कर सकते हैं। पैदल चलनेवालों को समय की पाबदियाँ नहीं हैं। चल दें, तो कहीं भी पहुँच सकते हैं। फिर उत्तर प्रदेश की गगा आपके बीच बहेगी और हमारा हृदय भी आपके साथ बहेगा। लक्ष्मीबाबू किस भावना में गये, उसका भान आपको और मुझे बहुत अच्छी तरह होना चाहिए।

ग्राम-स्वराज्य की माँग

बिहार के कुछ कार्यकर्ता हमारे पास आये थे, तब हमने कहा था कि अगर हिन्दुस्तान में कोई एक जिला हमें आमत्रण देता है कि वहाँ ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करनी है, तो हम उस आमत्रण को स्वीकार करेंगे। ग्रामदान के बाद ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए अपनी अक्ल हम वहाँ लगायेंगे और जनशक्ति के आधार पर उसे परिपूर्ण करने की कोशिश करेंगे। इस काम मे थोडी सरकारी मदद मिलेगी, तो उससे परहेज नहीं करेंगे। नयी तालीम, आयात-निर्यात का नियंत्रण, खादी, ग्राम-दूकान, गाँव का रक्षण, शिक्षण, पालन-पोषण आदि सब का-

सब अहिंसा और जनशक्ति के आधार पर करेंगे। हो सके तो जिला ही सही, न हो सके तो सब डिवीजन भी लिया जा सकता है। इस तरह कोई प्रान्त मुझे निमंत्रण देता है, तो सब कार्यक्रम छोड़कर मैं वहाँ सीधा पहुँचने के लिए तैयार हूं। अभी मैं इसकी तलाश में हूं। यह काम आसान नहीं है, लेकिन अशक्य भी नहीं है। सात साल के बाद जो श्रद्धा सब स्तरों में—सरकारी स्तर और आम जनता मे पैदा हुई है, यह देखकर यह असंभव नही लगता। कठिन जरूर है, परन्तु कठिन कार्य ही पुरुषार्थ के लिए प्रेरित करता है। आसान काम ही करना है, तो दुनिया में खाना-पीना और मरना तो है ही।

क्षेत्र का चुनाव

मैंने उन बिहारी भाइयों से जब यह कहा, तब उन्होंने कहा कि शायद हमारा दरभंगा जिला तैयार हो सके। हमने दरभंगा जिला नक्शे में बहुत दफा देखा है। उस जिले में खादी और ग्रामोद्योगों का काम चलता है, जिस पर लोगों की श्रद्धा है। उस समय उन बिहारी भाइयों ने वहाँ जाकर वहाँ के लोगों के सामने बात रखी। उसमें लक्ष्मीबाबू भी थे। उनके मन में आया कि ताकत लगायी जाय और दरभंगा जिले मे प्रयत्न किया जाय। वे इधर उधर घूमते थे और सबके आधार थे। आखिर दरभंगे मे घूमते-घूमते इसी वासना को पूरी करने के खयाल से वे भगवान् के दरबार में गये, ऐसा असर मेरे चित्त पर है। वैसे तो बिहार में मुँगेर, गया आदि दूसरे भी जिले हैं, जहाँ शक्यता है। यह कोई मेरी काल्पनिक आशा नहीं है। उन जिलों मे कुछ काम हुआ है। अपनी शक्ति और परिस्थिति देखकर क्षेत्र चुना जा सकता है और वहाँ ग्राम-स्वराज्य का नमूना पेश किया जा सकता है। जो जवान हैं, उनको अब परमेश्वर आगे ले जानेवाला है। जिन्होंने गांधीजी को देखा, गांधीजी के साथ काम किया, जो गांधीजी के साथी कहलाये, उनकी आयु कट रही है। इस हालत में जो हम बचे हैं, वे अगर पुरानी पद्धति मे जिन्दगी भर फँसे रहते हैं, तो काम नहीं बनेगा। इसलिए उन जवानों को आगे आना चाहिए, जिन्होंने गांधीजी को देखा नहीं है, परंतु उनकी बातें सुनीं और उनकी बातों के लिए जिनके मन मे श्रद्धा है। इसीलिए हिन्दू-धर्म में संन्यास और वानप्रस्थाश्रम की सभ्यता चली। हिन्दू-धर्म में किसी चीज की कमी नहीं रह गयी है।

एक जिले में ग्राम-स्वराज्य का नमूना पेश करते-करते एकाध शहर का भी नमूना पेश करना चाहिए, जिसमे शान्ति-सेना वनी हो और उसमे शहरवालों का भरपूर सहयोग गाँववालों को हासिल हो।

घर-घर साहित्य पहुँचे

प्रान्त भर मे साहित्य-प्रचार के जरिये घर-घर साहित्य पहुँचाना चाहिए। जैसे गगा का प्रवाह सतत बहता ही रहता है, वैसे ही साहित्य का प्रवाह भी वहते रहना चाहिए। वावा वहाँ आयेगा, तव काम बनेगा, यह बिलकुल ही गलत है। किसी एक व्यक्ति पर भरोसा रखना पहली गलती है और अपने पर अविश्वास रखना दूसरी गलती है। इसलिए आपको निश्चय करना चाहिए कि कोई भी एक क्षेत्र पसन्द करके जितनी ताकत है, उतनी वहाँ लगाकर उसे पूरा करेंगे। क्षेत्र चुनने मे मत-भेद नहीं होना चाहिए। किसीकी किसीके साथ बनती नहीं, यह तो बिलकुल ही नही होना चाहिए। हम गाँववालों को एक हो जाने की बात कहते हैं, पर हमी एक-दूसरे के साथ झगडते रहेंगे, तो कैसे चलेगा? जो कार्यकर्ता निरंतर घूमते रहते हैं और जो कार्यकर्ता निर्माण करते हैं, उन दोनों में सामजस्य होना चाहिए। वे दोनों कोई पक्ष नही हैं। वे एक-दूसरे की पूर्ति करनेवाले सावित होने चाहिए। सर्वोदय-पात्र की योजना विहार मे बहुत सफल हो सकती है, इसमें कोई शक नहीं है। वहाँ यह आसान है, क्योंकि वहाँ सामुदायिक परिवार बने हुए ही हैं। इसीको हमे चालना देनी है, इतना ही है।

मानस-शास्त्रीय आन्दोलन

आपको रिपोर्ट बिल्कुल रूखी-सूखी है। इसमें न कोई चार्ट है, न चित्र है, न नक्शा है। जहाँ जमीन बाँटी गयी, वहाँ अच्छी फसल हुई, इसका भी उसमे कोई जिक्र नहीं है। यह आन्दोलन एक मानस-शास्त्रीय आन्दोलन है। इसलिए मानसिक परिवर्तन जितना होता है, वह भी सामने लाना चाहिए। अभी राजभोज हमसे मिलने के लिए आये थे। उनको यह पता ही नही था कि भूदान में हरिजनों को जमीन दी जाती है। कुल जमीन कोई १ लाख २७ हजार परिवारो मे बँटी है और उनमे से करीव ४७ हजार परिवार हरिजनों के ही हैं। १४ हजार के करीव आदिवासियों के हैं। दोनों मिलकर ५० हजार से ज्यादा हो गये। याने जितनी

जमीन मिली है, उसका एक-तिहाई से भी ज्यादा हिस्सा उन्हे मिला है। फिर भी दुनिया को पता नहीं है।

नगर-दान की कल्पना

प्रश्न नगर-दान और फेक्टरी-दान की दिशा मे किस तरह आगे बढ़ना चाहिए?

विनोबाजी इसमे इस वक्त कोई सार नहीं, ऐसा समझ लीजिये। जब तक हम ग्रामदान और ग्राम-स्वराज्य का काम नहीं करते हैं, तब तक नगर-दान की बात दिल बहलाने की बात है। फेक्टरी की कोई कीमत ही नहीं है। जहाँ जमीन पर से मालकियत हट जायगी, वहाँ वह विचार फैक्टरी पर लागू होने में कोई देर लगनेवाली नहीं है। परन्तु जब तक जमीन पर की मालकियत नहीं मिटेगी, तब तक सभव है कि एकाध फैक्टरी मिल भी जाय। परन्तु अपने कार्यक्रम मे १०-१० शाखाएँ बनाकर हम क्षीण-शक्ति बनना नहीं चाहते है।

पढरपुर,
२९-५-'५८

: आ :

नौजवान आगे आकर काम सँभालें*

[विनोबा]

कल कपिलभाई कार्यक्रम के बारे मे पूछ रहे थे। हमने कहा ६ करोड़ लोक-सख्या उत्तर प्रदेश में है और हम भारत मे ७५ हजार की शाति-सेना खड़ी करना चाहते ह। उस हिसाब से बारह-साढ़े बारह हजार की सेना उत्तर प्रदेश से चाहते हैं। वहाँ खादी के काम मे साढ़े चार हजार कार्यकर्ता लगे है। उससे तिगुनी सख्या शाति-सेना के लिए चाहिए। ये कार्यकर्ता भी एक प्रकार से शाति-सैनिक ही है। उनसे यही अपेक्षा है। अगर हम ऐसा सबध नहीं रखेगे, तो एक तात्रिक काम करनेवाले हो जाते हैं। परतु उत्तर प्रदेश से हमने शातिसेना की जो माँग की

* उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ताओं के बीच।

है, वह बहुत बडी नहीं है। धीरे-धीरे मैं उत्तर की ओर प्रस्थान कर रहा हूँ। सारे भारत मे अगर यह एक चीज बनेगी, तो जिसे हम 'क्राति' कहते हैं, वह होगी। वह बड़े पैमाने पर होगी, तो उसका असर लोकमानस पर होगा और यही हमारा प्रयत्न है।

बाबाजी का स्मारक कैसा हो ?

यद्यपि उत्तर प्रदेश में बहुत सारा प्रदेश हम ढूंढ सके हैं, फिर भी हमारे मन पर यह असर रहा है कि जो बीज बोया गया, वह गीला नहीं बोया गया, गहरा बोया गया है। पानी का अश उसमे चाहिए था। इसलिए यद्यपि कुछ बोया गया है, उसका अभी लाभ नहीं मिल रहा है। बिहार में जितनी अपेक्षा रखी थी, उससे कुछ कम ही मिल रहा है। फिर भी वहाँ काफी काम हुआ है। उत्तर प्रदेश में पहले उत्साह था, उसके बाद बाबा राघवदास वहाँ घूमे, लेकिन वे भी गये। अब उनके स्मारक के लिए वहाँ कुछ नहीं है, तो हमें जरा दया ही आयी। बाबाजी का स्मारक नही बनता है, यह क्यों ? वे कम-से-कम १५० संस्थाओं के अध्यक्ष, सेक्रेटरी और सदस्य रहे हैं। जब वे भूदान-ग्रामदान के लिए निकल पड़े, तब बहुत सारी संस्थाओं का इस्तीफा देकर निकले। उनका स्मारक इसके सिवा और क्या हो सकता है कि जिस विचार को लेकर वे सतत घूमते रहे, उस विचार का ततु हम आगे बढ़ायें। वे मध्यप्रदेश मे घूमते थे। अगर वहाँ ताकत लगती है, तो पूरे राज्य का दान हो सकता है, यह आशा बाबाजी ने प्रकट की थी, परन्तु उनके जाने के बाद वहाँ अभी खास कुछ नहीं हो रहा है। इसलिए इसका हमे बहुत अच्छा समाधानकारक फल नही मिला है। अभी दादाभाई वहाँ कुछ करने जा रहे हैं।

अन्तर्मुख बनने की जरूरत

तात्पर्य, हमे जरा अन्तर्मुख होना चाहिए। सोचें कि हम कैसे हैं ? हम चाहे गये-बीते हों, तो भी हमारा विचार परिपुष्ट है, इस दृष्टि से जवानों को सामने आना चाहिए। निधि-मुक्ति और तंत्र-मुक्ति का रहस्य समझ लेना चाहिए। मेरा तो मानना है कि तंत्र-मुक्ति और निधि-मुक्ति के बाद लोगों में जान आयी है। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि उत्तर-प्रदेश के लोग आत्म-विश्वास खोये हैं। पहले वे

आत्म-विश्वास के साथ जिस प्रकार की भाषा बोलते थे, वह अब नहीं बोलते हैं। मैं जब उत्तर प्रदेश में था, तब वे आत्मविश्वास के साथ बोलते थे। वह भाषा उनकी अब कम हुई है। यह अच्छा लक्षण है, क्योंकि अब वे सोचकर बोलने लगे हैं। परन्तु इसमें अगर निराशा हो और आत्म-विश्वास का अभाव हो, तो वह अच्छा नहीं है। जहाँ तक मेरा अनुभव है, जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है, वैसे-वैसे बहुत ताकत हमें अनुकूल हो रही है। सात साल पहले जो अनुकूलता थी, उससे बहुत ज्यादा आज हुई है।

ढिलाई से काम न चलेगा

कुछ लोग अब कहने लगे हैं कि अब हम आहिस्ता-आहिस्ता काम करेंगे। उनकी 'अर्जेंसी' (तीव्रता) कम हुई है, परन्तु 'अर्जेन्सी' कम नहीं होनी चाहिए। इसलिए मैंने कहा कि हमें जरा अन्दर देखना चाहिए। हम अपने काम का हिसाब देखें। हर कोई सोचे कि अपना कितना समय हमने इसमें दिया है। अगर हम अब ढीले हो जाते हैं, तो काम नहीं कर सकेंगे। परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि हममें ढीलापन क्यों आना चाहिए? मेरा तो उत्साह रोज-रोज बढ़ता ही जा रहा है और मेरे दिल को बड़ा ही बल मिला है। बल का नाप दिल में ही होता है। सिर्फ दूरदृष्टि से हम मूल्यमापन करेंगे, तो जाहिर है कि हम गलत ही मूल्यमापन करेंगे। इसलिए हमारे पास समय बहुत है, यह समझकर आहिस्ता-आहिस्ता काम करेंगे, यह वृत्ति रखने का कोई कारण नहीं है। उत्तर प्रदेशवालों से मैं यह बात खास तौर पर कहूँगा।

अनुकूल वातावरण

मैं अब गुजरात-राजस्थान के मार्ग से अगले मार्च में पंजाब पहुँचूँगा। वहाँ से मई में कश्मीर जाकर फिर पंजाब लौटना होगा, क्योंकि वह रास्ता ही है। इरादा यह है कि अप्रैल या मई में कश्मीर पहुंच जाऊं, तो उत्तर प्रदेश के बिल्कुल ही नजदीक मैं आ जाऊँगा। लेकिन हमारी हस्ती क्या है? हम कुछ नहीं कर रहे हैं। सब परमेश्वर की लीला है, यह हमें सोचना चाहिए। अब ६-७ साल के बाद हम देख रहे हैं कि कुल कार्यकर्ताओं में एक अच्छी भावना प्रकट हो रही है। यही कितना बड़ा रूपान्तर है कि 'सर्वोदय अच्छा है, लेकिन अव्यवहारी

है', ऐसा कहनेवाले लोग अव कहते हैं कि 'सर्वोदय अच्छा और व्यवहार्य है।' मैं आपसे कहना यह चाहता हूँ कि कुल वातावरण आपके लिए अनुकूल है।

निराशा का कारण नहीं

वावा भारत में घूम रहा है, यह ध्यान मे रखकर काम करना चाहिए और यही पर्याप्त समझना चाहिए। हर हालत मे वावा तो घूमता ही है। लेकिन वह घूमना वन्द ही करे, तो वह भी सवको प्रोत्साहन देने के लिए काफी होना चाहिए। जिस तरह हमारे कई साथी चले गये, उसी तरह वावा भी चला जायगा, तो क्या हम ताकत खोयेंगे? मै उत्तर प्रदेश मे घूमूँगा, यह आशा नहीं है। फिर भी पंजाव में आया, तो मान ले कि मैं उत्तर प्रदेश में ही आया। वहाँ साढ़े-चार हजार खादी के सेवक हैं। उसमें से छठा हिस्सा कार्यकर्ता भी यदि यह तय करते हैं कि हम अपना छठा हिस्सा इसमे लगायेंगे, तो भी काम हो सकता है। इसके अलावा शाति-सेना खड़ी करने का काम भी आपको करना है। 'खादी' के कार्यकर्ता साहित्य-प्रचार का काम कर सकते है। 'भूदान यज्ञ' के ग्राहकों का जो ब्यौरा आया है, वह निराशाजनक है। हम कुछ खास आगे नहीं बढ़े हैं। सात साल के आन्दोलन के वाद हमें एक प्लैटफार्म मिला है। हमे जितना अच्छा प्लैटफार्म हासिल है, उतना और किसीको प्राप्त नहीं है, परन्तु प्रेस हमारे हाथ मे नहीं आया है। वह हमारे हाथ में आना चाहिए। वह भी हमारा प्रचार का एक साधन है।

नौजवान आगे आयें

वड़ी खुशी की वात है कि आपका दर्शन मुझे हुआ है। ऐसी छोटी-सी जमात रहती है, तो कुछ अधिक सम्वन्ध आता है। मैं चाहता हूँ कि इतने लोग एक-एक जिले में हों। २०० पूरा समय देनेवाले और १००० कार्यकर्ता आशिक समय देनेवाले चाहिए। आप से इतनी अपेक्षा है। "वावा राघवदासजी गये और अव कोई आता नहीं" ऐसा कहने से नहीं होगा। जवानो को आगे आना चाहिए।

पढरपुर,
३०-९-'५८

: ३ :

भूदान-ग्रामदान-प्रवाह सतत जारी रखें*

[विनोबा]

जो कुछ भी मै बोलता हूँ "विनोबा-प्रवचन" द्वारा आपके पास आता ही है, इसीलिए मैं जो कुछ कहता हूँ, उसका ज्ञान आपको मिलता ही है। लेकिन इस समय मेरा ध्यान जिस चीज पर है, वह यह है कि अपने पर जो प्यार करते है, उन पर प्यार करना पशु-स्वभाव है, परन्तु प्यार तो दुश्मन पर करना चाहिए, जो हमारा द्वेष करता है, मत्सर करता है। ऐसे प्रेम मे से ही प्रेम की ताकत पैदा होती है। यह चीज मैं न बोलूँ और मान लूँ कि हमारी शक्ति के बाहर को यह बात है, तब तो सर्वोदय हमारी शक्ति के बाहर की बात है। इसके लिए हमारा मन तैयार हो, तो हम सर्वोदय का झंडा हाथ मे उठा सकते हैं, अन्यथा नहीं होगा, यों समझकर अन्य कामों में लग जाना चाहिए, तो देश की कुछ-न-कुछ सेवा होती ही रहेगी। परन्तु सर्वोदय की सेवा करनी है, तो द्वेष करनेवालों पर प्रेम करने की मन में दृढ श्रद्धा होनी चाहिए। उस हालत मे कार्यकर्ताओं की आपस-आपस में बनती नहीं है, यह तो हरगिज ही नहीं होना चाहिए, असम्भव ही होना चाहिए, जब कि सर्वोदय का काम करना है। 'प्रतिरोधी प्रेम' यह मुझे ऐसा शब्द मिल गया कि इसके जप मे मेरी चिंताएँ खत्म हो गयीं।

पानी के जैसा प्रेम करें

अब मुझे कार्यकर्ताओं की सख्या की कोई चिंता नहीं है, बल्कि कार्यकर्ता घटें कैसे, इसकी चिंता है। ईसामसीह के बारह ही शिष्य थे, शंकराचार्य के चार ही शिष्य थे, बुद्ध भगवान् ४५ साल के थे, तब कुछ शिष्य बने, तब भी उनकी बात दुनिया मे चली, क्योंकि उन्होंने मुख्य चीज पकड़ रखी थी। वहाँ विचार में दोष सहन नहीं करते थे। विचार-शुद्धि, जीवन-शुद्धि, यही उनका निश्चय था। कोई कहते हैं कि 'यह आन्दोलन अभी ठप हो गया है, तो जरूरत यह है कि हमको

---

* पंजाब और राजस्थान के कार्यकर्ताओं के बीच।

अंतरशुद्धि करनी चाहिए। इस कार्यक्रम में कोई दोष नही है कि कोई 'रेजिस्टन्स' (प्रतिकार) या 'सिविल डिस्ओबीडियन्स' (सविनय अवज्ञा) का कार्यक्रम शुरू करना चाहिए। यह सारे तोते के शब्द हैं। यह नहीं पहचानते हैं कि दुनिया में क्या हो रहा है, ताकतें क्या काम कर रही हैं, कहीं विश्वयुद्ध शुरू हो जाय, सारी दुनिया की स्थिति बदल जाय, तो 'मार्केट' पर इतना असर होगा कि पचवर्षीय योजना गिर जायगी। उस समय देश को बचानेवाली कोई चीज इस कार्यक्रम के सिवा और किसी कार्यक्रम में नही है। इसीलिए दिल के साथ दिल जोड़ने की जरूरत है। हम ऐसे हों कि हमारे मन में न कोई पूर्वग्रह हो, न कोई स्वार्थ या निजी भावना। जैसे पानी सब पर समान प्यार करता है, हरएक की प्यास बुझाता है, वैसे हमको सब पर समान प्यार करना चाहिए। इसीलिए तो पानी को संस्कृत में 'जीवन' कहते हैं। पानी यह नहीं सोचता कि पीनेवाले का आपस-आपस में बनता है या नहीं। शेर और गाय, दोनों का आपस-आपस में बनता नहीं है, लेकिन पानी का दोनों के साथ बनता है। शेर के साथ शेर के समान बरतना और गाय के साथ गाय के समान बरतना पानी नहीं जानता। वह तो कहता है कि मैं पानी के समान ही बरतूँगा। मुझे बनाने का अधिकार मैं किसीके हाथ में देना नहीं चाहता हूँ। गाय अपना गायपन जाने और शेर शेरपन जाने। इस तरह से हम सोचेंगे, तो हमारा काम होगा। इससे भिन्न बात सोचने के लिए मैं तैयार नही हूँ। लेकिन अब मैं इस निष्कर्ष पर आया हूँ कि हिन्दुस्तान का मिशन तब पूरा होगा, जब इस तरह के कार्यक्रम पैदा होंगे। यह कठिन बात है, लेकिन यह जमाने की माँग है। जैसे हम अपने भाई और लड़के पर प्यार करते हैं, वैसे सब पर करें। प्रेम को आज तक कैद कर रखा था, उसको खोल देना चाहिए।

सारी जमीन बँट जाय

मैं राजस्थान और पंजाब आऊँगा, वहाँ का सारा काम मैं कर डालूँगा, ऐसा न मानें। जो कुछ होनेवाला है, वह भगवान् आपसे ही करवायेगा। अप्रैल तक आपके यहाँ रहूँगा और परमेश्वर की कृपा हुई, तो राजस्थान में दुबारा भी आ सकता हूँ। ग्रामदान और भूदान का काम आपको करना होगा। चन्द ग्रामदान मिले, उसे अच्छा करें और फिर आगे बढ़ें, यह पूरा विचार नहीं है। यह अधूरा विचार

है। इसके पीछे सूक्ष्म अहंकार है। किसी गाँव में बैठकर इसको सुधारेंगे ही, ऐसा नहीं है। अगर बाबा भी किसी गाँव में बैठ जाता है, तो गाँव को सुधारेगा ही, ऐसा नहीं है। गाँव को ग्रामदानी लोग ही सुधारेंगे। इसका अर्थ यह नहीं कि कहीं अच्छा कार्यकर्ता मिल ही जायगा, तो हम बैठेंगे नहीं। लेकिन एक-दो तो अच्छा नमूना पेश करें और फिर दूसरे अच्छे ग्रामदान हासिल करें, ऐसा नहीं करना चाहिए। हमारा सब विचार लोगों को समझाना चाहिए और यहां ग्रामदान शुरू हुआ, इसीलिए भूदान-प्रवाह सूखना नहीं चाहिए। नदी बहती है, समुद्र की तरफ जाती है, तो भी बहती ही रहती है। जो जमीन मिली है, वह सारी बाँट डालनी चाहिए।

मूलभूत विचार छोड़ना नहीं है

पंजाब और कश्मीर की जो बड़ी-बड़ी समस्याएँ हैं, उनके हल के लिए बाबा पंजाब में जा रहा है, ऐसा मानने की कोई जरूरत नहीं है। अगर कश्मीर और हिन्दुस्तान के बीच का मामला सुलझ गया, तो दुनिया में विश्व-शांति ला सकते हैं। यह बहुत बड़ा सवाल है, इसका हल परमेश्वर ही करनेवाला है। लेकिन मुझे लगा कि पंजाब में जाकर देखें कि क्या हाल है? वहाँ जाकर बने तो अपना भूदान-ग्रामदान का ही काम करनेवाला हूँ। लेकिन वह एक ऐसा प्लेटफार्म है जहां सब लोग इकट्ठा होते हैं। इसीलिए हम अपने काम के लिए ही जायेंगे, लेकिन जो देखने को मिलेगा, उसका निरीक्षण करेंगे। बाबा अपना मूलभूत विचार छोड़कर दूसरा काम हाथ में लेनेवाला है, ऐसा मत समझिये। यही काम है, जिसमें से दूसरी बातें बननेवाली हैं। 'सिविल डिसओबिडियन्स' (सविनय अवज्ञा) के बारे में बापू हमेशा कहते थे कि वह चीज आप मुझ पर छोड़ दीजिये। अब उसकी कब किस तरह जरूरत है, यह सोचने की जिम्मेवारी मुझ पर डालिये और जो कह रहा हूँ, वह करने की तैयारी कीजिये। इस तरह अपनी मनोवृत्ति इस समय सब पर प्यार करने की ही रखें।

राजस्थान का मामला कुछ मुश्किल होगा, क्योंकि वहां कुछ राजनीतिक समस्याएँ हैं। वैसे तो आज की 'रिएक्शन' (प्रतिक्रिया) ही एक समस्या है। परन्तु राजस्थान के लोग अपना सर्वोदय का काम पूरा कर सकते हैं। सर्वोदय एक

ऐसी चाभी है कि उससे कठिन-से-कठिन ताला भी खुल सकता है। हमारे मन में कोई 'कॉम्प्लेक्स', कोई उपाधि नही है, इसीलिए अब जरा चित्तशुद्धि करें। नानकजी ने एक वाक्य लिखा है कि हिन्दुस्तान मे भक्ति सबसे बडी चीज है। हमें यही करना है। बाकी तो मैं आपके हाथ मे हूँ, जहाँ-जहाँ ले जायेंगे, वहाँ घूमूँगा।

पंढरपुर,
२१-५-'५८

: ६ :

सहयोग-वृत्ति और सेवाभाव से काम करें*

[विनोबा]

सात साल से मैं सतत बोलता ही आया हूँ, इसीलिए अब ज्यादा कहने का रहता नही है। जो कुछ रहता है, वह करने का ही रहता है। लेकिन फिर भी नये-नये सवाल उठा करते हैं। हमको अपने मन की ऐसी तैयारी करनी होगी कि जो वैर करता है, उस पर भी प्यार करना है। इसको अगर हम अपनी शक्ति के बाहर की चीज समझते हैं, तो समझ लेना चाहिए कि सर्वोदय भी हमारी शक्ति के बाहर की चीज है। अगर यह चीज आप लोगों के ध्यान में आती है, तो मध्यप्रदेश का काम हो जायगा। जो कुछ भी थोडे-बहुत कार्यकर्ता हैं, वे जवान हैं, बुद्धिवान् हैं और शक्तिशाली भी हो सकते हैं—अगर एक बात समझ ली कि हिंसा की ताकतों का जो हमला हो रहा है, उस हालत मे उन ताकतों का एक ही समर्थ उपाय होगा कि हम मे जो वैर करता है, उस पर प्रेम करने की हिम्मत करनी चाहिए और वह अक्ल भी हमको होनी चाहिए। यह अक्ल सादी अक्ल है। बडे-बडे शस्त्रों से जहाँ दुनिया त्रस्त है, वहाँ हम भी अगर अपने हाथ में एक छुरी रखेंगे, तो इससे काम बननेवाला नहीं है। सामने ॲटमवाला है और उसके सामने मैं अपनी छुरी रखूँगा, तो वह छुरी मेरा ही गला काटने का काम करेगी। इससे ज्यादा कुछ नही करनेवाली है। क्या इसका नाम अक्ल है? अब हिंसक शक्ति रखने मे कोई अक्ल नही रही है। इसमें थोडी हिम्मत का ही सवाल है। इसीलिए मै कहता हूँ

---

* मध्य प्रदेश के कार्यकर्ताओं के बीच।

कि इसके बिना आत्मा की शक्ति प्रकट नहीं होती है। कल मैंने थोडे में कहा था कि प्रेम का स्वभाव है कि प्रेम के सामने प्रेम दिखावे। गाय दूध देती है, तो उसके लिए प्रेम होता है और उसके सामने जब हम हरी-हरी घास रखते है, तो उसका भी हम पर प्रेम होता है। इसमें आत्म-शक्ति नही प्रकट होती है। आत्मशक्ति इसमें प्रकट होती है कि फलाना मुझसे द्वेष करता है शका, मत्सर और स्पर्धा करता है, उसके प्रत्याघात मे सिर्फ द्वेष न हो, इतने से नही चलेगा। गीता ने आरम्भ किया कि 'अद्वेष्टा सर्वभूताना' ' ' और पूरा किया 'मैत्र करुण एव च' इसका पॉजिटिव (विधायक) पहलू यह होना चाहिए कि कोई द्वेष करता है, उस पर भी हम प्रेम करे। यह लोगो मे अव्यवहार्य और हास्यास्पद मालूम होता है, लेकिन ऐसा नही है। इसके पाछे एक बडा मानस-शास्त्र और रहस्य है। वह रहस्य अगर खुल जाय, तो यह अव्यवहार्य नहीं है। आपस-आपस मे सह-व्यवहार्य जैसा यह हो सकता है।

हृदय और विचार-शुद्धि हो

मैं सुनता हूँ कि सभी जगह कार्यकर्ता थोडे हैं, लेकिन समस्या यह है कि थोडे कार्यकर्ताओं मे भी आपस-आपस में बनता नहीं है। मैं यह कभी भी नहीं समझ सकता कि आपस-आपस में क्यों बनता नही है। एक-दूसरे के सामने अपनी चीज रखकर जितना मान्य हुआ, उसमें सहयोग करें और अमान्य हुआ, तो अलग हो जायेंगे, ऐसा नहीं है। दोनों हालत मे सब लोग जो तय करेंगे, उसके साथ सहयोग करेंगे ऐसी वृत्ति हो जाय, तो यह शक्य है और पर्याप्त भी है। हम आज जिस काम मे पडे है, उसमे संख्या का कोई सवाल नहीं है। आप अगर कहेंगे कि कुल राजनैतिक पक्षवाले हमसे अलग हैं, तब वे आपसे अलग होनेवाले ही हैं। सरकारी नौकरी से हानेवाली सेवा का आकर्षण होते हुए भी हमको जो मुट्ठी भर कार्यकर्ता मिले है, वह एक बहुत बडी चीज है। हमारा बल सख्या नहीं है। हमारा बल हृदय-शुद्धि और विचार-शुद्धि है। मुझे तो यहा आश्चर्य होता है कि इस आन्दोलन मे इतनी सख्या भी कैसे है? इसके पहले जहा-जहा नया विचार पैदा हुआ, वहा उस विचार के समर्थक इतने पैदा नहीं हुए। इतिहास में बुद्ध, ईसा आदि बडे लोग हो गये, तो देखते है कि उनको चन्द ही साथी मिले थे। इस आन्दोलन

में यह विशेष ही बात है कि इसमें इतने कार्यकर्ता मिले हैं। इसीलिए मुझे मुख्य बात यह कहनी है कि जिसका हमसे द्वेष हो, उस पर भी हम प्रेम करें।

आजीविका समाज द्वारा हो

इस कार्यक्रम में तरह-तरह की ताकत भरी है। लोक-शिक्षण की, बच्चों के शिक्षण की, कुटुम्ब-शुद्धि की, उपासना की भावना भरी हुई है। प्रभु का अन्न खाकर कार्यकर्ता काम करेंगे, तभी यह होगा। हमारी यह समस्या है कि आजीविका का क्या करें। फिर नीयत यह होती है कि कुछ धधा करें और बचे हुए समय में यह काम करे। फिर ज्यादा-से-ज्यादा काम करने के मोह मे धधे पर अन्याय करते हैं। शरीर-परिश्रम पर जीयेंगे, तो वह एक मिसाल होगी। लेकिन उससे कार्य कम होगा। मैं जरूर चाहूँगा कि दो चार घटे काम किया जाय। लेकिन आजीविका का सवाल समाज पर ही छोडा जाय। परमेश्वर का यही श्रेष्ठ रूप होगा कि घर-घर से कुछ-न-कुछ मिले। यह हर प्रदेश मे हो सकता है।

सबके पास पहुँचना होगा

हमने शिवरामपल्ली में सूताजलि का काम रखा था। लेकिन आज हमने सात लाख का ऑकडा सुना। इससे अधिक ज्यादा हम प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन हम पहुँच नहीं पाते हैं। इसीमें हमारी कसौटी हो रही है। हम घर बैठे भगवान् चाहते हैं, जिसके लिए ऋषि-मुनियो को असख्य जन्म-तपस्या करनी पडी। हम लोगों को सबके पास पहुँचना होगा, विचार समझाना होगा, तब इसमें से एक शक्ति पैदा होगी। सम्मति-दान रोजमर्रा का सक्रिय वोट है। रोज एक मुट्ठी अनाज सर्वोदय-पात्र में डालना। इससे हम ऐसी सेना खडी करेंगे, जो कार्यकर्ताओं के निर्वाह की, उनके बच्चों के पोषण और शिक्षण की चिन्ता करेगी।

अनुभवियो से लाभ उठायें

आजकल सुनता हूँ कि खास करके बूढ़े और जवानों मे विचारों का फर्क होता है। इसमें दोनों तरफ से समझने की बात है। ऐसा फर्क होना लाजिमी है। अगर ऐसा फर्क नहीं रहा, तो दुनिया और देश की प्रगति ही रुक जायेगी।

इसलिए जवान लोग आगे रहते हैं, तो अच्छा ही है। परन्तु उनको अनुभवियों के अनुभव का भी लाभ मिलना चाहिए। वृद्ध के लिए जवानों के मन में आदर होना चाहिए। किसी जगह मतभेद हो, तो चर्चा कर सकते हैं और चर्चा करने के बाद दुरुस्ती करने में मदद मिलेगी, तो लेंगे। अगर बूढ़े लोग सभी जगह घूम नहीं सकते हैं, तो एक जगह पर बैठकर ही वे काम करें और सारे जवान लोग वहाँ पहुँचें। उनका विचार जान लें। जँचे, तो उसका उपयोग करें। एक दफा अर्जुन श्रीकृष्ण को पूछने लगा कि मुझे कुछ उपदेश दीजिये। तो श्रीकृष्ण ने कहा कि अब मुझको क्या ज्ञान देना है? वहाँ भीष्मदेव पड़े हैं, वहाँ जाओ और ज्ञान हासिल करो। इस तरह जो बुजुर्ग हैं, उनके पास पहुँचकर ज्ञान-चर्चा करें। जितना जरूरी महसूस हो, उतना लिया जाय। इसलिए जवानों को आगे आना चाहिए और 'मेल नहीं होता है' यों कहकर दूर नहीं होना चाहिए। जो पुरानी संस्था है, उसका हमें आदर करना चाहिए। जिस जमाने में कोई काम नहीं करते थे, उस समय उन्होंने ही वह काम किया है। जो काम वे कर सकते थे, उसके लिए त्याग भी उन्होंने काफी किया है, इसलिए उनसे काम लेना चाहिए।

'मालिक-नौकर' की मनोवृत्ति

कार्यकर्ताओं के निर्वाह के लिए घर-घर में सर्वोदय-पात्र होना चाहिए। किसीके घर से लेने में हम नौकर बन जाते हैं और वे मालिक बन जाते हैं, ऐसी छोटी मनोवृत्ति नहीं रखनी चाहिए। कहाँ सर्वोदय और कहाँ सेवा करने की बात! कहाँ ये मालिक और नौकर की मनोवृत्ति की बात! अगर ऐसी मनोवृत्ति रहती है, तो मेरे मन की यहाँ तक तैयारी है कि अपना कोई कार्यकर्ता न रहे। इसमें अपना बलिदान ही काम देगा। इसमें कोई शक नहीं रहा है। हम तो रामजी का अन्न खा रहे हैं। ऐसा कल राजम्मा (केरल की भूदान-कार्यकर्त्री) ने बताया। समाज से लेने की यह जो हिचकिचाहट है, वह बता रही है कि हमारे दिल में कुछ पाप है। समाज अगर हमें नौकर समझेगा, तो भी क्या है? हैं ही हम नौकर। एक मुट्ठी अनाज लेकर, हम अपना पूरा-का-पूरा जीवन प्रेम से इसमें देते हैं, तो यह एक बहुत बड़ी चीज है। वे अगर हमें नौकर कहेंगे, तो हम उसे अलंकार समझेंगे।

खानदेश के बालूभाई मेहता कसारा मे सफाई का काम करते थे। लोग इधर-उधर शौच के लिए बैठते थे, तो वे सारा मैला उठाकर खेतों में ले जाते थे। गाँवों के लोग समझे, यह कोई नौकर है और गाधी-संघ से तनख्वाह लेता है और उनको भगी काम की आज्ञा मिली है। कई दफा लोग सामने से आकर उनको बताते थे कि यहाँ से मल उठा लें। बालूभाई से, जो कि खानदेश के बडे प्रसिद्ध नेता थे, लोग आकर मैला उठाने की बात कहते थे। मैं जब वहाँ गया, तब मैंने यह देखा। जब मौका आया, तब मैंने उनसे कहा कि 'जहाँ मैला पडा हो, वहाँ आप बालूभाई को बुलाने के लिए आते हैं, तो वह ठीक ही है। वह आपका नौकर ही है, लेकिन आपको भी इसमें कुछ करना होगा। आप कुछ नही करेंगे, तो बालूभाई का पुण्य-संग्रह होनेवाला ही है, लेकिन आपका पाप-सग्रह होगा, परन्तु बालूभाई अपना पुण्य-संग्रह बढाने के लिए यहाँ नहीं आये हैं, वे आपकी सेवा करने के लिए यहाँ आये हैं।' इस तरह जब मैंने उनसे कहा, तब लोगों की आँखें खुल गयीं और लोग समझ गये। हम सेवक और नौकर तो हैं ही, लेकिन हम क्या सेवा करेंगे? हम शान्ति-स्थापना के लिए प्रयत्न करेंगे। कोई अगर बीमार है, तो वहाँ जाकर उनकी सेवा भी करेंगे। कही छुआछूत भेद है, तो उसको मिटाने की कोशिश करेंगे, यह सारा हमें करना है। इसलिए यह मत समझो कि चावल कहाँ इकट्ठे होगे और चावल इकट्ठे करने से इसमे जन्तु पैदा होंगे। परन्तु अनाज रखने की कोई बात नहीं है, उसको पैसे में परिवर्तन करनेवाले व्यापारी भी होंगे।

पहले सेवक तैयार हों

हम जब रत्नागिरि मे घूमते थे, जहा २०० इच बारिश होती है, वहाँ चर्चा चली कि एक महीने मे चावल में कीड़ा पड सकता है। वहाँ ब्राह्मण को पैसा और सुपारी देने का रिवाज है। तो सुपारी को ही सर्वोदय-पात्र समझ लिया जाय। उसे बेचकर पैसा प्राप्त कर सकते हैं। मुझे बहुत ही आनन्द हुआ कि जब मेरे ध्यान मे यह आया कि वहाँ कोकण में सुपारी का व्यापार भी चलता है। एक मुट्ठी भर चावल के बदले एक सुपारी रखेंगे, तो दुगुना लाभ होगा। सुपारी बिगडनेवाली नहीं, क्योंकि उस पर हवा का असर नहीं होता। लेकिन यह तभी हो सकेगा,

जब हम सब लोगों की सहानुभूति हासिल करेंगे। सारे हिन्दुस्तान में यह चीज फैलाने के लिए अनेक सेवक चाहिए। इसीलिए पहले सेवक तैयार करेंगे, फिर सर्वोदय-पात्र का प्रयत्न किसी एक कॉपैक्ट एरिया (सघन क्षेत्र) में किया जाय। कुछ सर्वोदय-पात्र इधर और कुछ उधर, इस तरह से करने में कोई सार नहीं है। इस तरह से करने में लोगों के लिए तो कल्याणकारी चीज हो जायेगी। लेकिन इसमें आपका क्या काम बनेगा? इसीलिए यह काम एक सुव्यवस्थित ढंग से करेंगे, तो उसमें सारी कुशलता दीख पडेगी। इसमें कार्य-दक्षता की कसौटी है। जिन गाँवों में कार्यकर्ता घूमते हैं, वहाँ अगर सर्वोदय-पात्र होता है, तब तो ठीक है।

आपके इन्दौर में पाच लाख की तादाद है, तो वहाँ यह काम बहुत हो सकता है। इन्दौर में स्त्री-शक्ति बहुत है। वहाँ मेरी सभा में इतनी स्त्रियाँ आयी थीं कि शायद ही दूसरी किसी जगह आयी होंगी। शायद अहल्याबाई का वह परिणाम होगा। इसमें एक शख्स पर्याप्त है, लेकिन वह एक विचार को पकड़ रखें और दुश्मन पर भी प्यार करें, तो वह एक होगा, इन्दौर को जीत लेगा। इससे कम चीज रखने से अपना काम होनेवाला नहीं है। यह मैंने खूब सोचकर कहा है।

पढरपुर,
२१-५-'५८

: ७ :

तमिलनाड़ में ग्राम-स्वराज्य के प्रयोग हों*

आप सब लोग जानते हैं कि हमने तमिल के अध्ययन की बहुत कोशिश की और अभी भी यहाँ तमिल किताबे पढते ही हैं, परन्तु किताबे पढने से भाषा नहीं आती है। भाषा सुनकर ही आती है। परन्तु मेरा कान बहुत कम सुनता है, इसीलिए सुनकर भाषा सीखने का साधन भी कम हुआ। इसीलिए क्षमा माँगनी पडती है। इसीलिए यह नही कि आप हिन्दी नहीं जानते हैं, तो आपको क्षमा माँगने की कोई जरूरत नही है। यह तो मै हमेशा कहता हूँ कि दूसरी भाषा को एक उपासना के तौर पर हमे सीखना चाहिए।

तमिलनाड का स्मरण मुझे सतत होता ही रहता है और जब तक बगलोर में था, तब तक मैंने यह माना नहीं कि मै तमिलनाड के बाहर गया हूँ। लेकिन मैंने जब बगलोर छोड़ा और इधर कर्नाटक की ओर चला, तब मेरे ध्यान में आया कि अब मैंने तमिलनाड छोडा। तमिलनाड मे हमारी ११ महीने यात्रा चली। आरभ में कोई विशेष काम नही हुआ, पर इसमें किसीका दोष नहीं है। वह तो खोज ही चल रही थी कि कहाँ काम होगा। लेकिन आखिर मदुरा जिले मे पहुँचे, तो वहाँ काफी अच्छा काम हुआ। कहना चाहिए कि हिन्दुस्तान मे ग्रामदान-आन्दोलन की इज्जत तमिलनाड ने बढ़ायी, क्योंकि उडीसा में जो ग्रामदान मिले थे, वे सारे आदिवासी जमातों के थे। वे बिल्कुल छोटे-छोटे गाँव थे और रेलवे से बहुत दूर थे, तो भी उन ग्रामदानों की कीमत मै कम नहीं मानता हूँ। इसके कारण हमको आदिवासियो की सेवा का मौका मिला, यही एक बड़ा लाभ है। लेकिन ग्रामदान की प्रतिष्ठा तब तक नहीं बढ़ती, जब तक ग्रामदान मे अनेक जमातें न हों। वे पढे-लिखे हों, तभी वास्तव मे ग्रामदान की कीमत बढ़ती है। इस प्रकार के ग्रामदान हमको मदुरा मे मिले। यह बात बडे नेताओ के ध्यान में आयी और इसके कारण उनको भी आशा पैदा हुई कि शायद ग्रामदान का काम हिन्दुस्तान

*तमिलनाड़ के कार्यकर्ताओ के बीच।

भर फैल सकता है। काम अच्छा है, इसमें तो किसीको शका नहीं है, परतु यह कहाँ तक शक्य है, यही एक शका का विषय है।

सबमें विश्वास निर्माण हो

मदुरा जिले में ग्रामदान प्राप्त होने के बाद नेताओं को विश्वास हुआ कि यह काम जरूर हो सकेगा। उसके परिणामस्वरूप येलवाल में कॉन्फरेंस हुई, जहाँ भिन्न-भिन्न पक्ष के नेताओं ने पूरी चर्चा करने के बाद ग्रामदान का समर्थन किया। इसके बाद आप लोग जानते हैं कि यह चीज हिन्दुस्तान में सर्वमान्य थी। यद्यपि यह हुआ, तथापि प्रान्तीय नेताओं की सहानुभूति कितनी मिल सकती है, इसका उत्तर मद्रास-असेम्बली ने बहुत अच्छी तरह से दिया। मद्रास-असेम्बली में कुछ लोगों ने एक मति, प्रीति और शाति से ग्रामदान का बिल पास किया। आप लोग जानते हैं कि कामराज नाडर ने अपने हाथ में उसी भाग को रखा है, जहाँ ग्रामदान-भूदान हुए हैं। अक्सर यह विभाग महत्त्व का नहीं रहता है और मुख्य प्रधान अपने हाथ में ऐसा विभाग रखता ही नहीं है, लेकिन कामराज ने रखा। इसीलिए वहाँ देहातियों के लिए प्रेम और दीर्घ दृष्टि दीख पड़ती है, तो यह आपके लिए अनुकूलता है। इसीलिए मुझे विश्वास है कि यह ग्रामदान का काम वहाँ खूब बढ़ेगा। मैंने तो 'कुरल' और तमिल के साहित्य के आधार पर कह रखा था कि ग्रामदान तमिलनाड़ की 'जीनियस' (अपूर्व बुद्धि) है। मेरा तो विश्वास है ही, लेकिन बाद में सारा काम बना, तो आप सबको भी विश्वास होना चाहिए कि वहाँ खूब काम होगा। आपके सामने सिर्फ यही सवाल है कि कार्यकर्ता किस तरह बढ़ें। मैं चाहूँगा कि बहुत सारे कार्यकर्ता जनशक्ति के आधार पर खड़े रहें और इसीलिए मैं नयी-नयी योजना पेश किया ही करता हूँ। अगर उसमें से सर्वोदय-पात्र का लाभ उठायेंगे, तो हर जिले में कार्यकर्ता मिल जायेगा।

तमिलनाड़ की विशेषता

इसके आगे मैं उत्तर भारत की ओर जा रहा हूँ। दक्षिण भारत से अधिक दूर हो जाऊँगा, लेकिन फिर भी आप लोगों के साथ जो काम किया है और जो प्रेम बना है, वह तो पक्का ही है। मुझे विश्वास है कि तमिलनाड़ में ग्राम-स्वराज्य के जो प्रयोग होंगे, वे अधिक-से-अधिक परिपूर्ण होंगे, क्योंकि खादी और हाथ की

कारीगरी में तमिलनाड़ के लोग बहुत आगे हैं। गणित, हिसाब आदि में भी वे आगे हैं। सभी पक्षों की सहानुभूति भी इसमे है। फिर चाहे वह ज्यादा काम न कर सकें, परन्तु उनका विरोध बिल्कुल नहीं है।

जमीनवालों को निर्वाह का डर

प्रश्न गाँवों मे जब ग्रामदान का विचार समझाते हैं, तब बडे जमीनवाले लोग कहते है कि हम तो जमीन देने के लिए तैयार हैं, परन्तु यह आन्दोलन अगर बदमाशों के हाथ मे आ जाय, तो हमारा आगे का निर्वाह कैसे होगा ?

उत्तर यह शंका उचित है। उनको हम दोष नहीं दे सकते, क्योंकि आज दुनिया में ऐसी 'पोलिटिकल आयडिआलॉजी' (राजनीतिक विचारधारा) चल रही है। इसीलिए बडे लोगों को यह डर रहता है। जो जमीन देने के लिए राजी है, उनको हमे निर्भय बनाना चाहिए। जैसे हमने राजाओं का राज्य बाँट दिया, फिर भी उनका समाधान किया, वैसे उन बडे लोगों का भी रक्षण उस गाँव के छोटे-से स्टेट मे जरूर होगा, ऐसा उनको विश्वास हो जाय। वैसे ऐसे बड़े लोग गाँवो में ज्यादा सख्या में नहीं होते हैं, परन्तु जो भी दो-तीन लोग हैं, उनको यह भय नहीं होना चाहिए। उनकी जमीन बँट गयी, तो उनके वास्ते भी उनका जीवनमान सोचकर कुछ इन्तजाम करने में यह बात ठीक है कि आज दुनिया को जितना लूट सकते हैं, वैसी स्थिति आगे नहीं रहेगी और वैसा वे चाहते भी नहीं हैं, जब कि वे जमीन देने को राजी हो जाते हैं। उनको गाँववालों की तरफ से वचन मिलना चाहिए कि ५-१० साल के लिए गाँव की तरफ से इतनी निश्चित सेवा मिलती रहेगी और जब लडके तैयार हो जायेंगे, तब वे सर्वसामान्य लोगों में शामिल हो जायेंगे। किसी प्रकार का डर न रहे, ऐसा आश्वासन उनको मिले, ऐसी योजना भी हम कर सकते हैं।

तमिलनाड़ मे साहित्य का प्रचार जितना होना चाहिए, उतना नहीं हुआ है। तमिलनाड़ में सुशिक्षित समाज बहुत बडा है। उसमे शहर भी बहुत हैं। हमें शहरों की उपेक्षा नहीं करनी है। वहाँ घर-घर में साहित्य पहुँचना चाहिए। दो-तीन महीने में एक दफा एक सप्ताह साहित्य-प्रचार के लिए रखा जाय, ऐसा करना चाहिए। बाबा जिस वक्त वहाँ था, उस वक्त जितना साहित्य वहाँ खपता

था, उतना अभी नहीं खपता है। मैं तो उलटी ही आशा रखता था। भूख पैदा हुई है, इसलिए लोग अब खूब खाना मॉगेंगे और उनको खूब खिलाया जायगा।

शहरो मे स्थित जमींदारों की समस्या

प्रश्न गावों के जमींदार जो शहर मे रहते (एब्सेन्टी लैंडलार्ड) है, उनके पास से जमीन प्राप्त करने के लिए कौन सा आन्दोलन चलाना चाहिए ?

उत्तर 'एब्सेन्टी लैण्डलॉर्ड' के सामने आन्दोलन खड़ा करना, यह अपने विचार के बिल्कुल ही विरुद्ध बात है। अगर ऐसा करेंगे, तो लाभ से ज्यादा नुकसान ही होनेवाला है। वैसे जो 'एब्सेन्टी लैण्डलॉर्ड' है, वे निष्ठुर हो सकते है, क्योंकि उनको गॉव की पहचान नहीं होती है। परन्तु जिनका गॉव के साथ सम्बन्ध रहता है, वैसा मालिक देने को राजी हो जाता है, तो अपना काम बन जाता है। इसका अनुभव हमे बिहार में आया। बिहार में कुछ जमींदारों ने कुछ जमीन मजदूरों को बॉटने के लिए दी, तो फिर कुछ 'एब्सेन्टी लैण्डलॉर्ड' के पास उन्हीके मजदूर स्वय पहुंच गये और बोलने लगे कि दूसरे मालिकों ने जमीन दे दी है, तो आप भी दीजिए। हम आपकी और हमारी, दोनों की काश्त करेंगे, तो फिर उन जमींदारों को भी लगा कि हमें भी जमीन देनी चाहिए। इस तरह एक नैतिक असर डालने का अपना कार्यक्रम है, इसीलिए इसमें शीघ्र-से-शीघ्र परिणाम आये हैं। लेकिन अगर हम गलत रास्ते से चले जायेंगे, तो काम देरी से होगा और आज जितनी महानुभूति प्राप्त हुई है, वह नहीं होगी। नैतिक शक्ति हमारा बडा भारी अग है, वह हम जहॉ इस्तेमाल करते हैं, वहॉ एकदम परिणाम नही दीख पड़ते है। थोड़ो-देरी से ही परिणाम देखने को मिलता है, लेकिन जो परिणाम आता है, वह अच्छा ही आता है।

पढरपुर,
३१-५-'५८

: ॐ :

प्रतिरोधी प्रेम से भूदान के काम में लगें*

[विनोबा]

[[आरभ मे प्रेम की महत्ता बतानेवाला एक भजन गाया गया ।]

यह तो वगाल के लोग ही कर सकते हैं कि सिर्फ चालीस मिनट वात के लिए दिये गये हों, उसमे से भी कुछ मिनट भजन गाने मे बिताये । यह एक वहुत बड़ी वात है । ये लोग वगाल में रहकर वगाल की ताकत नही जानते हैं, परतु मैं वगाल से बाहर रहकर भी उसकी ताकत जानता हूँ ।

प्रतिरोधी प्रेम की आवश्यकता

इस समय अपनी दृष्टि से मैं एक ही मार्गदर्शन दे सकता था और जिसकी जरूरत थी, वह मैंने वता दिया है कि अव प्रतिरोधी प्रेम की जरूरत है । जो हम पर प्रेम करता है, उस पर प्रेम करने से आत्मा की शक्ति प्रकट नही होती है । आत्मा की शक्ति तब प्रकट होती है, जब जिसका हमसे द्वेष है, उस पर हम प्रेम करते हैं । प्रेम द्वेष का अभाव नहीं है, वह एक 'पॉजिटिव' विधायक चीज है । ...नि... की आज की जो हालत है, उस हालत में इससे कम ताकत से दुनिया का ...सला हल होनेवाला नहीं है । राजनीतिज्ञता, व्यवहार-कुशलता और शस्त्रबल से तो काम होनेवाला है ही नही । इसीलिए अपने पास जो मुट्ठी भर कार्यकर्ता हैं, वे प्रतिरोधी प्रेम करना सीखें । मेरा अपना मानना है कि वंगाल मे जिस प्रकार एक वाजू पर मतभेद और परस्पर वैर है, वैसे दूसरी वाजू पर सबके हृदय मे भक्ति की धारा है । यह मैंने जव कभी वंगालियों से वात करने का मौका आया है, तव कहा है । यह मेरा दृढ़ विश्वास है, जो आप लोग नही पहचान सकते हैं । अव आपकी जबान में यह कहने की ताकत आ गयी है कि आप हमारे यहाँ आइयेगा, तव तक सौ ग्रामदान हो जायेगे । कौन जान सकता है कि यह होगा या नहीं ? लेकिन इतना आत्मविश्वास आया कि यह हो सकता है ।

---

* वगाल के कार्यकर्ताओं के वीच ।

अभी तक जो प्रचार-कार्य हुआ है, उसमे इतना हुआ कि वहा की सरकार अनुकूल हुई है। वहा की सरकार पहले अनुकूल नहीं थी, ऐसा न कहो और न समझो। अगर हम सोचें, तो हम ही अपने को पूरे अनुकूल नहो हुए है। अपना जीवन, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, शरीर और विचार के लिए पूरे अनुकूल हुए हैं, ऐसा नहीं है। हम ही कभी-कभी अपने खिलाफ बरतते चले जाते है। बाबा कभी-कभी खुद की मिसाल देता है। बाबा का गला कहता है कि दूध अच्छा है और पेट कहता है कि दही अच्छा है। दही पिया, तो पेट सतुष्ट होता है और दूध पिया, तो गला सतुष्ट होता है। एक ही शरीर मे वैर है, दो पार्टियो है। बाबा को उन दोनों को सँभालना पडता है, क्योकि वे दोनो मेरे ही हैं। वैसे ही दुनिया मे जितने लोग हैं, वे मेरे है ऐसा मानेंगे, तभी यह काम होनेवाला है।

बम्बई राज्य बना, अच्छा हुआ, लेकिन इसमे दोनों बाजू से कई गलतियाँ हुई। एक पक्ष कहता है कि हमसे गलतिया हुई है, लेकिन दूसरे से कुछ कम हुई है। दूसरा पक्ष भी वैसा ही कहता है। दोनों से कुछ-न-कुछ गलतियाँ हुई, इसमे किसीको कोई संदेह नहीं है। दोनो पक्षो को इसमे यह कहने की सहूलियत मिल जाती है कि हमारी गलतियाँ कुछ कम हुई, लेकिन उसमे जितनी गलतियो दोनों की मिलकर हुई, उतनी बाबा की गल्ती बढ़ गयी है। एक पक्ष ने दस गलतियाँ की और दूसरे पक्ष ने पाँच कीं, तो बाबा का पद्रह गलतिया हो जाती है। इसीलिए मेरे पास अपने को खुश करने का कोई साधन नहीं रहता है। इसीलिए सरकार अभी अनुकूल नहीं होती है, तो चिंता नहीं है। हमने बहुत दफा कहा है, जो आज का अदाता है, वह कल का दाता है। हमारे लिए तो सब-के-सब दाता राम ही है। वैसे ही सरकार अगर आज अनुकूल नहीं है, तो कल अनुकूल होनेवाली है।

प्रतिकूलता मिट गयी

कुछ लोग कहते हैं कि येलवाल-सम्मेलन के बाद कोई ताकत बढ़ी नहीं है। वे लोग मदद भी नहीं करते हैं और उन्होने अपने कामो की श्रद्धा भी छोड़ी नहीं है। परतु मैं आपको इतना ही कहना चाहता हूँ कि उन लोगो ने आपके लिए प्रेम की हरी झडी दिखा दी है। अब तुम बेखटके दौड सकते हो। उन लोगों ने तुम्हारे प्रेम का एंजिन या डिब्बा बनने की जिम्मेवारी नहीं उठायी है। लेकिन इतना कह

दिया कि अब जितनी जल्दी और जोरों के साथ एंजिन चलाना है, चलाओ। यह एक बहुत बडी चीज है। अब तक वे लाल झडी ही दिखाते थे। उसके बजाय अब हरी झडी दिखाते हैं। कितना फर्क हो गया ! पहले कितनी शकाएँ और संशय थे ! ग्रामदान के बाद उनकी सारी शकाएँ मिट गयी और वे आपके अनुकूल हो गये। अभी एक राजनीतिज्ञ ने कहा है कि अगर सारे हिन्दुस्तान मे ग्रामदान हो जाते हैं, तो सरकार और गॉव का अच्छा ही है, क्योंकि आज की सरकार को ३७ करोड़ लोगो से व्यवहार करना पड़ता है, फिर तो पॉच लाख गॉवों से ही व्यवहार करना होगा। राजनेता के नाते उन्होंने दिखा दिया कि सरकार को यह सहूलियत होती है, दफ्तर का काम भी आसान होता है, पत्र-व्यवहार का भी बहुत भार कम हो जाता है और 'स्टेट विल विदर अवे' (शासन-मुक्ति) की दिशा में प्रगति शुरू हो जाती है। जहॉ ग्रामदान हुआ, वहॉ शासन-मुक्ति का आरंभ हो गया। इसीलिए अब कोई प्रतिकूल नहीं हो रहा है, यह समझ लीजिये और वेखटके घूमिये।

सर्वोदय-पात्र का एक क्षेत्र चुनें

कार्यकर्ताओं के निर्वाह के बारे में मुझे यही कहना है कि वंगाल के लोग कभी ज्यादा पैसा लेते नहीं हैं। उसे वेतन का नाम देना भी गलत होगा। वे जो लेते हैं, वह तो भिक्षा ही है। इसके पहले निधि के आधार से चलता था, वह आधार भी टूट गया, इससे थोडी-सी मुश्किल बढ़ी है। सर्वोदय-पात्र का विचार रखा ही है, लेकिन उसका प्रचार कौन करे ? सेवक होंगे, तभी तो सर्वोदय-पात्र रखा जायेगा ? इसीलिए वह मामला कठिन हो जाता है। उस मामले को खत्म करने के लिए एक जगह पूरा काम करो, जिससे चित्तशुद्धि के लिए बडी मदद मिलेगी। सर्वोदय-पात्र किसी एक घने क्षेत्र में होना चाहिए। एक तालुके में कुछ सर्वोदय-पात्र हों, दूसरे तालुके में सौ-पचास सर्वोदय-पात्र हो, तीसरे तालुके मे पॉच-दस पात्र हों, इससे काम बनेगा नहीं। इधर-उधर जगह-जगह बिखरे हुए सर्वोदय-पात्र करने के बजाय किसी एक स्थान में करना चाहिए। एक कार्यकर्ता के लिए कम-से-कम २५०० सर्वोदय-पात्र तो चाहिए। इस तरह करेंगे, तो उससे कुछ परिणाम मिलेगा।

संपत्ति-दान तो खूब मिलनेवाला है। मुझे श्रद्धा है, लेकिन 'खग ही जाने खग की भाषा।' संपत्तिदाताओं मे से ही जब कोई दाता निकलेगा, जिसके दिल में संपत्तिदान की बात भरी होगी और जिसका हमारे काम पर और हमारे

कार्यकर्ताओं पर पूरा विश्वास होगा, ऐसा शख्स जब निकलेगा, तब यह काम होनेवाला है। सर्व-साधारण कार्यकर्ताओं से यह कार्य नहीं होता, तो हर्ज नहीं। अभी इस चीज की चाभी अपने हाथ में नहीं आयी है। लेकिन इसकी मुझे चिंता नहीं है। अभी भजन में गाया कि मुख्य बल प्रेम का ही बल है और हमें उसका ही आश्रय लेना चाहिए। बंगाल में सिवा प्रेम, भक्ति के काम होनेवाला है, ऐसा मैं नहीं मानता हूँ। संघटन से दूसरे प्रान्तों में काम हो सकता है, लेकिन यहाँ नहीं होगा। भक्ति की जो शक्ति अन्दर पड़ी है, उससे काम लेना चाहिए। उसे अगर महसूस नहीं करेंगे, तो आत्मशक्ति का भान नहीं है, ऐसा कहा जायगा। इसीलिए बंगाल के लोग निर्भय और निश्चिंत होकर काम करेंगे, तो काम जरूर होगा।

बाबा की राह न देखें

मैंने कह दिया है कि अगले साल गुजरात, राजस्थान होकर पंजाब, कश्मीर तक पहुँचना चाहता हूँ और कश्मीर से नीचे लौटते समय बंगाल भी आ सकता हूँ। लेकिन यह कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि नक्शे में जो रास्ते दिखाये गये हैं, उनके अलावा एक और रास्ता भी है। परमेश्वर जब कभी चाहे, तो वह वहाँ बुला सकता है। वहाँ पहुँचने के लिए न मोटर रोड की जरूरत है, न इंजिन की। बहुत-से दूसरे सेवक चले जा रहे हैं, तो मेरा भी कोई भरोसा नहीं है। परमेश्वर अगर बाबा को अपने रक्षण में बुला लेना चाहेगा, तो भी हम राजी हैं और उसके बच्चों की सेवा में लगायेगा, तो भी हम राजी हैं। हम दोनों ओर से राजी ही राजी हैं। इस शरीर का क्या भरोसा? आत्मा का ही भरोसा रखना चाहिए। इस तरह हमारी सब तरह से तैयारी है और आप ऐसा मानकर न चलें कि बाबा आये, तो ही काम शुरू होगा। लेकिन ऐसी तैयारी रखनी चाहिए कि बाबा जब आयेगा, तब ग्रामदान-भूदान का काम पूरा हो गया होगा और आप बाबा को कहेंगे कि अब तो भूदान-ग्रामदान हो चुके हैं, इसलिए आप बंगाली भजन सीखते चले जाइये। आपका कार्यक्रम हमने खतम कर लिया है। इसलिए मेरी आने की राह देखे बिना काम में लग जाइये।

पंढरपुर,
३१-५-'५८

: ए :

लोकतंत्र, 'महापुरुष' और 'बड़े पुरुष'*

[विनोबा]

जगन्नाथपुरी के मंदिर में हमे प्रवेश नहीं मिला, लेकिन उसके तीन साल बाद पढरपुर के मदिर में ईसाई और मुसलमानो के साथ हम जा सके। इसका गहरा असर हमारे मन पर हुआ है। हम समझते हैं कि यह कोई पढरपुर की महिमा नही, बल्कि विचारों में ही उतना परिवर्तन हो रहा है। विचार-परिवर्तन हमारी कृति से होता है, ऐसा नहीं। विश्वशक्ति काम कर रही है। सिर्फ हम यह समझें कि हम ईश्वर-प्रेरित हैं और हमे अपना सब काम 'ईश्वरार्पण' करना है। इससे ज्यादा जरूरत नहीं है।

ग्रामदान से केन्द्र-सरकार का बोझ कम

कुल दुनिया में और हिन्दुस्तान में भी कितनी दिशाओं मे सर्वोदय के लिए कितनी अनुकूलताएँ पैदा हो रही हैं, इसका लेखा-जोखा हो, तो सूक्ष्मदर्शियों को बहुत दीख पडेगा, लेकिन स्थूलदर्शियों को भी कुछ दिखेगा। अभी महालनोबिस ने कहा था कि ग्रामदान के अनेक लाभ होंगे, परतु केन्द्र-सरकार की दृष्टि से भी एक बहुत बडा होगा। अभी तक हमें ३७ करोड लोगों के लिए सोचना पडता और योजना बनानी पडती थी। उसके बदले इन पॉच लाख गॉवों की ही सोचनी पडेगी, क्योंकि गॉव एक इकाई बन जायेगा। इससे शासन के लिए बड़ी सहूलियत होगी। हमारा बहुत बड़ा भार उतर जायेगा। गॉव के लोग अपना-अपना काम देख लेगे, आदोलन करेंगे, तो ऊपरवालों को सिर्फ सयोजन करना पड़ेगा। आज तो उन्हे संयोजन और आयोजन, दोनों करना पडता है।

अब राजनैतिक दलो के ध्यान में आ गया है कि हिंदुस्तान का बेडा सिर्फ राजनीति से पार न होगा। हॉ, दुनिया को अभी इतना ग्रहण नहीं हो सका है कि राजनीति खत्म होकर लोकनीति ही आनी चाहिए। परतु फिर भी वे इस बात को समझे हैं कि सिर्फ राजनीति से काम नहीं बनेगा, उसकी पूर्ति मे लोकनीति चाहिए।

---

* उडीसा के कार्यकर्ताओं के बीच

पंढरपुर मंदिर-प्रवेश का महत्त्व

पंढरपुर के मंदिर-प्रवेश का सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से बड़ा मूल्य है। केरल में गुरुवायूर में हमें जाने नहीं दिया था, परंतु गोकर्ण महाबलेश्वर में प्रवेश मिला। लेकिन पंढरपुर की महिमा अपार है। महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक आदि प्रदेशों का वह श्रद्धा का केन्द्र है और महाराष्ट्र की तो यहां पूर्ण श्रद्धा है। यह एक जाग्रत स्थान है, यानी यह जनता का देव है। यहां की यात्रा का जितना आयोजन होता है, वह सारा जनता करती है। इसलिए इस घटना का धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व है।

परिस्थिति अहिंसा और सर्वोदय के अनुकूल

अभी एम० आर० ए० वाले मिलने आये थे। वे सोच रहे हैं कि जिस ढंग से दुनिया की राजनीति चल रही है, उसीमें दुनिया का निस्तार होगा। राजनीतिज्ञ भी ऐसा ही सोचते हैं। अभी क्रुश्चेव ने आणविक अस्त्रों के प्रयोग बंद करने की घोषणा की है। उसमें उनका राजनैतिक उद्देश्य भी हो सकता है। फिर भी वह घटना दिशा का दर्शन करा रही है—दुनिया की इच्छा और झुकाव की निदर्शक है। इधर तो इस प्रकार की घटनाएँ घट रही हैं और उधर जगह-जगह गृहयुद्ध चल रहे हैं। यूरोप, अमेरिका, एशिया, अफ्रिका आदि सर्वत्र असंतोष उभर रहा है। दोनों मिलकर अहिंसा और सर्वोदय की प्रक्रिया जल्दी होनेवाली है, उसे गति मिलनेवाली है, ऐसा सार हम इससे निकालते हैं।

लोकतंत्र और व्यक्ति-माहात्म्य

अब हम जरा उडीसा के बारे में सोचें। भारत में व्यक्तियों का आज तक जो असर रहा, वह कम नहीं हो रहा है। कुछ लोग सोचते हैं कि यह लोकतन्त्र के लिए दूषण है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। लोकतन्त्र तो काम करेगा ही। अपना शरीर काम करेगा, तो आखिर हाथ-पांव आदि से ही करेगा। बोलेगा, तो वाणी से ही बोलेगा। चिंतन करेगा, तो मस्तिष्क से ही करेगा। इसमें ऊँच नीच भेद नहीं। कुल अवयवों के लिए हमें पूरा प्रेम है। लेकिन हरएक की शक्ति और कार्य अलग-अलग है। लोकतंत्र कितना ही विकसित हो, तो भी उसके विचारों का प्रकाशन कौन करेगा?

'महापुरुषशाही' का भय नही

कोई तो महापुरुष ऐसे होंगे ही, जो सबकी इच्छा-शक्ति से सम्पन्न हों और जिन्हे अपनी अलग इच्छा-शक्ति न हो। जिन्हे अपनी इच्छा है, वे सबकी इच्छा से सम्पन्न होने की कितनी भी कोशिश करें, तो भी सफल नहीं हो सकते। इसलिए जिनकी अपनी इच्छा मिटी या कम-से-कम हुई हो, ऐसे महापुरुषों के मुख से बोलना, उनके दिमाग से सोचना, लोकतत्र के लिए किसी भी प्रकार से न्यूनता लानेवाला है, ऐसा सोचना गलत है। ऐसे महापुरुष कभी किसी पर सत्ता नहीं चलाते। इसलिए उनकी सत्ता जमेगी या वह भी एक 'शाही' या 'क्रेसी' बनेगी, यह मानना गलत है।

'महापुरुष' और 'बड़े पुरुष'

कहा जाता है कि बडे पेड़ के नीचे छोटे पेड नहीं बढ़ते, वैसे ही बड़े पुरुषों के नीचे छोटे पुरुष पनप नहीं सकते, क्योंकि सारा पोषण बडे पुरुष ही खा जाते हैं। किन्तु अभी गाधीजी पर लिखी एक किताब की प्रस्तावना मे मैंने लिखा—बडे पुरुष और महापुरुषों मे अन्तर है। बडे पुरुष बडे वृक्ष के जैसे होते है, जिनके नीचे छोटे वृक्ष बढ़ते नही, क्योंकि वे सारा पोषण खा जाते हैं। वे बडे हैं, तो स्वार्थ मे भी बडे होते हैं। परन्तु 'महापुरुष' गाय के जैसे वत्सल होते हैं। वे खुद घास, कडवी खाकर बच्चे को दूध पिलाते हैं। उनके आश्रय में बछड़े पनपते हैं, बढ़ते है। महापुरुषो को अहकार नहीं होता, इसलिए वे अपना पोषण दूसरों को देते हैं, दूसरों का पोषण लेते नहीं। यही कारण है कि महापुरुषो के आश्रय में जो छोटे थे, वे बडे बने, जो झूठे थे, वे सच्चे बने और जो कायर थे, वे निर्भय बने। इसीलिए शकराचार्य ने लिखा है कि मनुष्यों के तीन बहुत बड़े भाग्य हैं—(१) मानव-जन्म (मनुष्यत्वम्), (२) मुक्ति की लालसा (मुमुक्षुत्वम्) और (३) महापुरुष संश्रय:।

लोकतंत्र मे महापुरुष अत्यावश्यक

लोकतंत्र में महापुरुष हों ही नहीं, उनका किसी पर असर ही न हो, हरएक को एक वोट दिया है, इसलिए महापुरुषों की बुद्धि किसीको छुए ही नहीं, यह

संभव नहीं। हाँ, उसमें बड़े पुरुष बड़े नहीं माने जायेंगे, पर महापुरुष तो सर्वत्र दीख पड़ेंगे। लोकतंत्र कहेगा कि ऐसे महापुरुष पैदा हों, जो अपनी इच्छा छोड़कर समाज की इच्छा धारण करें। अर्थात् वे अपनी इच्छा से ही यह करेंगे। उसमें यह भय नहीं कि व्यक्ति दब जायगा, बल्कि व्यक्ति अपना स्वतंत्र इच्छा से ही समाज में लीन हो—यही लोकतंत्र का आदर्श है। वह कैसे बनता है, यही महापुरुष दिखाते हैं। उनका जीवन साधारण लोगों के जीवन के जैसा ही रहेगा इसलिए उनके रहते, उनकी महत्ता का उतना भान नहीं होगा, जितना उनके जाने पर होगा और उनसे कार्य भी उनके रहते जितना होता है, उससे ज्यादा उनके जाने पर होता है।

गोपबाबू की याद

मेरा स्वभाव भोला है, आध्यात्मिक श्रद्धा रखनेवाला है और इसमें कोई नुकसान नहीं है। मेरे मन में यह बात है कि जगन्नाथपुरी में हमें दर्शन नहीं मिला, इसका अधिक-से-अधिक दुःख गोपबाबू को हुआ होगा। यहां मुझे जो दर्शन मिला, कोई नहीं जान सकता कि इसमें उनकी आत्मा काम कर रही होगी। वैसे यहाँ पहले कुछ विरोध भी था, इस विषय पर लोग बंटे हुए थे। मैंने यही आग्रह रखा कि मुझे लिखित आमंत्रण चाहिए। मेरे घुसने की बात तो थी ही नहीं। फिर मुझे एक के बाद एक आमंत्रण मिले और सारे मन्दिर खुल गये। इसमें मेरा भोला मन मानता है कि गोपबाबू की वासना ने अवश्य कुछ काम किया। सिर्फ उसीने काम किया, ऐसा न मानने का कारण ईश्वर की योजना न जानना है।

विदेह होने पर महापुरुषों से अधिक काम

सारांश, मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि लोकतंत्र में महापुरुषों का महत्त्व घटनेवाला नहीं, बल्कि बढ़नेवाला ही है और बड़े पुरुषों का घटनेवाला है। महापुरुष अपनी स्वतंत्र इच्छा नहीं रखना चाहते हैं। फिर भी देह के साथ कुछ-न-कुछ इच्छा रहती ही है। इसलिए देह छूटने पर वे ज्यादा काम करते हैं। यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं। जब बापू थे, तब भी मैं काफी सावधान और जाग्रत

था, यह कबूल करना पडेगा। फिर भी आज मै सावधानता का प्रति क्षण जितना अनुभव करता हूँ, उतना उस समय नही था। उस समय लगता था कि बापू हैं, वे हमें सँभाल लेंगे। यद्यपि मैं उन्हें बहुत ज्यादा पूछकर तकलीफ नही देता था, फिर भी मौके पर चर्चा हो सकती थी, कभी अपनी गलती हो, तो वे बता सकते थे। लेकिन अब मेरा एक क्षण भी अजाग्रति का नहीं रहा है। मैंने माना कि उनकी आत्मा काम कर रही है। बुद्ध भगवान् की पहली जयती ही २५०० साल बाद मनायी जा रही है, तो उनका दुनिया पर कितना असर होनेवाला है, इस पर आप सोचिये। आज उनकी महत्ता और जरूरत अधिक महसूस होती है। इसका मतलब यह है कि उनके रहते वे जितना काम करते, उसमे आज अधिक काम कर रहे हैं। ये सारी ताकतें हमे महसूस होनी चाहिए।

महापुरुषों की तपोभूमि हवा में विद्यमान

बंगाल के कार्यकर्ता चर्चा कर रहे थे कि किस जिले में ताकत लगायी जाय। मैंने कहा 'यह तो आप अपने अनुभव से तय कीजिये।' जब 'नदिया' का नाम आया, तो मेरी ऑखों में ऑसू भर आये। मैने कहा, तुम लोग जानते नहीं, परन्तु मैं जानता हूँ कि वहॉ चैतन्य महाप्रभु के कारण पूर्ण प्रेम का आविष्कार हुआ था, वही काम करता है। विज्ञान ने बताया है कि जो बोली जाती है, वह ध्वनि सारी दुनिया में फैल जाती है। सिर्फ उसे ग्रहण करने की तरकीब (रेडियो) हो, तो हम यहॉ बैठे-बैठे ही दुनियाभर की आवाज सुन सकते हैं। जैसे वह ध्वनि हवा में मौजूद है, वैसे ही वह तपस्या, भक्ति भी आज हवा में मौजूद है। अगर हम उसे ग्रहण करें, तो उससे हमे उतनी ही स्पष्ट मदद मिल सकती है, जितनी कि हम गिर रहे हों और किसीने हमें उठाया हो।

उड़ीसा में घर-घर सर्वोदय-पात्र हो

इसलिए मैं मानता हूँ कि गोपबाबू के जाने के बाद, वे बहुत ज्यादा काम करेंगे। आप लोगो ने उनके स्मारक (सर्वोदय-पात्र) के बारे मे जो सोचा है, वह पूरा करके ही दूसरी बात सोचें। इस काम में हमारी कुल ताकत लगनी चाहिए। यह बुनियादी चीज है। उससे हमारे कार्यकर्तागण शारीरिक और मानसिक, दोनों अर्थ में परिपुष्ट बनेगे, क्योंकि वे किसी एक शख्स का नहीं खायेंगे। जनता का खायेंगे

याने रामजी का खायेंगे, उससे उनका जीवन पवित्र बनेगा और आप बहुत-से कार्यकर्ता खड़े कर सकेंगे। 'उड़ीसा में घर-घर में सर्वोदय-पात्र हो।'—इसका अर्थ समझाते हुए मैंने एक बार कहा था कि हर व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि मुझे सिर्फ अपने घर में सर्वोदय-पात्र रखना नहीं है, बल्कि मुझे सर्वोदय का पात्र बनना है। मै शान्तिसेना के लिए अपने घर मे सर्वोदय-पात्र रखता हूँ, तो मुझे किसी प्रकार की अशांति का कारण नही बनना है। ऐसी मूक भावना वहाँ होनी चाहिए। उसमें शक्ति प्रकट होनी चाहिए। उड़ीसा मे कम-से-कम दो हजार कार्यकर्ता चाहिए। यह तब तक नहीं होगा, जब तक उसकी कोई जन-आधारित योजना नहीं बनती। इसीलिए वहाँ सर्वोदय-पात्र की योजना होना चाहिए।

समाज-सेवकों की माता-सी परीक्षा करें

हम चाहते है कि हमारे सेवकों की समाज की ओर से परीक्षा भी होनी चाहिए। लेकिन यह इस ढग से हो, जैसे माँ अपने बच्चे की परीक्षा करती है, जिसमे परीक्षा भी होती है और वह पास भी होता जाता है। वह अपने बच्चे के लिए सद्‌भावना रखती है। मेरा लड़का आलसी है, इतना ही नहीं कहती है, बल्कि यह भी सोचती है कि उसे उद्योगी बनना चाहिए और अब थोड़ा बन भी रहा है। याने वह उद्योगी बने, इस भावना के साथ वह उसको परीक्षा करती है। उसी तरह जनता वात्सल्य-भाव से हमारी परीक्षा करे। सर्वोदय पात्र से जिनका जीवन चलेगा, वे दिन-ब-दिन निर्मल होते जायेंगे।

शिक्षित-अशिक्षितों के बीच की खाई पाटें

आज शिक्षित और अशिक्षित जनता के बीच जो फर्क पड़ गया है, उसे भी हमे मिटाना चाहिए। हमे दोनों में काम करना चाहिए और दोनों के बीच पुल बनाना चाहिए। इसलिए सर्वोदय-पात्र के साथ आप अपने अखबार को ऐसा रूप दीजिये कि हर शिक्षित चाहे कि वह उसके घर मे हो। घर-घर मे सर्वोदय-पात्र और अखबार पहुँचे, ऐसी योजना बनाइये।

अलग-अलग सोचना गलत

प्रश्न : स्त्रियाँ, मजदूर, विद्यार्थी आदि अलग-अलग वर्गों के लिए हमारे

पास अलग-अलग कार्यक्रम होना चाहिए। उसके बिना आंदोलन आगे बढ़ नहीं सकता।

विनोबाजी यह निरा भ्रम ही है। इस तरह अलग-अलग करके सोचना ठीक नहीं है। फिर भी हमारे काम मे उन सबके लिए चीजें पड़ी हैं, जो दिखायी भी जा सकती हैं।

अभी साहित्यिकों की सभा मे मैंने कहा था कि आप सर्वोदय-विचार को टाल ही नहीं सकते, क्योंकि वह इतना ही व्यापक है कि इसीसे वैफल्य मिटेगा। आज सर्वोदय को छोड़कर बाकी जीवन के सभी क्षेत्रों में वैफल्य ही वैफल्य है, कहीं भी साफल्य नहीं मालूम पड़ता। साहित्यिकों ने हर प्रदेश मे कहा कि आपकी बात ठीक है। इस तरह आपको साहित्यिकों की मदद प्राप्त करनी होगी।

विद्यार्थियों के लिए तो हमारे पास संदेश है ही। आज की तालीम में ज्ञान और कर्म का जो विरोध है, वह हमारी तालीम से मिटेगा।

मजदूरों को हम समझा सकते हैं कि आज आप लाचारी से शहरो में जाते हैं, परंतु गाँव-गाँव में ग्राम-स्वराज्य बनने पर यह नहीं रहेगा। फिर अगर आपको किसी काम के लिए शहर बुलाया जाय और आप भी जाना उचित समझें, तो अपनी शर्तों पर जा सकते हैं।

धर्म प्रचार करनेवालों से मैंने कहा कि आप धर्म का नाम लेकर दूसरे धर्मों से द्वेष ही करते हैं। लेकिन हमारा 'गीता-प्रवचन' सब धर्मवाले पढ़ते हैं। आप ही बताइये, हमने गीता का जितना प्रचार किया, उतना और किसने किया है? केरल मे चारों ईसाई चर्च ने कहा कि 'विनोबा ईसामसीह की राह पर चल रहा है, इसलिए उसके काम में हम सबको मदद देनी चाहिए।' मलबार में मुसलमानों ने हमसे कहा कि 'आप मालकियत मिटाने और बाँटकर खाने की तथा अपने परिश्रम की कमाई दूसरों को थोड़ा देने की जो बातें कहते हैं, कुरान में भी वे ही बातें हैं। मैंने कहा कि जैसे समुद्र मे सब नदियाँ और नाले लीन हो जाते हैं, उसे अपना मानते हैं, वैसे ही सभी दावा कर रहे हैं कि सर्वोदय हमारा है।

आध्यात्मिक शक्ति से लाभ उठाना ही लक्ष्य

किसीने मुझसे पूछा कि आपने सम्मेलन के लिए पंढरपुर ही क्यों चुना, इस तरह आप हर साल हिंदू-धर्म के ही तीर्थ-क्षेत्र क्यों चुनते हैं ? मैंने कहा कि यह गलत है कि हम हिन्दू-धर्म के क्षेत्र चुनते हैं। इसमें हिंदू-मुसलमान या ईसाई का खयाल ही नहीं है। अगर हमें फिलस्तीन में सम्मेलन करना होता, तो मैं कोशिश करता कि वह जेरुसलेम में हो। हर जगह जो पूर्वपुण्य है, उसका लाभ लेने का अगर किसीको हक है, तो हमें ही है। अगर अगले साल राजस्थान में सम्मेलन करना हो, तो मैं कहूँगा कि अजमेर में हो, क्योंकि हिंदुस्तान में सब मुसलमानों का वह श्रद्धा का स्थान है। मक्का के बाद अजमेर को ही माना जाता है। अगर मक्का न जा सके और अजमेर जाकर सबके साथ नमाज पढ़ ली, तो यात्रा पूरी हो जाती है, ऐसा माना जाता है। इसलिए हम जो कर रहे हैं, उसमें यान्त्रिक बात नहीं है। इसमें जिस जगह जो आध्यात्मिक शक्ति है, उसका लाभ उठाने की बात है।

भगवान् के दर्शन का लोभ बुरा नहीं

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि बाबा जान-बूझकर तीर्थक्षेत्र चुन लेता है, जिससे ज्यादा लोग सम्मेलन में आयें। लेकिन जब कि दुनिया में तरह-तरह के विज्ञापन चलते हैं, तब अगर भगवान के दर्शन का लोभ रखा जाता है, तो क्या बिगड़ता है ? लोग भगवान् के दर्शन के साथ तुम्हारा भी दर्शन करते हैं, तो क्या बिगड़ता है ? इस तरह जगह-जगह पड़ी हुई शक्तियों का लाभ उठाने की अक्ल हममें होनी चाहिए।

जहाँ जाओ, वहाँ के ढंग से समझाओ

सारांश, हमारे पास सब लोगों के लिए कार्यक्रम है। फिर भी इस तरह विषय-विभाग करना ठीक नहीं है। रचनात्मक कार्य के सभी विभाग हमारे कार्य के अंग हैं। अभी मैं एक ऐसे स्थान पर गया था, जहाँ के लोगों ने सहस्रकोटि नामों के जप का ढेर इकट्ठा किया था। मैंने उनसे कहा कि 'भगवान् के नाम के साथ-साथ प्रेम से बँटवारे का भी कार्यक्रम उठा लीजिये। आपको

हमारा काम उठा लेना चाहिए।' वह बात उनको अच्छी लगी। इस तरह जहाँ जाओ, उनके ढंग से समझाओ। यह सब सम्भव है, क्योंकि सर्वोदय का रूप व्यापक है।

पढरपुर,
१-६-'५८

: ऐ :

सौ दिन में गुजरात का किला तोड़ें*

[विनोबा]

मुझसे अभी सवाल पूछा गया कि 'शोर मचाकर चंद लोग आपकी सभा बद करते हैं, क्या अहिंसा में उसके लिए कोई उपाय नहीं है? अगर आप पुलिस की मदद लेते, तो आपकी सभा चल सकती थी।' मैंने जवाब दिया कि 'पुलिस की मदद से सर्वोदय की सभा नहीं चल सकती, भले ही और कोई सभा चल जाय।' लेकिन जब मुझसे पूछा गया कि 'क्या आपके पास इसके लिए कोई उपाय है?' तो मैंने सहज कहा कि 'मैं निरुपाय नहीं हूँ। अहिंसा मे उपाय होते हैं, पर वे ढूँढने पड़ते हैं।'

स्थैर्य की आवश्यकता

इस प्रश्न पर सोचते हुए मुझे लगा कि मैं 'लाऊडस्पीकर' का इस्तेमाल न करूँ, तो अच्छा होगा। प्रश्नकर्ता को यह विनोद मालूम हुआ। लेकिन मैं सोचता हूँ कि यह एक मोह ही है कि लाखों लोग एक साथ हमारी बात सुनें। अगर पॉच-पचास लोगों की सभा हो, तो उनके साथ हार्दिक बात हो सकती है। एक स्थान पर मैं चार-पॉच दिन ठहर भी सकता हूँ, जिससे कि लोगों से खुलकर बातें हो सकें। मैं इस विचार पर गंभीरता से सोच रहा हूँ। यह मैंने सिर्फ इसलिए कहा कि आध्यात्मिक क्षेत्र एक स्वतंत्र क्षेत्र है और उसमे कौनसी शक्तियाँ पडी हैं, कौन-सी तरकीबें निकल सकती हैं, इसकी खोज अभी तक नही हुई है। हमें समझना

---

* गुजरात के कार्यकर्ताओं के बीच।

चाहिए कि अपना कार्य वमाल से नहीं, स्थैर्य से होनेवाला है। स्थैर्य का मतलब आलस्य न निकाला जाय। स्थैर्य मे वहुत ज्यादा प्रवृत्ति भरी हुई रहती है, उसमें एक अडिग निश्चय और प्रज्ञा रहती है। इस वक्त दुनिया के जितने मसले है, वे प्रज्ञा के अभाव में उलझ रहे है। अगर कहीं से प्रज्ञा मिल जाय, तो मसले सुलझने मे देर नहीं होगी। प्रज्ञा प्राप्त नहीं हो रही है, इसलिए मुख्य वस्तु यह है कि प्रज्ञा प्राप्त हो। हम उसकी कोशिश करें और शाति की शक्तियाँ ढूँढ़े।

मनोभाव मे परिवर्तन

मैंने अभी अपना आगे का कार्यक्रम किसीकी सलाह लिये विना वनाया है। मुझे लगा कि अब तक मेरी जिस प्रकार से यात्रा हुई, एक-एक प्रात मे तीन-तीन, चार-चार हजार मील का चक्कर काटा, पानी की तलाश में खोदते रहे—यह सब प्रक्रिया जरूरी थी। उसके विना आगे की वात मुझे नहीं सूझती और हमे आत्म-विश्वास भी नहीं महसूस होता कि सर्वोदय में क्या हो सकता है? मेरी इच्छा तो थी कि उड़ीसा छोड़ने के वाद मैं मुक्त विहार करूँ, लेकिन वह नहीं हो सका, क्योंकि दक्षिण के प्रदेशों को वहुत कम समय देने से अन्याय होता। इसलिए मैंने दक्षिण में अधिक समय दिया। ऐसा करना ठीक ही हुआ और उसका परिणाम वहुत अच्छा आया। खासकर तमिल्नाड़, केरल और कुछ अंश मे कर्नाटक का मनोभाव वदल गया है और सर्वोदय के लिए जनता में वहुत अनुकूलता पैदा हो गयी है। उसका असर भारत की कम्युनिस्ट पार्टी पर भी पड़नेवाला है। मैं अविश्वास से काम नहीं कर सकता, विश्वास से ही कर सकता हूँ। चद लोगों के उद्देश्य कुछ भी हों, परतु जब अखिल भारतीय पार्टी कहती है कि हम शातिमय तरीकों से काम करेंगे, तो उसके ये शब्द ही उसे शाति के लिए प्रेरित करेंगे। अगर हम उन पर विश्वास नहीं करेंगे, तो हम ही अपने अविश्वास से उनके उन शब्दों को काटेंगे। इसका मतलब यह होगा कि हमने उनके पुराने तरीकों मे उन्हें मदद पहुँचायी। इसलिए विश्वास एक वड़ी शक्ति है, इसको पहचानें।

तीन महान् शक्तियाँ

वेदात, विज्ञान और विश्वास, ये तीन वड़ी शक्तियाँ है। सब धर्मों के जाल खतम करने की शक्ति वेदान्त मे है। जीवन-विषयक सब प्रकार की भ्रात धारणाएँ

खत्म करने की शक्ति विज्ञान में है और सब राजनैतिक पक्षों को खत्म करने की शक्ति विश्वास में है। मैंने केरल में यह सब देखा है। केळप्पन्‌जी कहते थे कि वहाँ की जनता सर्वोदय-विचार के लिए उत्सुक है। इसलिए अच्छा ही रहा कि मैंने दक्षिण के लिए समय दिया, लेकिन अब मैं मुक्त विहार करना चाहता हूँ। अब अगर मै देश के किसी एक कोने मे कैद हो जाऊँ, तो उससे मुझे देश का पूरा दर्शन नही होगा। इसलिए मैंने सोचा कि इसके आगे अपना कार्यक्रम मै खुद बनाऊँ और फिर लोगों के सामने रखूँ, जिसमें उनके लिए थोड़ा-सा फेरफार करने की गुंजाइश रखी जा सकती है। मुझे लगा कि अगले साल कश्मीर पहुँचना मेरे लिए लाभदायी होगा। इसका मतलब यह नहीं कि वहाँ की समस्या हल करने की सूरत मुझे मिलनेवाली है, लेकिन मैं चाहता हूँ कि मेरे निरीक्षण मे कोई कमी न रह जाय। मैं जरा देखूँ, तो मुझे सम्यक् दृष्टि का लाभ होगा। वैसे काम तो मैं भूदान, ग्रामदान का ही करूँगा, परंतु उस प्रदेश में मई तक पहुँचना ठीक होगा, यह सोच-कर मैंने अपना आगे का कार्यक्रम बनाया है। मैंने तय किया है कि गुजरात के लिए सौ दिन और सात सौ मील दिये जायँ। इसमें आप चाहे जो कार्यक्रम तय कर सकते हैं।

बम्बई न जाने का विचार

इस निर्णय से क्या लाभ होगा, बम्बई जाने से ज्यादा लाभ होता, इस तरह से तराजू मे तौलकर गुरु-लघु देखने से धर्म-निर्णय नहीं होता है, ऐसा शास्त्रों में कहा है। कुछ लोग कहते हैं कि बम्बई न जाने से मै बहुत खोता हूँ। लेकिन सोचना चाहिए कि जैसे मेरे वहाँ जाने से कुछ लाभ होते, वैसे न जाने से भी होंगे। जैसे उपस्थिति में होते, वैसे अनुपस्थिति मे होंगे। जैसे कर्मयोग से होते, वैसे ध्यान-योग से भी होंगे। मुझे बम्बई जाने की तीव्र इच्छा इसीलिए होती है कि वहाँ पर हमारे जो तीस-चालीस पागल कार्यकर्ता काम कर रहे हैं, उनकी संगति में रह सकूँ। बम्बई जैसे व्यवहारज्ञानी (वर्ल्डली वाईज) शहर मे सब धर्मों के चंद लोग सतत काम कर रहे हैं, इसका मुझ पर बहुत असर हुआ है। उन्हे वहाँ पर तो पागल ही कहा जाता होगा। उन्हींका मुझे आकर्षण है। अन्यथा बम्बई जैसा गढ़, जहाँ पर मालकियत बिलकुल घनीभूत होकर बैठी है, वहाँ अगर उसे ढीली होना है, तो

कौन रोकेगा ? क्या मेरे बम्बई जाने से, उन पर आक्रमण करने से वह ढीली होगी ? मुझसे कुछ बड़े व्यापारियों ने कहा है कि आपने "व्यापारियों को आवाहन" में जो बातें कही है, उनसे बड़ी स्फूर्ति मिलती है। वे बातें आप ही कह सकते है। इस हालत मे उन्हे कौन रोक रहा है ? गाधीजी की सिखावन के अनुसार वे 'ट्रस्टी' क्यों नहीं बन रहे है ? इसलिए मैं बबई जाऊँ और शतरंज की भाषा में उन्हें किश्त लगाऊँ, तो ठीक नहीं होगा। अगर उन्हे किश्त लग सकती है, तो ग्रामदान के काम की लग सकती है। मुझे आशा है कि मेरे बम्बई के पागल भाई इसे समझ सकेंगे और यदि वे नहीं समझ सकते है, तो मैं उनसे सिफारिश करूंगा कि जरा अरविंद-आश्रम मे कुछ दिन बितायें, तो पता चलेगा कि किस तरह अतिमानस काम कर रहा है। मुझे उसकी श्रद्धा पहले से ही प्राप्त है। मैंने कई दफा कहा है कि इस विज्ञान के युग में मन से ऊपर उठना चाहिए। इसलिए मै आशा करता हूँ कि मै बबई नहीं जा रहा हू, इसका आपको सदमा नहीं होगा।

गुजरात की परम्परा

गुजरात की जो आध्यात्मिक परपरा है, वह अद्भुत ही है। मेरी समझ में नहीं आता है कि इस परपरा का अनुभव स्वय गुजरात को क्यों नहीं होता होगा ? कहाँ के वल्लभाचार्य, लेकिन वे गुजरात गये और उन्होंने वहाँ पर अपना सप्रदाय स्थापन किया। द्वारका में शकराचार्य ने मठ स्थापन किया, तब से आज तक शाकर-विचार की परपरा वहाँ चलती है। जैन मुनि हेमचन्द्र, स्वामीनारायण आदि सबका गुजरात पर बहुत असर है। इस सबका मतलब यह था कि गुजरात में जो-जो आध्यात्मिक शक्ति पहुंची, उस शक्ति को उसने फौरन चूस लिया। आध्यात्मिक विचार के लिए ग्रहणशीलता एक बहुत बड़ी शक्ति है। गाधीजी के ग्राम में जाकर मैं कौन लम्बे व्याख्यान देनेवाला हूँ और कौनसा नया विचार रखनेवाला हूँ। जब एक भाई ने कहा कि आपके 'शिक्षण-विचार' का अनुवाद गुजराती मे होना चाहिए, तो मैंने कहा कि यद्यपि मैने उस सम्बन्ध में कुछ प्रयोग किये हैं और उसमे कुछ अनुभव की बाते लिखी है, इसलिए उसका गुजराती अनुवाद होता है तो ठीक ही है, फिर भी गुजरात को मैं कौनसा नया विचार देनेवाला हूँ ? मैंने यहीं से तो पाया है। ऐसी कोई बात मेरे पास नहीं है, जो कि गुजरात में नहीं पहुंची है। गुजरात

जाने में मेरी भावना पंढरपुर जाने के जैसी याने यात्रा की भावना है। इसलिए मैंने गुजरात को सौ दिन दिये, याने मैं बिलकुल शतायुषी हो गया। कुछ लोगों को इसका दु ख है कि मैंने पूना भी छोड़ा है और वम्वई भी छोड़ी है। "लोभ न छोडा, झूठ न छोडा, सत्य वचन क्यों छोड दिया ?" मै उनसे कहता हूँ कि अपनी ६३ साल की जिन्दगी के ५५ साल मैंने बम्वई राज्य मे ही बिताये हैं। अब आखिर के आठ साल से ही तो मै बाहर घूम रहा हूँ। इसलिए वास्तव मे मेरी यहाँ आने की कोई जरूरत ही नही थी। मैंने अपना साहित्य भी मराठी में लिखा, इसलिए महाराष्ट्र को अव कुछ नया देने को नहीं रह गया है। महाराष्ट्र में छह महीने विताने के खयाल से मैंने २३ सितम्बर को गुजरात मे प्रवेश करने की बात सोची और फिर १ जनवरी को राजस्थान-प्रवेश का सोचा। बीच के दिन गिने, तो सौ निकले, जो गुजरात के लिए परिपूर्ण होने चाहिए। मेरा मानना है कि गुजरात में एक बड़ी शक्ति आज भी मौजूद है।

सार ग्रहण करें

इसलिए आप लोग आपस-आपस मे ज्यादा लडा न करें और मेरे जो तरह-तरह के विचार होते हैं, उन पर झगड़ा करने की अपेक्षा उन्हे छोड दिया करें। शंकराचार्य ने कहा है कि हजारश्रुति भी कहे कि अग्नि अनुष्ण है, तो भी उसे प्रमाण नहीं मानना चाहिए। जव वे वेद के वारे मे भी ऐसा कहते हैं, तो मेरे विचारों में से तो आप वहुत कुछ छोड सकते हैं। सारे ऊपर के मतभेदों के छिलके निकालकर ... दो और अन्दर का भाग ग्रहण करो, जिससे आपकी आज जो मानसिक एकता है, वह दृढ़ होगी। मैं मानता हूँ कि गाधीजी का सार-रूप अंश मेरे मन में है। लेकिन जब मैं कहता हूँ कि उनके कहने मे भी कुछ असार था, उसे छोड देना चाहिए, तव तो मेरे विचार में असार होगा ही, जिसे आपको छोडना होगा। अगर उनका आप ऊपर का एक छिलका हटाते, तो मेरे दो हटाओ, तव आपको पता चलेगा कि अन्दर जो पडा है, वह उनसे लेश मात्र भी भिन्न नही है। गाधीजी के रहते और उनके जीते-जी मैं जितना सावधान था, उससे आज वहुत ज्यादा सावधान हूँ। उस वक्त तो मुझे लगता था कि वापू हैं, हमारी कहीं गलती होगी, तो वे दुरुस्त करेंगे। लेकिन अव गलती करने की गुंजाइश नहीं है।

उन्होंने जो कहा, उस पर सोचने में आज मुझे उनसे जितनी मदद मिलती है, उतनी दूसरे किसीसे नहीं मिलती है। इसमें मैं उनका नाम नहीं लेता हूं, क्योंकि नाम लेने से मैं उनके नाम को दूषित ही करूंगा, भूषित नहीं। जैसे बुद्ध भगवान् के, ईसा के, पैगम्बर के अनुयायियों ने उनके नामों को दूषित ही किया, भूषित नहीं। इसलिए मैं अपने विचार कह कर रखता हूं। उसी तरह से आप उन्हें ग्रहण करें। उसमें यह न सोचिए कि इसका गांधीजी के विचार के साथ कितना ताल्लुक है? इस तरह मैंने आपसे अभी तीन बातें कहीं

(१) विचार को छोड़कर भाव को ग्रहण करो।

(२) ऊपर के दो छिलके हटाओ।

(३) ऊपर के छिलके हटाने पर आपको मालूम होगा कि अन्दर का सार बापू के विचार के जैसा ही है, परन्तु उसे बापू के विचार समझकर ग्रहण मत करो। विनोबा का विचार समझकर ही ग्रहण करो।

किला टूटना आवश्यक

प्रश्न आपने कहा था कि गुजराज में किला टूटना चाहिए, तो उसके लिए क्या आपको और समय नहीं देना चाहिए?

विनोबाजी मैं तो मानता हूं कि सौ दिन के अन्दर किला टूटना चाहिए। जितने कम दिन रखेंगे, उतना किला जल्दी टूटेगा। अगर हम यह तय करेंगे कि वह सौ साल में टूटेगा, तो उसे टूटने के लिए हजार साल लगेंगे। लेकिन जब हम कहते हैं कि वह सौ दिन में टूटेगा, तब वह पचास दिन में टूटेगा। याने इसमें एक 'अर्जेन्सी' (तीव्रता) महसूस करने की बात है।

अस्पृश्यता का किला

मैंने सुना कि गुजरात में आज भी हरिजनों को कुँआ पर पानी भरने नहीं देते हैं। मैंने उनका बचाव करने की कोशिश करते हुए कहा कि यह शायद इसलिए होता होगा कि गुजरात में किसानों ने भी मासाहार छोड़ा है। मासाहार करनेवालों के प्रति कुछ मानसिक नफरत पैदा हुई होगी। लेकिन जब मुझसे कहा गया कि मुसलमानों को तो पानी भरने देते हैं, तब मेरी यह बात टूट गयी। मैंने और

वचाव करते हुए कहा कि शायद मेहतरो के धन्धे की अमगलता महसूस होने के कारण उन्हे पानी नहीं भरने देते होंगे। तब मुझे जवाव मिला कि मेहतरों को ही नही, वल्कि सव हरिजनों को पानी नहीं भरने देते हैं। मुझे लगता है कि गाधीजी के प्रात में अस्पृश्यता का किला तो फौरन टूटना चाहिए।

मिलवालों का किला

दूसरा किला मिलवालों का है। जब हम सावरमती में रहते थे, तब वापू कहा करते थे कि नदी के उस किनारे पर जो मिलें आज दिखाई देती हैं, उधर हमारा मोर्चा लगना चाहिए। उससे हमे स्मरण रहता है कि हमारा शत्रु कौन है? आश्रम के नजदीक ही स्मशान था, जिसकी ओर इशारा करते हुए वे कहते थे कि कोई मनुष्य स्मशान के निकट वैठकर भोजन मे स्वाद का अनुभव नहीं कर सकता, इसलिए उससे हमे अस्वाद की तालीम मिलती है और परलोक का खयाल रहता है। आश्रम से एक जेल भी दिखाई देती थी, जिसकी ओर इशारा करते हुए वे कहते थे कि वह तो हमारा महल है। मैं सोचता हूँ कि गाधीजी के प्रात में स्वावलवी खादी नहीं वनेगी, तो किस प्रात मे वनेगी। वहाँ मिले चलती हैं, तो भी यह क्यों नहीं होना चाहिए कि मिलवाले, उनके घरवाले और मजदूर स्वयं खादी पहनें और अपना माल वेचने के लिए ईरान या अरवस्तान का वाजार ढूँढें। मैंने वीडी के ऐसे कई व्यापारी देखे हैं, जो स्वय वीडी नहीं पीते हैं और चाहते हैं कि उसके वच्चे भी बीडी न पीयें। इसलिए गुजरात के व्यापारी खुश होंगे, अगर उनका माल गुजरात मे न विके और वाहर विके। गुजरात मे गाधीजी का विचार वहुत फैला हुआ है, इसलिए मालकियत का किला भी टूट सकता है। लेकिन उसे निगेटिव (निषेधात्मक) पद्धति से मत रखो, पॉझिटिव (विधायक) पद्धति से रखो। अलग-अलग रहने मे फायदा है या एक होने में, उत्पादन वढाने में क्या लाभदायी होगा, इस तरह वात रखोगे, तो गुजरात का किसान सोच सकता है कि हम एक होगे, मालकियत नही रखेंगे और सब मिल-कर काम करेंगे, ग्राम-स्वराज्य वनायेगे। यह सब इस युग के लिए अनिवार्य है।

पुरानी तालीम का किला

गुजरात में और एक किला टूट सकता है। आज तालीम के बारे में तरह-

तरह की शिकायतें आती है। सरकार जिस तरह की तालीम चलाना चाहती है, अंग्रेजी पढ़ाने पर जो जोर देती है, वह सब गुजरात के लोगों को पसन्द नहीं है। लेकिन दूसरे प्रांतों को देखकर और ऊपर की आज्ञा का पालन करते हुए वे भी लाचार बनकर बच्चों को 'डी ओ जी' 'डॉग' पढ़ाना शुरू कर देते हैं। अगर ग्रामदान होंगे, तो गाँव में ग्राम की योजना चल सकती है, इसलिए शिक्षण भी हम अपने हाथ में रख सकते हैं। फिर गाँव-गाँव में अपनी योजना के अनुसार शालाएँ चला सकते हैं। शिक्षण के भिन्न-भिन्न प्रयोग चला सकते हैं। इस तरह ग्रामदान के आधार से यह भी किला टूट सकता है। मैंने सरकार से भी कहा है कि आप अपने विभागों की नौकरियों के लिए अलग से परीक्षा लीजिये, जिससे कि डिगरी की जरूरत नहीं रहेगी। मेरा खयाल है कि सरकार भी इसे पसन्द करती है। इस हालत में खानगी शिक्षण-संस्थाएँ बहुत अच्छी तरह से चल सकती हैं। व्यापार में और खेती में तो उसमें कोई रुकावट नहीं आनेवाली है। गुजराती लोग बहुत ज्यादा सरकारी नौकरी के पीछे पड़ते भी नहीं हैं। परन्तु जो नौकरी करना चाहते हैं, उनके लिए भी मेरे इस सुझाव से कोई रुकावट नहीं रहेगी। इसलिए मेरा मानना है कि शिक्षण के मामले में गुजरात बहुत कुछ कर सकता है। इस तरह रचनात्मक दृष्टि से देखोगे, तो आपको पता चलेगा कि किस तरह किले टूट सकते हैं।

प्रश्न : आप पारडी नहीं जा रहे हैं, इसका हमें बहुत दुःख होता है और यद्यपि आपका कश्मीर जाना अच्छा है, फिर भी डर लगता है कि उससे भूमि के मसले पर कम ध्यान रहेगा और दूसरे मसले सामने आयेंगे।

विनोबाजी : सबको जरूरत महसूस हो, तो मैं पारडी जा भी सकता हूँ। मैंने कहा है कि कश्मीर जा रहा हूँ, तो मसले हल करने के लिए नहीं, बल्कि अपनी आँखों से वहाँ की हालत देखने के लिए और हिन्दुस्तान की यात्रा पूरी करने के लिए जा रहा हूँ। मैं जरा भी नहीं चाहता कि भूमि के मसले का जोर कम हो। इसलिए मैं वहाँ भी काम तो भूदान का ही करनेवाला हूँ।

पंढरपुर,
१-६-'५८

स्त्रियों के तीन उद्धारक*

[विनोबा]

हिन्दुस्तान मे स्त्रियों का अपना एक स्थान है और एक इतिहास भी है। यों तो स्त्री-पुरुष का इतिहास सम्मिलित ही होता है, फिर भी स्त्रियों का एक इतिहास है। प्राचीन काल से हिंदुस्तान में संस्कारों की परम्परा चली आयी है और वह कम से कम दस हजार साल पुरानी तो है ही। उसका इतिहास भी मौजूद है। जिस तरह लिखित इतिहास मिलते हैं, वैसा लिखित इतिहास नहीं है। लेकिन इससे वेहतर तरीके से लिखा हुआ इतिहास मिलता है। याने सहस्र ग्रन्थों में उसकी झलक मिलती है।

स्त्रियों के तीन उद्धारक

स्त्रियों के उद्धार के लिए हिंदुस्तान मे जो प्रयत्न हुए, उनमें प्राचीन काल में भगवान् श्रीकृष्ण और महावीर, ये दो नाम आते हैं और अर्वाचीन काल मे गाधीजी का नाम आता है। वीच का सारा काल विलकुल ही शुष्क गया, ऐसा तो नहीं है। उसका भी एक इतिहास है। लेकिन ये तीन नाम भुलाए नहीं जा सकते।

भगवान् श्रीकृष्ण

भगवान् श्रीकृष्ण ने स्त्रियो के लिए जो कुछ किया, उसकी गुणगाथाएँ हिदुस्तान भर में पॉच हजार साल से लगातार गायी जा रही हैं। जव द्रौपदी पर एक प्रसग आया, सभा में उसका वस्त्रापहरण हो रहा था, तव श्रीकृष्ण का स्मरण द्रौपदी ने किया। इसके तीन श्लोक हैं। वे तीन श्लोक ससार-समुद्र से मनुष्य को पार करने के लिए समर्थ हैं, ऐसा माना जाता है। गाधीजी ने आश्रम मे जो प्रार्थना चलायी, उसमें स्त्रियों के लिए ये श्लोक वोले जाते हैं। भगवान् कृष्ण का नाम लेकर द्रौपदी प्रार्थना कर रही थी कि "जव मेरे पति हार गये, दूसरे भाई भी देखते रहे, भीष्म-द्रोण भी हार गये, तो इस वक्त तेरे सिवा मेरी रक्षा और कौन करेगा ?" उस श्लोक मे

---

*'कस्तूरवा ट्रस्ट' की वहनों के वीच।

भगवान् के जो विशेष संबोधन आये है, उनमें एक 'गोपीजनप्रिय कृष्ण' है। हे कृष्ण, तू, जो कि गोपीजनों का प्रिय है, जिस पर गोपियों का प्यार था और जिसका गोपियों पर प्यार था, वह तू, मेरे बचाव के लिए आ जा" ऐसी प्रार्थना द्रोपदी ने की। सारा भागवत इसी एक कथा पर खड़ा है। श्रीकृष्ण का गोपियों पर जो प्रेम था, स्त्रियों के लिए मन मे जो इज्जत थी और बंधु के नाते स्त्रियों के लिए वे जो काम करते थे, वह हिंदुस्तान के इतिहास मे बिल्कुल ही अद्वितीय है। हिंदुस्तान मे श्रीकृष्ण-गाथा से मधुर गाथा सुनने को या पढ़ने को नहीं मिली।

महावीर

महावीर का इतिहास एक अद्भुत इतिहास है। जिस जमाने मे महावीर थे, उसके चालीस साल बाद गौतम बुद्ध अवतरित हुए। ऐसा ही मान लीजिये कि जितना लोकमान्य और आज की पीढ़ी मे अन्तर है, उतना ही महावीर और बुद्ध के जमाने मे था। दोनों का जन्म एक ही प्रदेश बिहार मे हुआ। इसलिए हो सकता है कि महावीरस्वामी को बुद्ध ने देखा हो। महावीर वृद्ध होंगे और बुद्ध जवान होंगे, ऐसा मान सकते हैं और वैसे प्रमाण भी है। महावीर-सम्प्रदाय मे स्त्री-पुरुष मे किसी प्रकार का भेद नहीं किया गया है। पुरुषों को जितने अधिकार दिये गये, वे सब अधिकार स्त्रियों को भी दिये गये थे। मै इन मामूली अधिकारों की बात नहीं कहता हूँ, जैसा कि इन दिनों होता है और जिनकी चर्चा आजकल बहुत चलती है। उस समय वैसे अधिकार प्राप्त करने की आवश्यकता भी महसूस नहीं हुई होगी। मै तो आध्यात्मिक अधिकारों की बात कर रहा हूँ। पुरुषों को जितने आध्यात्मिक अधिकार मिलते है, वे सब स्त्रियों के भी हो सकते है। इन आध्यात्मिक अधिकारो मे महावीर ने कोई भेद-बुद्धि नहीं रखी। परिणामस्वरूप उनके शिष्यो में श्रमणो से ज्यादा श्रमणियों थीं। वह प्रथा आज तक जैन-धर्म में चली आयी है। आज भी जैन-स्त्रियाँ 'सन्यासिनी' होती है। जैन-धर्म मे यह नियम है कि संन्यासी अकेले नहीं घूम सकते हैं। दो से ज्यादा भी नहीं घूम सकते है और दो से कम भी नहीं—ऐसा सन्यासी और सन्यासिनियो के लिए नियम है। तदनुसार दो-दो साध्वियां हिन्दुस्तान मे घूमती हुई दीखती है।

महावीर के चालीस ही साल बाद गौतम बुद्ध हुए, जिन्होंने स्त्रियो को संन्यास देना उचित नहीं माना। स्त्रियो को सन्यास देने मे धर्म-मर्यादा नहीं रहेगी, ऐसा

अंदेशा उनको था। एक दिन उनका शिष्य आनन्द एक बहन को ले आया और बुद्ध भगवान् के सामने उसे उपस्थित किया और बुद्ध भगवान् से कहा कि "यह बहन आपके उपदेश के लिए सर्वथा पात्र है, ऐसा मैंने देख लिया है। आपका उपदेश, अर्थात् संन्यास का उपदेश, इसे मिलना चाहिए।" तब बुद्ध भगवान् ने उसे दीक्षा दी और कहा कि "हे आनन्द, तेरे आग्रह और प्रेम के कारण यह काम कर रहा हूँ। लेकिन इससे अपने सप्रदाय के लिए एक बड़ा खतरा मैंने उठा लिया है।" इस वाक्य से बुद्ध को जिस खतरे का अन्देशा था, वह पाया जाता है, यद्यपि बौद्ध-धर्म का इतिहास पराक्रमशाली है, उसमें दोष होते हुए भी वह देश के लिए अभिमान रखने लायक है। लेकिन जो डर बुद्ध को था, वह महावीर को नहीं था, यह देखकर आश्चर्य होता है। महावीर निडर दीख पड़ते हैं। इसका मेरे मन पर बहुत असर है। इसीलिए मुझे महावीर के प्रति विशेष आकर्षण है। बुद्ध की महिमा भी बहुत है। सारा दुनिया में उनकी करुणा की भावना फैल रही है। इसीलिए उनके व्यक्तित्व में किसी प्रकार की न्यूनता होगी, ऐसा मैं नहीं मानता हूँ। महापुरुषो की भिन्न-भिन्न वृत्तियाँ होती हैं। लेकिन कहना पडेगा कि गौतम बुद्ध को व्यावहारिक भूमिका छू सकी और महावीर को व्यावहारिक भूमिका छू नहीं सकी। उन्होंने स्त्री-पुरुष मे तत्त्वत भेद नहीं रखा। वे इतने दृढ़प्रतिज्ञ रहे कि मेरे मन में उनके लिए एक विशेष ही आदर है। इसीमें उनकी महावीरता है।

रामकृष्ण परमहंस

रामकृष्ण परमहस के सप्रदाय में स्त्री सिर्फ एक ही थी और वह थी श्री शारदा देवी, जो रामकृष्ण परमहंस की पत्नी थी और नाममात्र की पत्नी थी। वैसे तो वह उनकी माता ही हो गयी थी तथा सप्रदाय के सभी भाइयों के लिए वह मातृस्थान में ही थी। फिर भी उनके सिवा और किसी स्त्री को दीक्षा नहीं दी गयी थी। महावीर स्वामी के बाद २५०० साल बीत गये, लेकिन हिम्मत नहीं हो सकती थी कि बहनों को दीक्षा दी जाय। मैंने सुना कि ४ साल पहले रामकृष्ण परमहंस-मठ में स्त्रियों को दीक्षा दी जाय, ऐसा उन्होंने तय किया। स्त्री और पुरुषों का आश्रम अलग रखा जाय, वह अलग बात है, लेकिन अब तक स्त्रियों को दीक्षा ही नहीं मिलती थी, वह अब मिल रही है। इस पर से अन्दाज लगता है कि महावीर ने २५०० साल पहले स्त्रियों को दीक्षा देने में कितना बड़ा पराक्रम किया।

श्रीकृष्ण और महावीर की तुलना

श्रीकृष्ण ने जो काम किया, वह संन्यास-दीक्षा का नहीं है, बल्कि यह है कि स्त्री और पुरुष भक्ति-भावना मे समान रहे और अनासक्ति तथा निर्लेपभाव से आपस में किसी प्रकार का संकोच न रखें, यह जीवन का एक बुनियादी विचार है। बहनों को सन्यास का अधिकार मिल जायगा। इसलिए बहुत ज्यादा स्त्रियाँ सन्यास ले लेगी, ऐसा कुछ होनेवाला नहीं है। इस हालत में कम ही बहनें वैसा संन्यास लेगी, यह अलग बात है। सन्यास का समान अधिकार लेने मे एक तरह से खतरा है। परन्तु सर्वसामान्य गृहस्थाश्रम मे भी संकोच न रहे, एक-दूसरे के साथ भाई-बहन की तरह मिलते रहे, यह श्रीकृष्ण ने बताया। यह जीवन की दृष्टि से श्रीकृष्ण ने किया है, लेकिन तत्त्वविचार की दृष्टि से मुझे महावीरस्वामी का इतिहास अद्वितीय लगता है।

महात्मा गांधी

हमारे यहाँ किसीको शायद ही ऐसा कोई विचार सूझता हो, जिसके लिए आधारभूत चिंतन ग्रन्थों मे न मिले। हमारे यहा ब्रह्मचिन्तन बहुत हुआ है, इसलिए नये विचार के लिए आधार न मिले, ऐसा नहीं है। परन्तु एक व्यावहारिक विचार के तौर पर, यद्यपि शास्त्र मे आधार था, तो भी वह चीज बनती नहीं थी। गाधीजी ने उसे शुरू किया था और वह यह कि गृहस्थाश्रम मे भी लोग वानप्रस्थाश्रम के तौर पर रह सकते है। कोशिश उनकी वानप्रस्थाश्रम की ही रहेगी। जब गृहस्थाश्रम मे रहते है, तब ऐसी प्रतिज्ञा में बँधे हुए नही रहते हैं। प्रजोत्पादन करते है। अगर वासना हुई, तो एक-दूसरे के प्रति वफादार रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। सन्तानोत्पादन की जिम्मेदारी उठा लेते है। परन्तु धीरे-धीरे इस वासना को छोड़कर गृहस्थाश्रम मे वानप्रस्थ की वृत्ति से रह सकते है। जितना जल्दी गृहस्थाश्रम से छूटा जा सके, उतना अच्छा। शायद शादी के बाद एक भी संतान न हो और छूट जाय, तो भी अच्छा। एक सन्तान के बाद छूट जाय, तो भी अच्छा। जितना जल्दी छूट सकें, उतना अच्छा। यह बात बहुत चलेगी, ऐसा नहीं है। ऐसी चीजें चलने के लिए कुछ वातावरण चाहिए। हम ऐसा वातावरण पैदा नहीं कर सके है।

भोगों का प्राबल्य

यद्यपि गाधीजी ने सादगी का आग्रह रखा, तथापि आजकल भोगों के साधन

जोरों से चल और बढ़ रहे हैं। स्वराज्य के दस साल में कुछ फर्क हुआ है, जिसका हम गौरव कर सकते हैं, लेकिन कुछ परिवर्तन ऐसे भी हुए हैं, जिनके लिए रोना आता है। भोग-विलास के साधन बढ़ रहे हैं। भोग की प्रवृत्ति मे गलती हो रही है, ऐसा महसूस भी नहीं होता है। महसूस होता, तब तो कुछ निस्तार था। लेकिन आजकल तो संतति-नियमन की बात का निर्लज्जता से प्रचार हो रहा है। जो पुरुष उसका प्रचार करते हैं, उनमें बहुत बड़े दयालु, करुणावान् पुरुष भी हैं, यह मैं जानता हूँ। उनको ऐसा प्रचार करने में व्यावहारिकता लगती है। लेकिन उनकी 'करुणा' गुजराती के 'उपरछल्ली' याने ऊपर-ऊपर की, गहरी नहीं, ऐसी है। वह नुकसानदेह है। वह देश की आत्म-शक्ति को क्षीण करनेवाली साबित हो सकती है। फ्रास में ऐसा ही हुआ है। पुरुप की हीनता वहाँ दीख पडती है और पुरुषार्थ-शक्ति क्षीण हो रही है। क्योंकि सारा वातावरण ही प्रतिकूल दीखता है। इसलिए गाधी-विचार फैला हुआ नहीं दिखाई पडता है। फिर भी वह विचार मिटेगा नहीं, क्योंकि एक नयी राह मिल गयी है। एक स्वतन्त्र क्षेत्र गृहस्थों के लिए मिल जाता है। गृहस्थाश्रम में होते हुए भी पहले ही दिन से कोशिश करनेवाले निकलेंगे और उस कोशिश के बावजूद सन्तान हो जाय, तो वे पराक्रमी होंगे। इस तरह गाधीजी ने बताया कि गृहस्थाश्रम में वानप्रस्थ-वृत्ति चले।

शराब की दूकानों पर धरना

गाधीजी ने स्त्रियों की सारी शक्ति खोल दी। अहिंसारूपी शस्त्र सामने आया। वह शस्त्र पुरुष जितना इस्तेमाल कर सकते हैं, उससे ज्यादा स्त्रियाँ इस्तेमाल कर सकती हैं। स्त्रियो को अब अपनी बेडियाँ तोड़कर बाहर आना चाहिए।

पचीस साल पहले की बात है, चर्चा चल रही थी कि शराब की दूकान पर पिकेटिंग करने का क्या इन्तजाम किया जाय। किसीने कुछ सुझाया, तो किसीने कुछ। गाधीजी ने सुझाया कि यह काम स्त्रियों का होना चाहिए। लोग सुनते ही रह गये कि गाधीजी क्या बोल गये। जहाँ बिलकुल अनीतिमान् लोग जाते हैं और सब प्रकार का बुरा बर्ताव चलता है, ऐसे लोगों के बीच स्त्रियाँ क्या करेंगी? लेकिन गाधीजी ने कहा कि वहाँ पर स्त्रियाँ ही काम करेंगी। जो सबसे गिरे हुए लोग हैं, उनके खिलाफ हमारे पास जो ऊँची-से-ऊँची नैतिक शक्ति है, वही भेजी जानी

चाहिए। उसके अनुसार स्त्रियाँ वहाँ गयीं और उन्होंने जो काम किया, वह सारे भारत ने देखा।

एक बार अण्णासाहब वर्धा आये थे। वे बोले कि गांधीजी ने जादू कर दिया। स्त्रियों की उन्नति के लिए २५-२५ साल तक मेहनत करके जो काम हम नहीं कर सके और जिसकी कल्पना नहीं कर सके, वह चीज गांधीजी ने कर दी। यह गांधीजी ने क्या किया, यह तो अहिंसा ने किया है। जब तक आपका शस्त्र हिंसा रहेगा, तब तक दुनिया में आप कितने भी तत्त्व लायें, स्त्रियों का स्थान दोयम दर्जे का ही रहेगा। कितनी भी कोशिश करें, उन्हें अव्वल स्थान नहीं मिल सकता। इसलिए अगर स्त्रियों को अव्वल स्थान देना हो, तो यह जरूरी है कि रक्षण का साधन अहिंसा हो। इससे मातृ-शक्ति को स्थान मिलेगा। इसीलिए बुद्ध भगवान् और महावीर के जमाने में स्त्रियों का उद्धार हुआ और गांधीजी की बदौलत स्त्रियों का उत्थान हुआ। इसका कारण यही है कि इन लोगों ने रक्षण-शक्ति अहिंसा मानी, हिंसा नहीं। हिंसा तो भक्षण-शक्ति है।

बीच का युग

बीच में एक ऐसा जमाना आया, जो न इस प्रकार का था, न उस प्रकार का था। न महावीर के समान दीक्षा देने की किसीने बात की, न गांधीजी के समान वानप्रस्थ-वृत्ति की बात ही किसीने की। न कृष्ण जैसी सब क्षेत्रों में एक साथ सहज भाव से बिना संकोच काम करने की बात की। उस जमाने में भक्ति के द्वारा स्त्रियों के लिए मुक्ति का द्वार खोलने की बात चली। उस जमाने में न कृष्ण की चली, न महावीर की। उस समय बहनों को सन्यास-दीक्षा की मनाही थी। परन्तु बीच में ऐसी हालत हुई कि पुरुष-सन्यासी स्त्रियों का दर्शन भी नहीं कर सकते थे। एक दफा मीराबाई वृन्दावन गयी थी। वहाँ एक संत पुरुष थे, जिनका बहुत बोलबाला था। मीरा ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। उसे लगा कि सन्यासी का दर्शन हो, तो कुछ बोध-प्राप्ति का मौका मिले। परंतु जब उनसे पूछा गया, तब जवाब मिला कि स्वामी महाराज स्त्रियों का मुख-दर्शन नहीं करते। मीरा को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। दुःख तो नहीं हुआ, क्योंकि दुःख से वह परे थी, भक्त थी। फिर उसने एक भजन लिखा

हूँ तो जाणती हती के व्रजमां पुरुष छे एक।
वृजमा वसीने तमे पुरुष छो, भलो तमारो विवेक ॥

जिसमें एक विनोदभरा उपालंभ है कि व्रज में रहकर भी आपका पुरुषत्व का अहंकार न गया! जो लोग व्रज मे जाते हैं, वे भगवान् की उपासना करते हैं। उपासना स्त्री है, इसीलिए उपासना-बुद्धि से भगवान् को पुरुष समझकर अपने को स्त्री समझते थे।

उस समय संन्यासियों का इतना कडा रुख था और स्त्रियों को तो संन्यास देने की कोई बात ही नहीं थी। लेकिन उस जमाने मे भक्ति-मार्ग ने रास्ता खोल दिया। मारवाड में मीराबाई, उत्तरप्रदेश मे सहजोबाई, महाराष्ट्र मे मुक्ताबाई इत्यादि कई स्त्रियाँ भक्त-शिरोमणि निकलीं। यह हिंदुस्तान के लिए बडा गौरवशाली पृष्ठ है। लेकिन इसकी मर्यादा है। सासारिक स्त्रियों के लिए यह नहीं है। इसका भक्ति से ताल्लुक है। जहाँ भक्ति का ताल्लुक आता है, वहाँ स्त्री और पुरुष का भेद मिट जाता है। इस तरह हम कहाँ-से-कहाँ तक आ चुके हैं। इसका एक चित्र मात्र मैंने रखा है।

अपना उद्धार स्त्रियाँ खुद करे

मैं मानता हूँ कि जब तक शंकराचार्य के समान प्रखर वैराग्यसंपन्न स्त्री पैदा नहीं होती, तब तक स्त्रियों का उद्धार कृष्ण, बुद्ध और गाधी जैसे पुरुष भी नहीं कर सकते हैं। वह असंभव नही है, ऐसी कोशिश भी की गयी है। लेकिन आत्मोद्धार का जो सिद्धात है, वह कहाँ रुकेगा? कुछ हद तक मदद की जा सकती है, परंतु स्त्रियों का उद्धार स्त्रियों से ही होनेवाला है। जब ऐसी स्त्री पैदा होगी, तब शकराचार्य के मठ पर आरोहण होगा। शंकराचार्य का ही पीठ हो, ऐसा नहीं है। स्त्रियों का अपना पीठ बन जाय। वैराग्यशील और ज्ञान-प्रचार करनेवाली बहनें, जिनसे शास्त्र बन सकता है, धर्म बदल सकता है, क्यों न निकलें, यह मेरी समझ में नहीं आता है। हिंदू-धर्म मे स्त्रियों को दर्जे हासिल नहीं हैं, जिनमे वे स्वयमेव आगे बढ सकती हैं। वे दर्जे हासिल करना भी बाकी है।

पंढरपुर
३१-५-'५८

परिशिष्ट · १०

विना सेवा के ज्ञान पच नहीं सकता

[विनोबा]

भर्तृहरि का एक वचन है—

"सेवा धर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः"

याने सेवा करना योगी से भी सध नहीं पाता—इतना कठिन यह धर्म है। फिर भी टालने योग्य नहीं। वह इतना आवश्यक है कि उसके बिना व्यक्ति और समाज का विकास ही नहीं हो सकता। इसलिए सेवा सर्वोत्तम धर्म है। वह कठिन होने पर भी करना चाहिए।

आप स्वयसेवक लोग काम में जुटे हुए थे और आप लोगों को सम्मेलन के व्याख्यान सुनने को नहीं मिले। आपका यह त्याग बहुत बड़ा है, उसका सेवा-धर्म में बहुत बड़ा स्थान है। जिस त्याग से मानव को सच्ची शांति मिले, वही सच्चा त्याग है। जिससे शांति न मिले, वह त्याग ही नहीं। आपको यह जो त्याग करना पड़ा—भाषण सुनने को नहीं मिला, वह बहुत अच्छा है, क्योंकि आप एक बहुत अच्छी सेवा में मग्न थे।

इसलिए परमात्मा ने विचार किया कि सेवा-धर्म करनेवालों के मोक्ष की कैसी व्यवस्था की जाय? सेवा करनेवाले इस फल से वंचित रहे तो कैसे चलेगा? इसीलिए भगवान् ने कहा है कि भक्ति से स्त्री, वैश्य, शूद्र सभी मोक्ष पायेंगे। क्योंकि समाज में कुछ लोग सेवा में मग्न रहेंगे ही। उसके बिना समाज चल ही नहीं सकेगा। सेवा में मग्न रहनेवाले ये ही लोग होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि अमुक सेवा करनेवाले अमुक जाति के होते हैं। कुछ काम ऐसे होते हैं, जो रोज करने पड़ते हैं जैसे भंगी काम और रसोई बनाना। रसोई रोज ही पकानी पड़ती है। अवश्य ही एकादशी आदि कुछ दिन रसोई नहीं पकानी पड़ती हो, उस दिन फलाहार से ही काम चल जाता हो। फिर भी कुछ लोग सेवा में मग्न रहेंगे ही। जो स्त्रियाँ

* सर्वोदय-सम्मेलन के स्वयसेवकों के बीच।

सदा सेवा में मग्न रहती हैं, उन्हे अपने बच्चों की ओर ध्यान देना ही पड़ता है। इसलिए वे सेवा-प्राण हैं।

स्त्रियों को सदा ही सेवा करनी पड़ती है। किन्तु उसके साथ वे ज्ञानी भी बनें, तो उनका कल्याण होगा। उनके हाथ मे बच्चे रहते हैं, इसलिए उन्हे ज्ञानी होना ही चाहिए। कुछ स्त्रियाँ परम ज्ञानी हो सकती हैं, फिर भी उन्हे सेवा करनी ही पड़ती है और उन्हे ग्रथ पढने को नही मिलते। दर्शन-विचार और तत्त्वज्ञान पढने के लिए नहीं मिलता। बाबा का व्याख्यान सुनने को नही मिलता। लेकिन यह सब उन्हे मिले, ऐसी योजना होनी चाहिए। मान लीजिये सब मिलकर एक ही बार रसोई बनायें और कुछ लड्डू बना लें। शाम को लड्डू खाकर पानी पी लें या उपवास के दिन फलाहार करें, पूरा भोजन न लें। इस तरह कोई योजना बनाकर एक बार भी रसोई से बच जाय, तो स्त्रियों को इन बातों के लिए अवसर मिल सकता है। यह कुशलता, यह योजना होनी चाहिए। स्त्रियों को श्रवण का लाभ मिले, तो उनका कल्याण ही होगा। इसलिए वे सेवापरायण होती हैं, तो उसके साथ ही उन्हे ज्ञान भी मिलना चाहिए। फिर भी अगर उन्हे ज्ञान न मिले, तो भी वे सेवा-भक्ति से तर जायँगी और उन्हे मोक्ष मिल जायगा—ऐसा भगवान् कहते हैं।

वैश्य लोग सदा ही गोरक्षण और खेती में मग्न रहते हैं। वे दूकानदार होते हैं। वे मेरा व्याख्यान कभी सुन ही नहीं सकते। मेरे व्याख्यान के समय वे दूकान में बैठते हैं। क्योंकि वह समय ही ऐसा होता है कि दूकान बंद नही की जा सकती। इसलिए क्या वैश्य और क्या शूद्र, सेवा मे ही मग्न रहते हैं और ज्ञान के साधन उपलब्ध होने पर भी वे उनका उपयोग कर ही लेते हैं, ऐसी बात नहीं। फिर भी उन्हे भक्ति से मोक्ष मिलेगा। ऐसे भगवान् कहते हैं। इसके विपरीत बड़े-बडे ज्ञानी हो, तो भी उन्हे मोक्ष नही मिल सकता। ज्ञान हो और भक्ति हो, तो भी मोक्ष मिल सकता है—ऐसा गीता (आठवें अध्याय) मे भगवान ने कहा है। इसीलिए मैं आज जान-बूझकर आप लोगों के लिए यहाँ आया हूँ।

मोक्ष के लिए वेदाभ्यास, तत्त्वज्ञान या कर्मकाड आवश्यक नहीं, लेकिन भक्ति अत्यावश्यक है। हृदय भीगना चाहिए। इसीलिए वेद पढकर अगर हृदय भक्ति से भीगा हो, तो मोक्ष मिलेगा। वेद पढ़कर, कर्मकाड करके भी अगर

भक्ति से हृदय न भीगे, तो मोक्ष नहीं मिलेगा। आज सुबह माटगूळकरजी के "गीत रामायण" गाते समय अंतिम भजन सुनते-सुनते मैं द्रवित हो उठा। उसे सुनते हुए मेरा ध्यान राग की ओर नहीं गया—संगीत की ओर मेरा ध्यान नहीं था। मेरा हृदय तो सिर्फ भक्ति से भीग गया था। अगर ऐसा नहीं होगा, तो हानि होगा।

मैं अगर आनेवाले ग्राहक को माल तौल या मापकर दू, तो उस काम से भी मुझे मोक्ष मिल सकता है। तुलाधर वैश्य का उदाहरण प्रसिद्ध है। संत कहते हैं कि वेद पढ़कर यदि हरि भक्ति में लग गये, तो समझिए कि मैंने सचमुच वेद पढ़ा। अन्यथा वेद पढ़कर हम दक्षिणा लेने के लिए ही हाथ आगे बढ़ायें, तो समझें कि किसी मजदूर की तरह म भी वेद पढ़ने की मजदूरी माँग रहा हू। इसलिए सेवा करना और भक्ति मे भीगना—यही मोक्ष का साधन है। कोई भी सेवा द्रवितहृदय होकर की जाय और निष्काम भक्ति से की जाय, तभी मोक्ष मिलेगा।

कल ही सम्मेलन के अंत मे मैंने एक गभीर विषय लेकर बोलना शुरु किया। विषय आरंभ ही किया था कि मंडप के बाहर कुछ गड़बड़ी शुरु हुई। मंडप के भीतर तो पूरी शाति थी। लेकिन बाहरी गड़बड़ सुनकर मुझे लगा कि इतने गंभीर विषय के लिए यह स्थान ठीक नहीं है। इसीलिए पाँच मिनट मौन प्रार्थना कर मैंने भाषण समाप्त कर दिया—मौन जैसा उपदेश ही नहीं है। जो बात उस व्याख्यान से न सध पायेगी, वह उस प्रार्थना से सध जायेगी—ऐसी मेरी श्रद्धा थी, क्योंकि उसमे भक्ति के साथ प्रार्थना थी। इसलिए मुझे क्षणभर भी वैसा नहीं लगा कि लोग इतनी दूर से आये, तो उनकी थोड़ी-सी हानि हुई, मौन से उन्हें जो हासिल होगा, वह व्याख्यान से नहीं। व्याख्यान से थोड़ी-सी प्रेरणा मिलती है, पर भक्ति जितना सत्त्वांश उसमें नहीं। अब आपने श्रवण का लाभ नहीं उठाया, इसलिए अंत में तो आपको थोड़ा-सा मीठा भात खिलाना चाहिए इसलिए जान-बूझकर मै यहाँ आया।

घर में माँ बीमार हो, तो बच्चा परीक्षा निकट होने पर भी पढ़ना छोड़कर उसकी सेवा करता है। लेकिन माँ उसे यही कहती है कि 'तू मेरे पास मत बैठ, तेरा 'परीक्षा नजदीक है।' कुछ लड़के वैसे नादान होते है जो माँ की सेवा छोड़ पढ़ने मे

लग जाते हैं, इसलिए उन्हें सेवा नहीं मिल पाती। अगर माँ और बच्चे ऐसा वर्ताव करने लगे, तो ममझ ले कि परिवार डूब गया। लेकिन लडकियाँ ऐसा नहीं करतीं। उनमें इतनी भाव-भक्ति अवश्य शेप रहती है। संदीपनी के घर कृष्ण गये, तो उन्हे सदीपनी ने इतना काम सौंपा कि दिनभर बीत जाता। उन्होंने भी गुरु की वैसी ही सेवा की, इसलिए उन्हे लाभ भी हुआ।

आज हमारे समाज की दशा बहुत ही विगड गयी है। हममें सेवा-भावना नहीं रह गयी है। बिना सेवा का ज्ञान उन्मत्त बन जाता है। एक बार महाभारत युद्ध के चलते हुए कृष्ण और पाडव बैठे हुए थे। चर्चा चल रही थी कि युद्ध क्यों नहीं बद होता? युधिष्ठिर ने कहा—'रे अर्जुन! बड़ा तेरा गाडीव धनुष है, फिर भी वह युद्ध नहीं रोक पाता! तब इसका मूल्य ही क्या रहा?' यह सुनते ही अर्जुन गाडीव चढ़ाकर युधिष्ठिर को मारने के लिए दौड पड़ा। जिस युधिष्ठिर ने अर्जुन को जन्मभर पढ़ाया, उसी पर प्रहार करने के लिए वह दौड पड़ा। श्रीकृष्ण ने उसे रोका और पूछा कि 'यह क्या कर रहे हो?' अर्जुन ने कहा—'जो मेरे गाडीव की निंदा करे, उसका सिर इसी गाडीव से उडा देने की मैंने प्रतिज्ञा की है।' इस पर श्रीकृष्ण ने कहा--'न वृद्धाः सेवितास्त्या'—'याने तूने वृद्धों की सेवा नहीं की, इसलिए तू इस तरह उद्दड जैसा बर्ताव कर रहा है। तूने अगर वृद्धों की सेवा की होती, तो तुझमें नम्रता अवश्य आती। युधिष्ठिर ने तुझसे जो कहा, वह तेरा अपमान करने के लिए नहीं, तेरा उत्साह वढ़ाने के लिए ही कहा।' तब कहीं अर्जुन शांत हुआ। अगर उस समय श्रीकृष्ण न होते, तो महाभारत वहीं समाप्त हो जाता।

इसलिए केवल ज्ञान से काम नहीं चलता। विना सेवा के ज्ञान नही मिलता और विना सेवा के मिला हुआ ज्ञान पचता भी नहीं। बिना सेवा के ज्ञान रूखा बन जाता है। इसलिए ज्ञान के साथ सेवा भी चाहिए।

ये थोडी-सी बातें अगर आप ध्यान में रखें, तो वे आपको जीवनभर काम देंगी और 'सम्मेलन' मे आपने अन्य भाषण सुने नहीं, तो उससे आपकी विशेष हानि नही हुई, ऐसा ही कहा जा सकेगा।

पढरपुर,
२-६-'५८